प्रकाशक
आन्ध्र-प्रदेश साहित्य अकादमी,
तिलक रोड,
हैदराबाद–१

मुद्रक
कमर्शियल प्रिंटिंग प्रेस,
बेगमबाज़ार, हैदराबाद–१२

प्रथम संस्करण
जून, १९६५

मूल्य
छः रुपये

निवेदन

आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी की ओर से ६, ७, ८ फरवरी १९६५ को आन्ध्र के हिन्दी लेखकों का सेमीनार हैदराबाद नगर मे आयोजित हुआ था। सेमीनार मे पढे गये विद्वत्तापूर्ण निबन्धो को विवरण के साथ इस सकलन मे प्रस्तुत किया रहा है। यह पहला अवसर था जब तेलुगुभाषी हिन्दी लेखक एक जगह जमा हुए थे। इन लेखकों ने हिन्दी और तेलुगु साहित्य के विभिन्न अगो पर मौलिक ढग मे विचार प्रकट किये।

सेमीनार की सफलता का बहुत कुछ श्रेय उन लेखको को है जो अकादमी के निमन्त्रण पर हैदराबाद आये थे। इन दिनो अनेक तेलुगुभाषी हिन्दी लेखक आन्ध्र से बाहर भी हिन्दी की महत्वपूर्ण सेवा कर रहे हैं। यह सेमीनार तेलुगुभाषी हिन्दी लेखकों का उचित प्रतिनिधित्व करता था।

सेमीनार के उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता कन्नड के यशस्वी कवि तथा आलोचक और अग्रेजी साहित्य के मर्मज्ञ श्री विनायक कृष्ण गोकाक ने की थी। ससद सदस्य श्री गगाशरण सिन्हा ने सेमीनार का उद्घाटन किया। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय (शिक्षामन्त्रालय) के निदेशक डाक्टर विश्वनाथ प्रसाद, हिन्दी के प्रमुख कवि तथा विचारक श्री बालकृष्णराव, श्री बेजवाड गोपालरेड्डी, श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त और श्री पी वी नरसिहराव ने सेमीनार की विभिन्न बैठकों की अध्यक्षता की। डाक्टर रामनिरजन पाडे कवि सम्मेलन के अध्यक्ष थे। अकादमी इन सब महानुभावो और सेमीनार म भाग लेने वाले लेखको के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती है।

सकलन का नाम अपने शाब्दिक अर्थ के अतिरिक्त हिन्दी के महाकवि 'पद्माकर' का स्मरण भी कराता है, जिनके पूर्वज आन्ध्र के निवासी थे।

सेमीनार के आयोजन तथा सचालन और इस सकलन के प्रकाशन मे डाक्टर श्रीराम शर्मा से बहुत सहायता मिली है।

१७ मई, १९६५ ई
तिलक रोड,
हैदराबाद–१

देवुलपल्लि रामानुजराव
मन्त्री
आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी

क्रम

१	विवरण		१
२	हिन्दी और उसके प्रबल पक्ष	श्री आरिगिपूडि रमेश चौधरी	३३
३	हिन्दी को आन्ध्र की देन	डा भीमसेन 'निर्मल'	४४
४	भारतीय साहित्य और हिन्दी अनुवाद माध्यम के रूप मे	श्री हेमलता आजनेयुलु	५७
५	आन्ध्र रगमच	श्री राममूर्ति 'रेणु'	७१
६	आन्ध्र शतक वाङ्मय	श्री मु भ इ शर्मा 'ईश'	८३
७	तेलुगु मे प्रयुक्त अरबी, फारसी तथा हिन्दी के शब्द भाषा वैज्ञानिक अध्ययन	श्री हनुमत् शास्त्री अयाचित	९७
८	आन्ध्र का लोक-साहित्य	श्री क राज शेषगिरि राव	१३०
९	तेलुगु का आधुनिक काव्य साहित्य	श्री वेमूरि राधाकृष्ण मूर्ति	१५२
१०	यक्षगान	श्री बालशौरि रेड्डी	१६५
११	आधुनिक हिन्दी और तेलुगु-साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ उपन्यास और नाटक	श्री जी सुन्दर रेड्डी	१७७
१२	तुलसीदास एव त्यागराज की भक्ति पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन	श्री ए सी कामाक्षीराव	१८९
१३	तेलुगु और हिन्दी के काव्य साहित्य मे वैष्णव भक्ति	डा सूर्यनारायण मूर्ति	२०२
१४	हिन्दी और तेलुगु की आधुनिक कविता	श्री आलूरि बैरागी	२२०
१५	हिन्दी और तेलुगु में प्राचीन प्रबन्ध काव्य	श्री दुर्गानन्द	२२६
१६	परिचय		२३८

विवरण

उद्घाटन समारोह

आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी की ओर से आयोजित आन्ध्र प्रदेश के हिन्दी लेखकों की सगोष्ठी का उद्घाटन ६ फरवरी १९६५ को साय ६ बजे आन्ध्र सारस्वत परिषद के प्रागण मे सम्पन्न हुआ। श्री विनायक कृष्ण गोकाक ने समारोह की अध्यक्षता की।

श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त का स्वागत भाषण

श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त ने जो स्वागत भाषण दिया, उसका साराश इस प्रकार है—

आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी के अध्यक्ष श्री बेजवाड गोपाल रेड्डी ने अकादमी के समक्ष इस सगोष्ठी का प्रस्ताव रखा था। इस सगोष्ठी का बहुत महत्त्व है। इस बात की बहुत आवश्यकता है कि भारत की भाषाओ का उत्तमोत्तम साहित्य हिन्दी मे और हिन्दी का साहित्य अन्य भाषाओ मे अनुवादित हो। अग्रेजी के कारण हमारे देश मे प्रशासनिक एकता रही है, किन्तु देश की सास्कृतिक एकता अग्रेजी के माध्यम से सम्पादित नही की जा सकती।

पिछले पचास वर्षों से समूचे दक्षिण भारत मे हिन्दी का प्रचार हो रहा है। इस अवधि मे लाखो आदमियो ने हिन्दी का ज्ञान प्राप्त किया है। कुछ व्यक्तियो ने हिन्दी भाषा और उसके साहित्य के गभीर अध्ययन मे भी समय व्यतीत किया है। इस प्रकार के अध्येताओ की यह विशेषता है कि वे हिन्दी के अतिरिक्त अपनी मातृभाषा का अच्छा ज्ञान रखते है।

आन्ध्र प्रदेश के लिए यह बहुत बडे गौरव की बात है कि इस प्रदेश मे ऐसे अनेक मनीषी विद्यमान हैं जो तेलुगु से हिन्दी मे और हिन्दी मे तेलुगु मे कुशलतापूर्वक अनुवाद कर सकते हैं। हम लोगो के लिए यह बात भी हर्ष-दायक है कि इधर १५-२० वर्ष से इस प्रदेश के कुछ लेखक हिन्दी मे मौलिक

पद्माकर

रूप से लिखा रहे हैं। यहाँ के लेखकों की लिखी हुई कविताएँ, कहानियाँ उपन्यास आदि प्रतिवर्ष हिन्दी में छपते रहते हैं। आन्ध्र प्रदेश के लेखकों की कृतियाँ हिन्दी जगत् में सम्मानित होती रही हैं।

हिन्दी में समस्त देश का चिन्तन व्यक्त होना चाहिए। आज तो इस बात की भी आवश्यकता है कि हिन्दी में विश्व भर के मानवों की अनुभूति व्यक्त हो। आन्ध्र के प्राचीन तथा अर्वाचीन साहित्य की सम्पदा को आत्म सात करने से निस्सन्देह हिन्दी का गौरव बढ़ेगा। इस संगोष्ठी में भाग लेने वाले लेखक इस महत्त्वपूर्ण कार्य में योग देते रहे हैं।

हैदराबाद इस प्रकार के कार्य के लिए बहुत उपयुक्त स्थान है। एक तो यहाँ कई भाषाओं के लेखक और अनुवादक आसानी से मिल जाते हैं, दूसरे इस नगर के नागरिक भाषा की दृष्टि से बहुत उदार है। यह नगर आन्ध्र प्रदेश की राजधानी है और स्वभावतः यहाँ का शासन तेलुगु भाषा तथा उसके साहित्य के विकास में रुचि लेता है, किन्तु तेलुगु भाषा का प्रेम किसी अन्य भाषा के व्यवहार तथा विकास में बाधक नहीं बना है। उर्दू भाषी यहाँ लाखों की संख्या में बसते हैं। हिन्दी भाषियों की भी पर्याप्त संख्या है। गुजराती मराठी, पंजाबी आदि के अतिरिक्त दक्षिण भारत की भाषाएँ—तमिल, मलयालम और कन्नड़ बोलने वाले भी यहाँ अपने आपको अजनबी नहीं पाते। भाषाओं के सम्मुख यहाँ कोई बाधा उपस्थित नहीं हुई है। केवल शिक्षा के मामले में ही नहीं अन्य सभी क्षेत्रों में तेलुगु के अतिरिक्त अन्य भाषाओं को भी यहाँ प्रोत्साहन मिलता रहा है।

श्री विनायक कृष्ण गोकाक का अध्यक्षीय भाषण

संगोष्ठी के उद्घाटन समारोह के सभापति श्री विनायक कृष्ण गोकाक ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा — इस संगोष्ठी में भाग लेने वाले लेखकों की मातृभाषा तेलुगु है फिर भी वे लोग हिन्दी में लिखते हैं। दो भाषाओं पर समान अधिकार प्राप्त करना और दोनों भाषाओं में समान रूप से लिखना प्रशंसनीय गुण है।

भारत में अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं किन्तु हम गंभीरता के साथ विचार करें तो पता चलेगा कि इन सब भाषाओं का साहित्य एक है। प्राचीन काल से लेकर आज तक देश की समस्त भाषाओं का साहित्य समान भावनाओं से अनुप्राणित रहा है। भाषाओं की विभिन्नता ने हमारे साहित्य

की अजस्र धारा को प्रभावित नहीं किया है। जहाँ तक साहित्य के इतिहास का पता चलता है, हम इस एकता के दर्शन कर सकते है। बहुत प्राचीन काल मे जैन और बौद्ध धर्म की शिक्षाएँ देश के एक कोने से ले कर दूसरे कोने तक पहुँची। इन शिक्षाओ से दक्षिण, उत्तर, पूर्व और पश्चिम चारो दिशाओ के लेखको ने समान रूप से प्रेरणा प्राप्त की। फिर रामायण और महाभारत महाकाव्यो की प्रेरणा का ऋण देश की सभी भाषाओ पर एक जैसा है। देश के सभी अचलो मे धार्मिक आदर्श भी खडित नही हुआ। भक्ति आन्दोलन ने तो हमारी सभी भाषाओ को आप्यायित कर दिया।'

'भारत की आधुनिक भाषाओ के लेखको का दाय भाग ही समान नही है अपितु उनकी समस्याएँ भी समान हैं। हमारे समकालीन लेखको के सामने जैसी जटिल समस्याएँ हैं, वैसी सभवत किसी देश के लेखक के सामने नही हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात हमारे यहाँ बडी तेजी से एक पूँजीवादी वर्ग का उत्थान हुआ है। पिछले पाँच छह वर्ष मे इस पूँजीवादी वर्ग ने जहाँ अपने आपको बहुत शक्तिशाली बनाया है, वहाँ उसने देश के सामान्य जीवन को भी उत्तरोत्तर अधिक प्रभावित किया है। एक ओर हमारे देश के किसान तथा मजदूर हैं, जिन्होने गान्धीजी के नतृत्व मे सघर्ष करते हुए सोचा था कि जैसे ही अग्रेज इस देश से जाएँगे देश मे रामराज्य की स्थापना होगी, उनकी विपत्ति एक दिन मे टल जाएगी और उनके घर धन-धान्य से भर जाएँगे, किन्तु उनकी यह आशा निराशा मे बदल गयी। इस स्थिति मे उनके असन्तोष और क्षोभ की कल्पना की जा सकती है।'

'सामान्य जनता के अतिरिक्त देश की महिलाओ और विद्यार्थियो मे असन्तोष की कमी नही है। एक ओर महिलाएँ अपनी प्राचीन परम्परा से बँधी हुई है, दूसरी ओर औद्योगिक विकास तथा बदलते हुए आर्थिक साधनो के कारण नयी दिशाएँ उनके सामने उद्घाटित होती जा रही हैं। पुराने प्रकार के सामाजिक बन्धनो से छुटकारा पाने की इच्छा महिलाओ मे सहज ही उद्विग्नता उत्पन्न कर रही है।

'इन परिस्थितियो मे लेखक अथवा कलाकार को अपना कार्य करना है। सब से पहली बात तो यह है कि कलाकार किसी लोभ मे न पडे और दूसरी बात यह है कि वह किसी भय अथवा आतक के कारण अपने मार्ग से स्खलित न हो। यदि वह भी भयग्रस्त और आतकित हो गया तो सामान्य जनता अपना मार्ग कैसे निश्चित कर सकेगी? लेखक की बुद्धि भ्रष्ट हो

जाएगी। हमारे यहाँ सोच विचार कर काव्य की आत्मा 'रस' मानी गयी थी, और रसो मे प्रेम, हास्य के अतिरिक्त भय, घृणा, शोक आदि भावो को भी उचित स्थान मिला। भारतीय साहित्य-सिद्धात के अनुसार कवि भय, घृणा आदि को भी रस मे परिवर्तित करता है।'

'कोई कलाकार दर्शक ही बन सकता है, नियन्ता नही। कलाकार समस्या का हल प्रस्तुत नही कर सकता, वह तो समस्याओ को यथावत चित्रित करता है। कलाकार को जन-जीवन के साथ चलना चाहिए। हम सब लोगो की आकाक्षा है कि हमारा देश महान् बने। हमारा देश सभी लौकिक समृद्धियो का आवास बन, इतना ही पर्याप्त नहीं है। हम अपनी भूमि पर स्वर्गलोक को अवतरित करना चाहते हैं। लेखक, कवि, आलोचक, कलाकार सभी इस काय मे योग दें।'

श्री बेजवाड गोपाल रेड्डी का भाषण

आन्ध्र प्रदेश के हिंदी लेखको की सगोष्ठी को सम्बोधित करते हुए श्री बेजवाड गोपाल रेड्डी ने कहा—

'दक्षिण भारत म लाखो नर-नारियो न हिन्दी सीखी है। उन्होंने यह कार्य किसी सरकारी प्रयत्न के कारण नही किया। आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व हम लोगो न गाँधीजी की प्रेरणा से हिन्दी पढना लिखना शुरू किया था। इस प्रयास मे राष्ट्रीय भावना और प्रेम के अतिरिक्त कोई दूसरा भाव नही था। हम लोगा न केन्द्रीय गृह विभाग अथवा शिक्षा विभाग के प्रयासा से हिन्दी नही सीखी।'

'आन्ध्र प्रदेश मे कुछ लोगो ने हिंदी का गहन अध्ययन किया है। ये लोग हिंदी म मौलिक ग्रन्थो की रचना करने लगे है। इनम से कुछ लोगा न हिन्दी को इतना स्वीकार किया है कि अपनी मातृभाषा तेलुगु ही भूल गये, किन्तु मैं इस स्थिति को वाछनीय नही मानता। इन लेखका को अपनी मातृ-भाषा के साथ भी सम्पर्क रखना चाहिए। तेलुगु के साथ-साथ हिन्दी का ज्ञान सम्पादित किया जाना चाहिए। तेलुगु छोड कर हिन्दी अपनाना उचित नही होगा।'

हिंदी के कारण इस देश की किसी भाषा की उपेक्षा नही होनी चाहिए। सभी भाषाओ का समान महत्त्व है। किसी भारतीय भाषा के साहित्य का परिचय देने के लिए हिन्दी माध्यम बने यह स्थिति भी बहुत अच्छी नही है। भारतीय भाषाओं म परस्पर सीधे आदान प्रदान होना

चाहिए। तेलुगु भाषी लोगों में दो-दो, चार-चार व्यक्ति ऐसे अवश्य हों जो तेलुगु के अतिरिक्त देश की कोई न कोई दूसरी भाषा अच्छी तरह सीखें। आज उड़िया, तमिल और कन्नड़ से तेलुगु में अनुवाद करना हो तो हमारे प्रदेश में दो-चार अच्छे अनुवादक भी नहीं मिलेंगे, यद्यपि तीनों हमारी पड़ौसी भाषाएँ हैं। यह स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। देश की सभी प्रमुख भाषाओं की उत्कृष्ट रचनाएँ तेलुगु में सीधे आनी चाहिएँ। यूरोप में चार-पाँच भाषाओं के जानने वाले लोग सरलता से मिल जाते हैं, किन्तु भारत में हम पड़ौसी प्रान्त की भाषा से भी परिचय नहीं रखते।'

'इसमें कोई सन्देह नहीं कि हिन्दी का भविष्य बहुत उज्ज्वल है, किन्तु हिन्दी प्रेमियों को कुछ समस्याओं पर तुरन्त ध्यान देना चाहिए। भारत की एकता के लिए देश के हिन्दीतर भाषी प्रदेशों में हिन्दी का प्रचार हो रहा है। हिन्दीतर भाषी प्रदेशों की भाषा का परिचय पाने के लिए हिन्दीभाषी लोग क्या कर रहे हैं? हिन्दीभाषी प्रदेश अपने देश के अन्य प्रान्तों के जन-जीवन से कितने परिचित हैं? यह स्थिति बहुत अच्छी नहीं है कि ऐसे तेलुगु भाषी व्यक्ति तो बहुत-से मिलते हैं जो हिन्दी-तेलुगु में सफल अनुवाद कर लेते हैं, किन्तु एक भी हिन्दीभाषी व्यक्ति सामने नहीं आता जो तेलुगु से हिन्दी में अनुवाद कर सके। हिन्दीभाषी प्रदेशों को छात्रवृत्ति दे कर बहुत-से व्यक्ति कलकत्ता, मद्रास, पूना, अहमदाबाद, हैदराबाद आदि नगरों में भेजना चाहिए जिससे वे बंगाली, तमिल, मराठी, गुजराती, तेलुगु आदि भाषाओं का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर सकें। दक्षिण भारत के लोगों का यह विश्वास हो चला है कि हिन्दीभाषी प्रदेश हिन्दीतर भाषी प्रदेशों से कुछ सीखना नहीं चाहते। यह अग्राह्यता भाषा के क्षेत्र में ही नहीं है। दक्षिण भारत में कई व्यक्ति हिन्दुस्तानी संगीत जानते हैं। कुछ लोग हिन्दुस्तानी राग अच्छी तरह गा भी लेते हैं, किन्तु हिन्दी भाषी प्रदेशों में कर्नाटकी संगीत जानने वाले कितने लोग हैं? यह स्थिति समाप्त होनी चाहिए। सभी प्रान्तों के जन-जीवन, क्रिया-कलाप और साहित्य तथा कला के प्रति हमारा अनुराग होना चाहिए।'

श्री गंगाशरण सिन्हा का भाषण

इससे पूर्व संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए श्री गंगाशरण सिन्हा ने कहा—

'हमारे देश मे राजनीति को अनावश्यक रूप से महत्त्व मिल गया है। प्रत्येक प्रश्न का हल राजनीतिज्ञो पर छोड दिया जाता है। राजनीति बालू रेत की तरह जीवन के रस को सोखती जा रही है। साहित्यिक ही इस बालू रेत मे रस-धार बहा सकता है। यह बताने की आवश्यकता नही है कि भारत का सार्वजनिक जीवन बालू रेत के स्पर्श से कितना नीरस बन चुका है। साहित्यिको को राजनीति मे न पड कर अपना कर्त्तव्य निभाना चाहिए।'

श्री आरिगिपूडि रमेश चौधरी का भाषण

श्री आरिगिपूडि रमेश चौधरी ने अपने भाषण मे हिन्दी की तीन भौगोलिक परिधियों का उल्लेख करते हुए कहा—'हिन्दी की तीन भौगोलिक परिधियाँ हैं। उसकी एक प्रान्तीय परिधि है, इस परिधि की सीमा गंगा और यमुना बनाती है। उसकी दूसरी परिधि अन्तर्प्रान्तीय है। इस परिधि मे राजस्थान से ले कर पटना तक का क्षेत्र आता है। उसका तीसरा रूप राष्ट्रीय है। इस सीमा मे समूचा देश समाता है। हिन्दी से अनुराग रखने वाला व्यक्ति इन तीन परिधियो को ध्यान मे रख कर कार्य करे तो बहुत-सी आशकाएँ अपने आप निवृत्त हो जाएँगी। यदि प्रान्तीय परिधि वाला अपने को ही प्रामाणिक मान कर सन्देश देता रहे तो अन्तर्प्रान्तीय और राष्ट्रीय परिधियो मे उसकी प्रतिक्रिया ठीक नही होगी। राष्ट्रीय परिधि मे हुई बात भी प्रान्तीय परिधि म गूँजनी चाहिए।'

'हमारे देश की राजनीति धर्म के कारण और हमारी भाषा प्रान्तीयता से कलुषित हुई है। इस कलुष के कारण हम अपनी भाषाओ का समुचित विकास नही कर सके। हिन्दी के साधको का कर्त्तव्य है कि वे शीघ्र से शीघ्र देश की सभी भाषाओ के नये-पुरान साहित्य का सार हिन्दी मे प्रस्तुत कर दें। हिन्दी सम्पूर्ण भारत की मिली-जुली सस्कृति का प्रतिनिधित्व करे। जब तक हिन्दी का प्रयोग शिक्षा के माध्यम के रूप मे नही होता, उसका सर्वांगीण विकास नही हो सकता।

'हिन्दी को एक ओर तो ससार की सभी समृद्ध भाषाओ के साथ सम्पर्क स्थापित करना चाहिए और दूसरी ओर उसका सबध भारत की सभी भाषाओ से जुडना चाहिए। इस सम्पर्क के कारण हिन्दी भाषा विकसित होगी और उसका साहित्य समृद्ध बनेगा। प्रादेशिक जीवन का चित्रण करने से यह भाषा महान् नही बन सकती। आज तक हमारे देश की जनता को धर्म

श्री विनायक कृष्ण गोकाक अध्यक्षीय भाषण देते हुए

परिचय ।
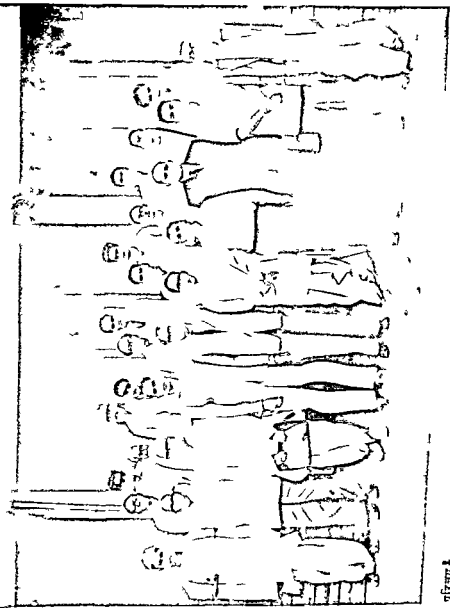
श्री गंगाशरण सिंहा उद्घाटन भाषण देते हुए

दाँयें से बाँये प्रथम पंक्ति—सर्वश्री डी रामानुजराव, सुन्दर रेड्डी, हनुमत शास्त्री, भालचन्द्र आपटे, डा सूर्यनारायण मूर्ति, लक्ष्मीनारायण गुप्त, गोपाल रेड्डी, बालकृष्णराव, एम् वी वी आर शर्मा, डा बी रामराजू।

दूसरी पंक्ति—श्रीराम शर्मा राममूर्ति रेणु, डा भीमसेन 'निर्मल', वेमूरि राधाकृष्ण मूर्ति, सी कामाक्षीराव, डा ब्रजबिहारी तिवारी, धर्माराव, ए रमेश चौधरी

ऊपरी पंक्ति—सीताराम शास्त्री, चौधरी आलूरि बैरागी, यज्ञनारायणराव

दर्शक : दाँये से बाँये—सर्वश्री गोपाल रेड्डी, गंगाशरण सिन्हा, आयंगार, भालचन्द्र आपटे ।

ने एकता प्रदान की, किन्तु अब धर्म की वह स्थिति नही रह गयी है। धर्म पर हमारी आस्था कम होती जा रही है। अब इस एकता को भाषा ही बनाये रख सकती है।'

श्री देवुलपल्ली रामानुजराव ने सगोष्ठी के लिए प्राप्त देश के प्रमुख व्यक्तियो के सन्देश पढ कर सुनाये। श्री मोटूरि सत्यनारायण ने उद्घाटन समारोह के अध्यक्ष, वक्ताओ और श्रोताओ का धन्यवाद दिया।

बैठकों का विवरण

आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी की ओर से ६, ७, ८ फरवरी १९६५ को आन्ध्र सारस्वत परिषद् के सभा भवन मे आन्ध्र प्रदेश के हिन्दी लेखको की सगोष्ठी आयोजित हुई। सगोष्ठी मे सम्मिलित लेखको तथा साहित्य प्रेमियो की सूची परिशिष्ट मे दी गयी है।

सगोष्ठी की बैठको का विवरण इस प्रकार है—

प्रथम बैठक प्रकाशन और अनुवाद

६ फरवरी १९६५, शनिवार को प्रात ९ बजे सगोष्ठी की पहली बैठक की अध्यक्षता हिन्दी निदेशालय, शिक्षा मत्रालय केन्द्रीय शासन, नई दिल्ली के निदशक डाक्टर विश्वनाथप्रसादजी ने की।

१ बैठक के सयोजक डाक्टर श्रीराम शर्मा ने बैठक के अध्यक्ष डाक्टर विश्वनाथप्रसादजी तथा उपस्थित लोगो का स्वागत करते हुए कहा 'डाक्टर विश्वनाथप्रसादजी ने आगरा विश्वविद्यालय के क मा भाषा विज्ञान तथा विद्यापीठ के सचालक के रूप म हिदीतर भाषाभाषी क्षेत्र के अनेक छात्रो को हिन्दी साहित्य के उच्च अध्ययन तथा अनुसधान के लिए प्रेरित किया था। केन्द्रीय शिक्षामत्रालय के हिन्दी निदेशालय के निदेशक के रूप म इस समय आप उन सभी कार्यों से सबधित हैं जो हिन्दी भाषा तथा उसके साहित्य के उन्नयन के लिए किये जा रहे हैं। इस सगोष्ठी म सम्मिलित होने वाले व्यक्ति लेखक होने के अतिरिक्त हिन्दी के अध्यापक तथा प्रचारक भी हैं। हिन्दीतर भाषाभाषी क्षेत्रो मे हिन्दी लेखन तथा अनुवाद की समस्याओ से इन लोगो का अच्छा परिचय है। आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी ने इस वर्ष हिन्दी के सम्बन्ध मे निम्नलिखित कार्य हाथ म लिये थे—

(१) तेलुगु म सूरदास के सौ पदो का गीतानुवाद।

(२) पोतनाकी भागवत के कुछ उत्कृष्ट अंशो और मनुचरित्र का हिन्दी म काव्यानुवाद।

(३) तेलुगु की प्रातिनिधिक कहानियो का हिन्दी अनुवाद।

(४) आन्ध्र प्रदेश के हिन्दी लेखको की सगोष्ठी।

श्री दुर्गानन्द ने सूरदास के पदो का तेलुगु गीतानुवाद पूर्ण कर लिया है। पुस्तक इस समय प्रेस म है।

पोतना की भागवत के कुछ उत्कृष्ट अशो का काव्यानुवाद श्री वाराणसी राममूर्ति ने पूरा कर लिया है। इस अनुवाद का मुद्रण कार्य प्रारम्भ हो चुका है। मनुचरित्र का अनुवाद श्री मल्लादि शिवराम कर रहे हैं।

तेलुगु की प्रातिनिधिक कहानियो का अनुवाद श्री बालशौरि रेड्डी ने किया है। यह कहानी सग्रह इस समय छप रहा है।

आन्ध्र प्रदेश के हिन्दी लेखको की सगोष्ठी आज से प्रारम्भ हो रही है।

२ सगोष्ठी का उद्देश्य बताते हुए आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी के अध्यक्ष डाक्टर बेजवाड गोपाल रेड्डी ने कहा, "आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी का इस विवाद से कोई सम्बन्ध नही है कि हिन्दी देश की राजभाषा बन सकती है या नही। आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी इस बात को तीव्रता के अनुभव कर रही है कि देश की विभिन्न भाषाएँ एक-दूसरे के निकट आएँ। बहुत से सुशिक्षित भारतीय अपनी मातृभाषा के साहित्य से भी परिचित नही है। मातृभाषा के अतिरिक्त देश की अन्य भाषाओ के सम्बन्ध मे हमारा ज्ञान बहुत अल्प है। आन्ध्र साहित्य अकादमी मुख्यत तेलुगु साहित्य के विकास का कार्य करती है, किन्तु स्थापना काल से ही उसका यह भी लक्ष्य रहा है कि देश की विभिन्न भाषाओ के पारस्परिक आदान प्रदान को प्रोत्साहित किया जाए। तेलुगु के अतिरिक्त अकादमी ने उर्दू म भी कुछ पुस्तकें प्रकाशित की है। कुछ समय पहले अकादमी ने मराठी के प्रमुख उपन्यास लेखक हरि नारायण आपटे का शताब्दी महोत्सव आयोजित किया था। हम लोग चाहते है कि हिन्दी का उत्कृष्ट साहित्य तेलुगु मे और तेलुगु की कालजयी रचनाएँ हिन्दी म अनुवादित हो। इन दोनो भाषाओ के आधुनिक लेखको म पारस्परिक परिचय का भी अकादमी प्रोत्साहित करना चाहती है। आन्ध्र प्रदेश के अनेक व्यक्तियो ने हिन्दी का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया है। हम

लोग उस दिन की प्रतीक्षा में है जब हिन्दी भाषी लोग तेलुगु तथा देश की अन्य भाषाओं का अध्ययन करेंगे। आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी आन्ध्र के उन लेखकों को प्रोत्साहित करना चाहती है, जो हिन्दी में मौलिक रूप से लिखते हैं अथवा हिन्दी तेलुगु की श्रेष्ठ रचनाओं के अनुवाद में लगे हुए है।"

३. बैठक के सभापति डाक्टर विश्वनाथप्रसादजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा, "मैं इस गोष्ठी में भाग लेने वाले महानुभावों के रूप में देश के विराट् रूप का साक्षात्कार कर रहा हूँ। विविक्रम के पराक्रम का वर्णन करते हुए तेलुगु के महाकवि पोताना ने अपनी भागवत में लिखा है—वामन भगवान् का एक पद पूरे भूमण्डल को व्याप्त कर गया। उस समय वामन के चरणों पर यह भूमण्डल ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे किसी कमल-पुष्प पर कीचड़ की एक बूँद पड़ी हुई हो। जब वामन के चरणारविन्द ने अन्तरिक्ष को नापा तो नभमण्डल ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे कमल पुष्प पर भ्रमर गुंजायमान हो। आप सब लोग भी विक्रम की विराटता लिये हुए है। आपने एक ओर तो अपनी मातृभाषा तेलुगु का सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया है। दूसरी ओर हिन्दी भाषा तथा उसके साहित्य का परिचय भी आप लोगो को है। आपका तीसरा पद मुझ जैसे भक्तों के मस्तक पर विराजमान है। आप सब लोग राष्ट्र के एक महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान में लगे हुए हैं।"

डाक्टर विश्वनाथप्रसादजी ने भाषा विज्ञान के अनुसार भाषा की दो स्थितियों का उल्लेख करते हुए कहा, "किसी भी भाषा की दो स्थितियाँ होती हैं—बाह्य और आन्तरिक। अन्तर में जब किसी भाव का उदय होता है तो मनुष्य उसे व्यक्त करना चाहता है। यह प्रवृत्ति ही भाषा की आन्तरिक रचना करती है। उसका बाह्य रूप कण्ठ से ले कर ओष्ठ तक रचा जाता है। यदि कोई व्यक्ति मातृभाषा के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा में अपनी भावना की अभिव्यक्ति करना चाहता है तो उस भाषा की आन्तरिक रचना का क्षेत्र वहाँ तक पहुँच जाता है। भाषा की आन्तरिक रचना को ध्यान में रख कर ही भारतवर्ष के अनेक व्यक्तियों की गिनती अपनी भाषा के क्षेत्र के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा के क्षेत्र में भी की जाती है। इस दृष्टि से अंग्रेजी भाषा का क्षेत्र इंग्लैण्ड तथा अमेरिका से हट कर बहुत दूर दूर तक पहुँच जाता है। आप लोगो में हिन्दी लिखने की आकांक्षा विद्यमान है। यह अकांक्षा सूचित करती है कि हिन्दी भाषा की आन्तरिक रचना का क्षेत्र आप लोगों तक पहुँच चुका है। आप लोग हिन्दी में उच्च कोटि की रचना करते हैं। अपनी

समस्याओ पर विचार करने के लिए आप लोग यहाँ एकत्रित हुए हैं। मेरी दृष्टि मे आप लोगो की इस सगोष्ठी का असाधारण महत्त्व है।'

हिन्दीभाषी क्षेत्र का उल्लेख करते हुए डाक्टर विश्वनाथप्रसादजी ने कहा—"हिन्दी भाषी क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति के सबध मे, मैं यह बात स्पष्ट करना चाहता हूँ कि उत्तर भारत मे ऐसा कोई भूभाग नही है, जहाँ साहित्यिक हिन्दी सहज भाषा का काम करती हो। साहित्यिक हिन्दी एक अर्जित भाषा है। आप लोगो की तरह उत्तर भारत के लोग भी इसे अर्जित करते हैं। मेरा ज म बिहार मे हुआ है। मैंने पहले पहल इस भाषा को कुछ बाजीगरो के मुख से सुना था। तब किसी ने बताया था कि ये बाजीगर हिन्दुस्तानी बो ते हैं। मुझे बचपन मे उर्दू पढाई गयी। तब मैंने जाना कि बाजीगर लोगो की हि दुस्तानी ही उर्दू है। मुझे गुरुजी के पास हिन्दी पढने के लिए भेजा गया तो पता चला हिन्दुस्तानी और उर्दू को ही पण्डित लोग, 'भाषा' कहते हैं। आगे चल कर जब मैं हिन्दी साहित्य का अध्ययन करने लगा तो उसी हिन्दुस्तानी, उर्दू और भाषा (भाखा) को मैंने हिन्दी के रूप मे पहचाना। राजस्थान, पजाब आदि प्रान्तो मे भी साहित्यिक हिन्दी सहजात नही है।

हिन्दी लेखको को प्रकाशन की सुविधा

४ आन्ध्र के हिन्दी लेखको को अपनी कृतियो के प्रकाशन मे किन कठिनाइयो का सामना करना पडता है तथा इन कठिनाइयो को कैसे दूर किया जा सकता ? इस चर्चा का प्रवर्तन करते हुए श्री आरिगिपूडी रमेश चौधरी न कहा—'आन्ध्र प्रदेश के हिन्दी लेखको के सामने ही नही ससार की सभी भाषाओ के लेखको के सामन आज अनक समस्याएँ हैं। इन समस्याओ को सुलझाने के लिए अनेक मनीषियो न प्रयत्न किये है। मैं इन समस्याओ का उल्लेख न करके एक व्यावहारिक कठिनाई का जिक्र करना चाहता हूँ। आन्ध्र प्रदेश के बहुत से हिन्दी लेखको को प्रकाशन की सुविधाएँ उपलब्ध नही हैं। इसी लिए उनकी प्रतिभा का ठीक-ठीक उपयोग नही हो पाता। मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि उत्तर प्रदेश क सभी हि दी लेखको को प्रकाशन की पूरी-पूरी सुविधाएँ प्राप्त नही हैं, किन्तु उत्तर प्रदेश के हिन्दी लेखकों की अपेक्षा आंध्र प्रदेश क हिन्दी लेखको की कठिनाइयाँ बहुत अधिक हैं।

लेखकों को प्रोत्साहित करती हैं। धीरे-धीरे उनकी कलम मँजती है, और फिर उनकी रचनाओं के लिए प्रकाशक जुटने लगते हैं, किन्तु हिन्दी भाषी क्षेत्र से बहुत दूर बसने वाले आन्ध्र प्रदेश के हिन्दी लेखकों को इस प्रकार की सुविधाएँ बहुत कम हैं। दो-चार लेखक ही ऐसे हैं, जिन्हें प्रकाशन की सुविधाएँ मिली हुई हैं। अधिकांश अच्छे लेखकों को भी निराश होना पड़ता है। मैं यह सुझाव देना चाहता हूँ कि आन्ध्र प्रदेश के हिन्दी लेखकों की एक सहयोगी संस्था स्थापित हो, जो अपने सदस्यों को प्रकाशन सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान करे। आन्ध्र प्रदेश ही नहीं समचे दक्षिण भारत के हिन्दी लेखकों के लिए 'सहयोगी संस्था' की स्थापना होनी चाहिए।'

श्री रमेश चौधरी ने अपनी चर्चा को जारी रखते हुए कहा—'पंजाब और महाराष्ट्र के कुछ हिन्दी लेखक प्रकाशन संबंधी सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए उत्तर प्रदेश के लखनऊ, वाराणसी, इलाहाबाद आदि नगरों में बस गये। यह सत्य है कि इन नगरों में रहने पर पंजाबी अथवा मराठी भाषी लेखकों को प्रकाशन की अधिक सुविधाएँ मिलीं, किन्तु इस प्रकार अपने मूल स्थान से उखड़ कर अन्यत्र बसना उचित नहीं है। आन्ध्र का लेखक यदि हिन्दी लिखता है, तो अपने प्रान्त में रह कर ही वह हिन्दी के माध्यम से हिन्दी भाषियों को आन्ध्र की संस्कृति से परिचित करा सकता है। उत्तर प्रदेश में जा कर वह जन-जीवन से सम्पर्क स्थापित नहीं कर सकेगा। इसी तरह आन्ध्र प्रदेश का लेखक उत्तर प्रदेश, बिहार अथवा दिल्ली के प्रकाशक पर निर्भर नहीं रह सकता। प्रकाशक की अपनी रुचि होगी। हम इस बात की आशा नहीं रख सकते कि उत्तर भारत का प्रकाशक इस प्रदेश के लेखकों के विषयों में भी उतनी ही रुचि रखेगा। अपने क्षेत्र में रह कर ही प्रकाशन सम्बन्धी व्यवस्था में हम योग देना पड़ेगा।'

'यदि लेखक की रचना प्रकाशित न हो' श्री चौधरी ने कहा—'तो लेखक का प्रयास विफल हो जाता है। लेखक अपने पाठकों के लिए लिखता है। 'स्वान्तः सुखाय' अथवा 'लिखने के लिए लिखना' की बात कहने में बहुत अच्छी लगती है। प्रत्येक साहित्यकार अपनी रचना को पाठकों के हाथ में देखना चाहता है। पाण्डुलिपियों का ढेर लगाने के लिए कोई लेखक नहीं लिखता।

श्री रमेश चौधरी ने अन्त में कहा—'तेलुगु भाषी क्षेत्र के हिन्दी लेखकों का दायित्व है कि वे हिन्दी में ऐसा साहित्य लिखें जो यहाँ के जन-जीवन तथा यहाँ की प्राचीन संस्कृति को प्रतिबिंबित कर सकें।'

श्री मोटूरि सत्यनारायण ने इस चर्चा मे भाग लेते हुए कहा—'यह निश्चित बात है कि उत्तर भारत के प्रकाशक आन्ध्र प्रदेश के सभी हिन्दी लेखको की रचनाएँ प्रकाशित नही कर सकते। इस दिशा मे इस प्रदेश के लेखकों को ही प्रयत्न करना पडेगा। आन्ध्र प्रदेश से एक ऐसा साहित्यिक पत्र प्रकाशित होना चाहिए, जिसमे यहाँ के लेखको की रचनाएँ छप सकें। पत्र के कारण आन्ध्र के हिन्दी लेखको को प्रसिद्धि मिलेगी, उनका उचित दिशा मे पथ प्रदर्शन होगा। पत्र के द्वारा उनकी त्रुटियो का परिमार्जन भी हो सकेगा। हम एक ऐसा स्थायी सगठन बनाएँ जो—(१) आन्ध्र के हिन्दी लेखको की रचनाओ को छापेगा। (२) आन्ध्र प्रदेश की सस्कृति को हिन्दी साहित्य मे अकित करने लिए लेखको को प्रेरित करेगा। (३) प्रकाशित साहित्य के वितरण की व्यवस्था करेगा।'

श्री मोटूरि सत्यनारायण ने सुझाव दिया कि, 'इन तीनो कार्यों के लिए 'हिन्दी लेखक सघ' की स्थापना होनी चाहिए। इस सघ की ओर से साहित्यिक पत्र भी निकलना चाहिए।'

श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त ने अपना विचार व्यक्त किया—'नेशनल बुक ट्रस्ट फड' की ओर से पुस्तकें छापी जा रही हैं, किन्तु इतने बड़े देश के लिए ट्रस्ट को विस्तृत योजना बनानी चाहिए। प्रत्येक राज्य मे ट्रस्ट की ओर से प्रकाशन केन्द्र स्थापित होना चाहिए। यह केन्द्र उस राज्य के लेखको को प्रकाशन सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान करे। इस व्यवस्था से हमारी भाषाओं का साहित्य समृद्ध होगा। लेखक प्रकाशन सम्बन्धी व्यवस्था मे न पड कर अपना पूरा समय साहित्य-सृजन में लगा सकेगा। यदि किसी राज्य का लेखक अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा मे भी लिखना चाहे तो उसकी रचनाओ के प्रकाशन का प्रबन्ध होना चाहिए। आन्ध्र प्रदेश के हिन्दी लेखको का सघ बनना चाहिए। यह सघ मौलिक रचनाओं के प्रकाशन के साथ-साथ तेलुगु की कालजयी रचनाओं का हिन्दी मे और हिन्दी के उत्कृष्ट साहित्य को तेलुग मे प्रकाशित करे।'

उपन्यास सभी विधाओ मे इस बात पर जोर दिया जाता है कि बिजली के अधिक उत्पादन से हमारी भलाई होगी। भारत में हम इस प्रकार योजनाबद्ध ढग से साहित्य लिखा जाये, यह ठीक नही होगा। आन्ध्र प्रदेश के हिन्दी लेखकों का सगठन बनना चाहिए, किन्तु सघ अपनी योजना के अन्तगत साहित्य निर्माण की प्रेरणा न दे। लेखक जो कुछ लिखता है, उसका परीक्षण कला की दृष्टि से होना चाहिए। सभी लेखकों की अच्छी रचनाओं को छापने का प्रबन्ध हो।'

श्रीमती हेमलता आजनेयुलु ने कहा—"पुस्तकों के प्रकाशन तथा वितरण के अतिरिक्त इस बात की भी आवश्यकता है कि आन्ध्र प्रदेश के हिन्दी लेखकों की कृतियों के परिष्कार तथा सशोधन की व्यवस्था की जाए। भाषा सम्बन्धी त्रुटियों के परिमार्जन का प्रबन्ध भी लेखक सघ की ओर से होना चाहिए।"

डाक्टर भीमसेन 'निमल' ने सुझाव दिया—'आन्ध्र प्रदेश म हिन्दी की दो सस्थाएँ हिन्दी प्रचार का काम कर रही हैं—दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की आन्ध्र शाखा और हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद। दोनो के पास प्रेस की अच्छी व्यवस्था है। इन दोनों सस्थाओ से अनुरोध किया जाए कि वे यहाँ के लेखको की कृतियाँ प्रकाशित करें।"

डाक्टर श्रीराम शर्मा ने कहा—"प्रकाशन के साथ-साथ पुस्तकों के वितरण की भी व्यवस्था होनी चाहिए। सावजनिक सस्थाओ की ओर से प्रकाशित पुस्तकें बहुत कम बिक पाती हैं। कुछ राज्यो ने हिन्दी मे उच्च कोटि की पुस्तकें छापी है, किन्तु उनका प्रचार अधिक नही हो सका, निजी रूप से प्रकाशन करने वाले कुछ प्रकाशकों ने वितरण की सुव्यवस्था के कारण बहुत सफलता पायी है।'

चर्चा का समापन करते हुए श्री आरिगिपूडि रमश चौधरी ने कहा—"इस विषय पर काफी चर्चा हुई है। मैं प्रस्ताव करता हूँ कि आन्ध्र प्रदेश के हिन्दी लेखकों का एक सघ बनाया जाए। यह सघ आन्ध्र प्रदेश के हिन्दी लेखको की रचनाएँ छापेगा। प्रकाशित साहित्य के वितरण की व्यवस्था करेगा। सघ की ओर से साहित्यिक पत्र भी निकाला जाए। सघ की नियमावली बनाने के लिए एक समिति बनायी जाए। यह समिति इस सगोष्ठी की अन्तिम बैठक मे नियमावली प्रस्तुत करे। श्री चौधरी का प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया। समिति के लिए निम्नलिखित सदस्य मनोनीत किये गये—

पुस्तकों का चयन होना चाहिए। अनुवादक को गद्य का अनुवाद करते समय उतनी कठिनाई नहीं होनी, जितनी कि पद्य के अनुवाद में होती है। पद्य का अनुवाद पद्य में न करके गद्य-गीत में करना चाहिए। इससे अधिक सुविधा होगी।"

श्री मोटूरि सत्यनारायण ने चर्चा में भाग लेते हुए कहा—"तेलुगु-हिन्दी के अनुवाद कार्य में एक विशेष कठिनाई उपस्थित होती है। इन दोनों भाषाओं में संस्कृत के अनेक तत्सम शब्द प्रयुक्त होते हैं। दोनों भाषाओं में कुछ तत्सम शब्दों का रूप समान रहता है, किन्तु उनके अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। इस अर्थ-भिन्नता के कारण कई बार अनुवादक से अनर्थ हो जाता है। यदि इस प्रकार के शब्दों की एक सूची अर्थ-भिन्नता का निदर्शन करते हुए छाप दी जाए तो अनुवादकों को सुविधा होगी।"

श्री मोटूरि सत्यनारायण ने अनुवादक के सम्बन्ध में अपना विचार प्रकट करते हुए कहा—"अनुवादक को हिन्दी तथा तेलुगु का सम्यक ज्ञान होना चाहिए। अच्छी योग्यता रखने वाले अनुवादक को ही अनुवाद का कार्य दिया जाए। जहाँ तक कविता के अनुवाद का सम्बन्ध है, उसमें भावों की रक्षा के साथ-साथ नाद-सौन्दर्य पर भी ध्यान देना चाहिए। अर्थ और नाद-सौन्दर्य का घनिष्ट सम्बन्ध है। यह उचित होगा कि कविता का अनुवाद कविता में न करके गद्य में किया जाए। यदि भावार्थ के स्थान पर हिन्दी में किसी पद की व्याख्या की जाए, तो समझने में आसानी होगी। जब तक ऐसा अनुवादक उपलब्ध नहीं होता, जो नाद का भी ज्ञान रखता हो, तब तक हमें कविता का अनुवाद कविता में नहीं कराना चाहिए।"

श्री वेजवाड गोपाल रेड्डी ने कहा—'तेलुगु भाषी अनुवादकों को हिन्दी से तेलुगु में अनुवाद करना चाहिए। तेलुगु की कालजयी रचनाओं का हिन्दी अनुवाद उन अनुवादकों के लिए छोड देना चाहिए जिनकी मातृभाषा हिन्दी है और जिन्होंने तेलुगु का समुचित ज्ञान प्राप्त किया है। हिन्दी भाषी व्यक्तियों को भारतीय भाषाओं से हिन्दी के अनुवाद का कार्य अपने हाथ में लेना चाहिए।"

श्री हनुमत् शास्त्री 'अयाचित' ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा—"कविता का अनुवाद कविता में भी होना चाहिए। अनुवादक में क्षमता होगी तो अनुवाद सुन्दर होगा। अनुवादक को मूल के साथ पूरा पूरा न्याय करना चाहिए। अनुवाद के सम्बन्ध में विचार करते समय हम यह बात नहीं

(१) श्री मोटूरि सत्यनारायण
(२) श्री आरिगिपूडि रमेश चौधरी
(३) श्री एम. वी. वी. ए. आर. शर्मा
(४) श्री राधाकृष्ण मूर्त्ति
(५) श्री श्रीराम शर्मा (सयोजक)

श्री रमेश चौधरी का यह प्रस्ताव भी स्वीकार कर लिया गया कि प्रकाशन सम्बन्धी योजना बनाने के लिए एक समिति बनायी जाए। इस समिति मे निम्नलिखित सदस्य मनोनीत किये गये—

(१) श्री मोटूरि सत्यनारायण
(२) श्री बालशौरि रेड्डी
(३) श्री भीमसेन 'निर्मल'
(४) श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त
(५) श्री आरिगिपूडि रमेश चौधरी (सयोजक)

अनुवादक और अनुवाद

५ हिन्दी से तेलुगु तथा तेलुगु से हिन्दी मे अनुवाद करने के लिए किन ग्रन्थो को चुनना चाहिए, अनुवादक को किन-किन कठिनाइयो का सामना करना पडता है, इस विषय की चर्चा प्रारभ करते हुए श्री के राजगिरि शेषराव ने कहा—'हिन्दी की श्रेष्ठ रचनाओ का अनुवाद तेलुगु मे और तेलुगु की उत्कृष्ट कृतियो का अनुवाद हिन्दी मे होना चाहिए। अनुवाद एक पुनीत कर्त्तव्य है। अनुवादक भी साहित्य मे विशेष महत्त्व रखता है। समाज को इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि अनुवादक अपने आपको किसी बात मे कम न माने। कुछ ग्रन्थो के अनुवाद मात्र से हमारी आवश्यकता पूरी नही हो सकती। तेलुगु तथा हिन्दी के पारस्परिक आदान प्रदान का कार्य नियमित रूप से होना चाहिए। अनुवादक जिन कठिनाइयो का सामना करना है, उनका निराकरण भी होना चाहिए।

श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त ने कहा—तेलुगु की भी उत्कृष्ट कृतियो को हिन्दी मे रूपान्तरित करने की योजना बननी चाहिए। यदि इस प्रकार की कृतियो की सूची तैयार की जा सके तो अनुवादको को बहुत सुविधा होगी।

श्री वेमूरि राधाकृष्ण मूर्त्ति ने अपना विचार प्रकट किया कि, "तेलुगु की उत्कृष्ट कृतियो की सूची तैयार करते समय गद्य तथा पद्य दोनो प्रकार की

पुस्तकों का चयन होना चाहिए। अनुवादक को गद्य का अनुवाद करते समय उतनी कठिनाई नहीं होती, जितनी कि पद्य के अनुवाद मे होती है। पद्य का अनुवाद पद्य मे न करके गद्य-गीत मे करना चाहिए। इससे अधिक सुविधा होगी।"

श्री मोटूरि सत्यनारायण ने चर्चा मे भाग लेते हुए कहा—"तेलुगु-हिन्दी के अनुवाद कार्य मे एक विशेष कठिनाई उपस्थित होती है। इन दोनो भाषाओ मे सस्कृत के अनेक तत्सम शब्द प्रयुक्त होते हैं। दोनो भाषाओ मे कुछ तत्सम शब्दो का रूप समान रहता है, किन्तु उनके अर्थ मे परिवर्तन हो जाता है। इस अर्थ-भिन्नता के कारण कई बार अनुवादक से अनर्थ हो जाता है। यदि इस प्रकार के शब्दो की एक सूची अर्थ-भिन्नता का निदर्शन करते हुए छाप दी जाए तो अनुवादको को सुविधा होगी।"

श्री मोटूरि सत्यनारायण ने अनुवादक के सम्बन्ध मे अपना विचार प्रकट करते हुए कहा—"अनुवादक को हिन्दी तथा तेलुगु का सम्यक ज्ञान होना चाहिए। अच्छी योग्यता रखने वाले अनुवादक को ही अनुवाद का कार्य दिया जाए। जहाँ तक कविता के अनुवाद का सम्बन्ध है, उसमे भावो की रक्षा के साथ-साथ नाद-सौन्दर्य पर भी ध्यान देना चाहिए। अर्थ और नाद-सौन्दर्य का घनिष्ट सम्बन्ध है। यह उचित होगा कि कविता का अनुवाद कविता मे न करके गद्य मे किया जाए। यदि भावार्थ के स्थान पर हिन्दी मे किसी पद की व्याख्या की जाए, तो समझने मे आसानी होगी। जब तक ऐसा अनुवादक उपलब्ध नही होता, जो नाद का भी ज्ञान रखता हो, तब तक हमे कविता का अनुवाद कविता मे नही कराना चाहिए।'

श्री बेजवाड गोपाल रेड्डी ने कहा—'तेलुगु भाषी अनुवादको को हिन्दी से तेलुगु मे अनुवाद करना चाहिए। तेलुगु की कालजयी रचनाओ का हिन्दी अनुवाद उन अनुवादको के लिए छोड देना चाहिए जिनकी मातृभाषा हिन्दी है और जिन्होने तेलुगु का समुचित ज्ञान प्राप्त किया है। हिन्दी भाषी व्यक्तियो को भारतीय भाषाओ से हिन्दी के अनुवाद का कार्य अपने हाथ मे लेना चाहिए।"

श्री हनुमत् शास्त्री 'अयाचित' ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा—"कविता का अनुवाद कविता मे भी होना चाहिए। अनुवादक मे क्षमता होगी तो अनुवाद सुन्दर होगा। अनुवादक को मूल के साथ पूरा पूरा न्याय करना चाहिए। अनुवाद के सम्बन्ध मे विचार करते समय हम यह बात नही

मूल सकते कि किसी रचना के रसास्वादन के लिए पाठक अथवा श्रोता की ग्राहक शक्ति का भी बहुत महत्त्व रहता है।"

श्री श्रीराम शर्मा ने कहा—"कविता को अनुवादित नहीं किया जा सकता। कवि के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति उस अनुभूति से वंचित रहते हैं, जिस अनुभूति से प्रेरित हो कर कवि ने कविता की रचना की। तेलुगु कविता का तेलुगु गद्य में भी अनुवाद करना सरल नहीं है। अनुवादक उस कविता के आशय को समझा सकता है। इस स्थिति में गद्य जितना सहायक हो सकता है, उतना पद्य नहीं हो सकता। गद्य में किसी आशय को स्पष्ट करने की बहुत गुंजाइश रहती है।

श्री भालचन्द्र आप्टे ने कहा, "यदि अनुवादक अच्छा कवि नहीं है तो उसे गद्य में ही अनुवाद करना चाहिए। भारत की सभी रचनाओं का अनुवाद हिंदी में जल्दी से जल्दी होना चाहिए। अनुवादित पुस्तकों को लोकप्रिय बनाने के लिए विद्यालयों और कालेजों के पाठ्यक्रम में मूल रचनाओं के अतिरिक्त अनुवादित पुस्तकें भी रखनी चाहिएँ। विशेष रूप से हिन्दी के पाठ्यक्रम में तो भारत की सभी भाषाओं की अनुवादित कृतियों को स्थान मिलना चाहिए। इस समय हमारे विद्यालयों और कालेजों में अनुवादित पुस्तकों को बहुत उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है।"

श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त ने विचार प्रकट किया—"किसी भाषा की कालजयी रचनाओं का अनुवाद केवल रसास्वादन के लिए नहीं किया जाता। इन दिनों साहित्य का उपयोग भाषा विज्ञान, नृवंश शास्त्र, समाज शास्त्र, इतिहास आदि के विवेचनात्मक अध्ययन के लिए भी किया जा रहा है। किसी विषय के *तुलनात्मक अध्ययन* के लिए *विभिन्न भाषाओं के साहित्य* से बहुत सहायता मिलती है। अनुवाद चाहे गद्य में हो, चाहे पद्य में, किन्तु मूल के भावों की पूरी पूरी रक्षा आवश्यक है।'

श्री राममूर्ति 'रेणु' ने बताया—'पोतना की भागवत का हिन्दी अनुवाद करते समय मैंने स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त द्वारा अनुवादित 'मेघनाद वध' को अपने सामने रखा है। किसी भाषा की कालजयी रचनाएँ उस भाषा के सभी बोलने वालों के लिए बोधगम्य नहीं होतीं। फिर इस बात की आशा कैसे की जा सकती है कि एक भाषा की उत्कृष्ट कृति का अनुवाद दूसरी भाषा में सभी लोग आसानी से समझ जाएँगे। सुशिक्षित व्यक्ति ही कालजयी रचनाओं के अनुवाद से लाभ उठा सकता है। तेलुगु में समास बहुला भाषा

का प्रयोग होता है, मैंने तेलुगु भागवत का अनुवाद करते समय यह बात ध्यान मे रखी है कि तेलुगु भाषा की यह विशेषता हिन्दी मे भी सुरक्षित रहे।"

श्री हेमलता आजनेयुलु ने कहा—"मैं कुछ समय तक मास्को के रेडियो-केन्द्र मे काम कर चुकी हूँ। इस केन्द्र मे हजार से अधिक व्यक्ति ससार की प्रमुख भाषाओ मे अनुवाद का काम करते हैं। अनुवादको के लिए वहाँ शब्दकोशो तथा अन्य प्रकार की सुविधाएँ मुहैया की जाती है। अनुवादक एक यत्र की भाँति तेजी से अनुवाद करता है। इस प्रकार के अनुवाद मे अनेक त्रुटियो का रहना स्वाभाविक है।"

श्री हेमलता आजनेयुलु ने अनेक उदाहरण दे कर अपने कथन की पुष्टि की और कहा, "अनुवाद की सबसे पहली विशेषता यह है कि उसमें प्रत्येक शब्द को चाहे व्यक्त करने का प्रयत्न न किया गया हो, किन्तु भावो की स्पष्ट अभिव्यक्ति अवश्य हुई हो। अनुवाद पढते समय यह अनुभव होना चाहिए कि हम मूल कृति को ही पढ रहे हैं।"

तेलुगु-हिन्दी अनुवाद की कठिनाइयो पर प्रकाश डालते समय श्री हेमलता आजनेयुलु ने कहा—'अनुवादक को शब्दार्थ के ज्ञान तथा पर्याय-वाची शब्दो की उपलब्धि से ही सफलता नहीं मिल सकती। जिस भाषा से वह अनुवाद कर रहा है, उस भाषा के बोलने वालो की सस्कृति से भी उसका लगाव होना चाहिए। उदाहरण के लिए तेलुगु के 'बावा' शब्द को लीजिए। तेलुगु मे फूफी के लडके को बावा कहते हैं, किन्तु हम हिन्दी मे 'बावा' का अर्थ 'फुफेरा भाई' नहीं करेंगे। तेलुगु भाषी प्रदेश मे फुफेरे भाई के साथ विवाह होता है हिन्दी भाषी क्षेत्र मे इस प्रकार का विवाह निषिद्ध है। यदि किसी अनुवाद मे यह लिखा जाये कि फुफेरे भाई के साथ उस लडकी का विवाह हुआ तो हिन्दी का पाठक परेशानी मे पडेगा। इस प्रकार के शब्दो के लिए पर्यायवाची शब्द देना ठीक नहीं रहेगा। हम हिन्दी अनुवाद मे भी तेलुगु का मूल शब्द रख कर उसका तात्पर्य पाद टिप्पणी मे दे सकते हैं। अनुवाद करते समय अनुवादक तथा मूल लेखक मे सम्पर्क स्थापित हो, तो बहुत-सी भूलो का परिमार्जन हो सकता है।'

इस चर्चा का समापन करते हुए डाक्टर विश्वनाथप्रसाद ने कहा—"अनुवादक की एक कठिनाई यह भी है कि हमारी भाषाओ मे ऐसे द्विभाषिक कोश नहीं हैं, जो अनुवाद को दृष्टि मे रख कर तैयार किये गये हो। इस समय

जो द्विभाषिक कोश तैयार हो रहे हैं, उनसे अनुवादकों की आवश्यकता भी पूरी होनी चाहिए।"

श्री मोटूरि सत्यनारायण ने सुझाव दिया कि "हिन्दी निदेशालय की ओर से ऐसे कोश प्रकाशित होने चाहिएँ जिनमे भारतीय भाषाओं मे प्रयुक्त होने वाले समान सस्कृत तत्सम शब्दो की अर्थ-भिन्नता का उल्लेख हो।"

श्री विश्वनाथ प्रसादजी ने कहा—"भिन्नार्थ सूचक सस्कृत तत्सम शब्दो की सूची द्विभाषिक कोशो के अन्त मे दी जानी चाहिए।"

अध्यक्ष महोदय ने आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी के मन्त्री श्री देवुलपल्ली रामानुजराव से आग्रह किया कि वे तेलुगु के ऐसे उत्कृष्ट ग्रन्थों की सूची तैयार कराएँ जिनका हिन्दी मे अनुवाद होना चाहिए। प्रत्येक पुस्तक के लिए सुयोग्य अनुवादक का नाम भी सुझाया जा सके तो अच्छा रहेगा।

विविध

६. श्री बालशौरी रेड्डी ने सुझाव रखा कि आन्ध्र प्रदेश के हिन्दी लेखको को प्रोत्साहन देने के लिए आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी की ओर से प्रति वर्ष पुरस्कार देना चाहिए। मौलिक ग्रन्थो और अनुवाद के लिए पृथक्-पृथक् पुरस्कार देना ठीक रहेगा।

७ श्री भालचन्द आपटे ने कहा—हिन्दी मे आन्ध्र प्रदेश की सस्कृति तथा साहित्य से सम्बन्ध रखने वाले सन्दर्भ ग्रन्थ प्रकाशित होने चाहिएँ।

८ श्री ए सी कामाक्षीराव ने सुझाव दिया कि हिन्दी साहित्य की विभिन्न धाराओं का परिचय देने के लिए तेलुगु मे अलग-अलग ग्रन्थ लिखाये जाने चाहिएँ। हिन्दी तेलुगु का तुलनात्मक व्याकरण तैयार कराया जाए।

९ श्री मोटूरि सत्यनारायण ने कहा—सस्कृति और साहित्य की दृष्टि से तेलुगु के तीन कवि—तिक्कना, पोतना और वेमना—आन्ध्र प्रदेश का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन तीनो कवियो की विचार-धारा सामासिक रूप से आन्ध्र प्रदेश के चिन्तन को व्यक्त करती है। इन तीनो कवियो की कृतियाँ हिन्दी मे अनुवादित होनी चाहिए।

आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी के मन्त्री श्री देवुलपल्ली रामानुजराव ने बैठक मे सम्मिलित होने वाले लेखको और सभापति को धन्यवाद अर्पित किया।

दूसरी बैठक : हिन्दी साहित्य

१०. ७ फ़रवरी १९६५ रविवार को प्रातः ९ बजे सगोष्ठी की दूसरी बैठक श्री सी. बालकृष्णराव की अध्यक्षता मे हुई। बैठक के सयोजक श्री श्रीराम शर्मा ने श्री बालकृष्णराव का परिचय देते हुए कहा, "हिन्दी के यशस्वी कवि तथा विचारक श्री बालकृष्णराव हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील हैं।"

सगोष्ठी मे उपस्थित लेखकों का पारस्परिक परिचय कराया गया। डाक्टर व्रजेश्वर वर्मा ने केन्द्रीय हिन्दी सस्थान आगरा का परिचय दिया।

११. श्री बालकृष्णराव ने अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए कहा—"मेरे पिता (भारत के प्रसिद्ध पत्रकार स्वर्गीय सी. वाई चिन्तामणि) तेलुगु भाषी थे। मेरी माताजी भी तेलुगु बोलती थी। माता-पिता इलाहाबाद मे जाकर बस गये थे। हमारे घर मे तेलुगु बोली जाती थी। मेरी पढाई अग्रेजी माध्यम से हुई, किन्तु आस-पास के वातावरण के कारण अनायास ही हिन्दी से परिचय हो गया। मेरे पिताजी अग्रेज़ी के पत्रकार थे। बचपन की बात है। थोडी ही आयु मे मुझे अग्रेजी भाषा का कुछ ज्ञान हो गया था। मैंने अग्रेजी मे दो सानेट लिख कर पिताजी के सामने रख दिये। पिताजी ने उन सानेटो की ओर देखा भी नहीं। उन्होंने मुझे सलाह दी कि भारतीय लोग अग्रेज़ी मे नही लिख सकते। यदि मुझे कविता ही लिखनी है तो मैं हिन्दी मे कविता लिखूं। उस दिन का दिन है, और आज का दिन है, मैंने अग्रेज़ी मे कविता नही लिखी। हिन्दी मे ही कुछ लिखता रहा हूँ और मुझे अपने लेखन-कार्य पर पूरा-पूरा सन्तोष है। मुझे अपने पिताजी की इस बात की पूरी सच्चाई उस समय ज्ञात हुई जब मैं पिछले दिनों इग्लैंड गया था। वहाँ मैंने अग्रेजी पत्र 'एनकाउटर' के सम्पादक से अनुरोध किया कि भारतीय भाषाओं के आधुनिक साहित्य पर एक विशेषाक प्रकाशित करें। सम्पादक महोदय ने मेरा सुझाव पसन्द किया, किन्तु साथ ही प्रश्न भी कर डाला कि 'इस अक के लिए लेख कौन लिखेगा? भारत मे ऐसा कोई लेखक नही है, जो अच्छी अग्रेजी लिख सके।' वास्तविकता यह है कि हम पिछले डेढ़ सौ वर्षों से अग्रेज़ी पढ रहे हैं, किन्तु किसी भारतीय अग्रेज़ी लेखक को अग्रेज़ों ने अग्रेज़ी साहित्य के इतिहास मे विशेष स्थान नही दिया है। इस लम्बी अवधि मे अग्रेजी कामकाज की भाषा रही है। हम ने ज्ञानार्जन भी इस भाषा के माध्यम से किया है, किन्तु हम अग्रेज़ी मे सोच नही सकते, इसी लिए अग्रेज़ी मे लिख भी नही सकते।"

लेखकों के उत्तरदायित्व की चर्चा करते हुए श्री बालकृष्णराव ने कहा, "प्रश्न यह है कि लेखक किसके लिए लिखता है ? हमें इस प्रश्न का उत्तर देना चाहिए कि जो लेखक समकालीन समाज के लिए नहीं लिखता वह किसी युग के पाठक के लिए नहीं लिख सकता। 'उत्पत्स्यते कोऽपि समान-धर्मा' की प्रतीक्षा लिये हुए कोई कवि अथवा लेखक उच्चकोटि का साहित्य नहीं लिख सकता। हाँ, यह संभव है कि कोई कृति अपने समकालीनों की आवश्यकता पूर्ण करते हुए भी भविष्य के पाठकों के लिए पठनीय बनी रहे। इस प्रकार का स्थायी महत्त्व किसी कृति को अनायास प्राप्त होता है। कवि-लेखक यदि भविष्य काल के लिए लिखेंगे तो उनकी रचना न तो समकालीनों के मन को भाएगी और न भविष्य काल का पाठक उसका उपयोग कर सकेगा। फिर हमें यह बात भी स्वीकार कर लेनी चाहिए कि कोई लेखक समकालीन समाज के सभी व्यक्तियों के लिए नहीं लिख सकता। समाज के किसी विशेष वर्ग को ध्यान में रख कर ही कुछ लिखा जा सकता है। इसलिए लिखने से पहले लेखक को यह बात सोच लेनी चाहिए कि वह किसके लिए लिखता है ?"

'नये सामाजिक मूल्यों की स्थापना का दायित्व लेखक पर है'— श्री बालकृष्णराव ने अपना भाषण जारी रखते हुए कहा, "सामाजिक मूल्यों में सदैव परिवर्तन होता रहता है। यही बात नैतिक मूल्यों की भी है। पिछले १५-२० वर्ष में भारतीय समाज के नैतिक मूल्यों में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए हैं। गाँधीजी के नेतृत्व में भारतीय समाज ने त्याग, बलिदान, सहिष्णुता, निष्पक्षता आदि गुणों को महत्त्व दिया था। उन दिनों चतुराई, कूटनीतिज्ञता, व्यवहार कुशलता, आक्रोश आदि गुणों की पूजा नहीं होती थी, किन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् चतुराई, कूटनीतिज्ञता आदि गुणों को अधिक आदर मिल रहा है। आज कुछ लोग त्याग, बलिदान, सहिष्णुता आदि की उपेक्षा देख कर अप्रसन्नता प्रकट करते हैं, किन्तु हमें यह मानना चाहिए कि आवश्यकता के अनुसार नैतिक मूल्यों में अवश्य परिवर्तन होना है। समकालीन सामाजिक मूल्यों के साथ साहित्यिक मूल्यों के समन्वय में ही साहित्य की सफलता निर्भर है। गाँधी युग का लेखक इस प्रकार का समन्वय कर सका था, किन्तु आज का लेखक सामाजिक और साहित्यिक मूल्यों का ठीक तरह से सामंजस्य स्थापित नहीं कर पा रहा है। यह ठीक है कि देश का संचालन राजनीतिज्ञों के हाथ में रहेगा, किन्तु उनका पथप्रदर्शन तो साहित्यिक को करना है।"

श्री बालकृष्णराव ने कहा—'हिन्दी लेखकों, विशेष रूप से दक्षिण भारत के हिन्दी लेखकों का दुहरा दायित्व है। एक दायित्व तो वे लेखक के नाते स्वीकार करते हैं। लेखक के अतिरिक्त वे हिन्दी के प्रचारक भी मान लिये जाते हैं, इसीलिए उन्हें प्रचारक का कर्तव्य भी पूरा करना पड़ता है। हिन्दी के लेखक का इस समय सबसे बड़ा कर्तव्य यह है कि वह देश की एकता के लिए अथक परिश्रम करे।"

"हिन्दी भाषियों को देश की कोई दूसरी भाषा सीखनी चाहिए", श्री राव ने कहा, "यह सुझाव उस समय तक क्रियान्वित नहीं हो सकता, जब तक कोई ठोस लाभ दिखाई न दे। केवल भावनात्मक एकता की बात इस सुझाव को क्रियान्वित नहीं कर सकती। हिन्दी राष्ट्रीय चेतना के साथ जुड़ी हुई थी, अतः उसका हिन्दीतर भाषी प्रदेशों में प्रचार हुआ। उसी प्रकार की कोई प्रबल भावना इस बात के साथ भी जुड़नी चाहिए कि हिन्दी भाषियों का देश की अन्य भाषाओं को सीखने के लिए अग्रसर होना चाहिए। शासन को ऐसी स्थिति उत्पन्न करनी चाहिए कि हिन्दी भाषी प्रदेश के लोग हिन्दीतर भाषा के ज्ञान का समुचित उपयोग कर सकें।'

श्री बालकृष्णराव के अध्यक्षीय भाषण के पश्चात् निम्नलिखित निबन्ध पढ़े गये—

(१) हिन्दी और उसके प्रबल पक्ष—श्री आरिगिपूडि रमेश चौधरी।
(२) हिन्दी साहित्य को तेलुगु भाषियों की देन—डाक्टर भीमसेन 'निर्मल'
(३) भारतीय साहित्य और हिन्दी अनुवाद माध्यम के रूप में—श्री हेमलता आंजनेयुलु।

श्री आरिगिपूडि के निबन्ध के सम्बन्ध में श्रीराम शर्मा ने कहा कि निबन्ध का शीर्षक 'हिन्दी और उसके प्रबल पक्ष' रखा गया है, किन्तु 'प्रबल' शब्द का 'प्र' उपसर्ग कई स्थलों पर 'निर' का स्थान ग्रहण कर लेता है। हिन्दी के उपन्यासों और कहानियों के सम्बन्ध में जो मन्तव्य प्रकट किया गया है, उस पर बहुत कुछ विचार किया जा सकता है।

तीसरी बैठक : तेलुगु साहित्य

११ ७ फरवरी १९६५ की अपराह्ण में डाक्टर बेजवाड गोपल रेड्डी की अध्यक्षता में आयोजित बैठक में तेलुगु साहित्य से सम्बन्धित निबन्ध पढ़े

गये। आरंभ में डाक्टर वी. रामराजू ने अध्यक्ष महोदय का स्वागत किया। इस बैठक में निम्नलिखित निबन्ध पढ़े गये—

(१) तेलुगु रंगमंच का उद्भव तथा विकास—श्री वाराणसी राममूर्ति 'रेणु'।

(२) तेलुगु शतक वाङ्मय—श्री मु. भ. इ. शर्मा

(३) तेलुगु में हिन्दी, फारसी और अरबी के शब्द—श्री अयाचित हनुमत् शास्त्री।

(४) आन्ध्र का लोक-साहित्य—श्री कर्णवीर राज शेषगिरिराव।

(५) तेलुगु में यक्ष-गान साहित्य—श्री बालशौरि रेड्डी

(६) आधुनिक तेलुगु-कविता—श्री वेमूरि राधाकृष्ण मूर्ति

चौथी बैठक : तेलुगु तथा हिन्दी साहित्य के कुछ अंशों का तुलनात्मक अध्ययन

१२. संगोष्ठी की चौथी बैठक ८ फरवरी १९६५ को हुई। श्री पी. वी नरसिंह राव ने गोष्ठी की अध्यक्षता की। बैठक के संयोजक डाक्टर भीमसेन 'निर्मल' ने अध्यक्ष महोदय का स्वागत किया।

अध्यक्ष पद से बोलते हुए श्री पी वी नरसिंह राव ने कहा—'हिन्दी के विकास तथा प्रचार के लिए जो प्रयत्न किये जा रहे हैं, उन पर बदली हुई परिस्थिति के अनुसार विचार किया जाना चाहिए। यह आवश्यक जान पड़ता है कि 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' तथा 'हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद' अपने नाम में से प्रचार शब्द हटा दें। हिन्दी से सम्बन्धित संस्थाओं को हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास का काम हाथ में लेना चाहिए। हिन्दी की बहुत-सी कृतियाँ दक्षिण की भाषाओं में अनुवादित हुई हैं। हिन्दी का विकास केवल 'प्रदान' के कारण नहीं हो सकता। हिन्दी 'आदान' के कारण समृद्ध बनेगी।'

मद्रास के हिन्दी-विरोधी आन्दोलन का जिक्र करते हुए श्री नरसिंह राव ने कहा, 'कल मैं मद्रास में था। वहाँ के हिन्दी-विरोधी आन्दोलन के सम्बन्ध में बहुत समाचार प्रकाशित हुए हैं। मैंने कल वहाँ एक ऐसी घटना भी देखी, जिसके सम्बन्ध में कोई समाचार नहीं छपा। कल वहाँ प्रसिद्ध नर्तक गोपीकृष्णजी के कत्थक नृत्य का आयोजन था। उत्तर भारत के [illegible] को मद्रास के प्रतिष्ठित लोगों ने बड़े [illegible] ना। कुछ लोगों [illegible] श्री

कि सम्भवत नृत्यशाला के बाहर हिन्दी विरोधी लोग प्रदर्शन करेंगे, किन्तु यह आशका निर्मूल सिद्ध हुई। गोपीकृष्णजी ने यथास्थान तमिल मे भी अपने नृत्यो का परिचय देने की व्यवस्था की थी।

इस बैठक मे निम्नलिखित निबन्ध पढे गये—

(१) तेलुगु तथा हिन्दी साहित्यकी वर्तमान प्रवृत्तियाँ—नाटक तथा उपन्यास, श्री जी सुन्दर रेड्डी।

(२) तुलसीदास और त्यागराज की भक्ति का तुलनात्मक अध्ययन—श्री ए सी कामाक्षीराव।

(३) तेलुगु और हिन्दी साहित्य मे वैष्णव भक्ति की कविता—श्री सूर्यनारायण मूर्ति।

(४) तेलुगु और हिन्दी के प्रबन्ध काव्य—श्री दुर्गानन्द।

(५) तेलुगु और हिन्दी की आधुनिक कविता—श्री आलूरि बैरागी।

बैठक का समापन करते हुए श्री पी वी नरसिंहराव ने कहा—'दो भाषाओ के कवियो या लेखको की कृतियो का तुलनात्मक अध्ययन करना खतरे से खाली नही है। इस प्रकार के अध्ययन से कई बार इस बात का सकेत मिलता है कि अमुक लेखक का प्रभाव अमुक लेखक पर पडा होगा। यदि दोनो लेखक समकालीन न हो तो इस प्रकार की सभावना को अधिक बल मिलता है। हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि भारत की सभी भाषाओ मे भाव-साम्य है। भक्ति आन्दोलन ने सभी भाषाओ को प्रभावित किया है। भक्ति के अतिरिक्त अन्य विचारो से भी हिन्दी अथवा अन्य भारतीय भाषाओ के लेखक समान रूप से प्रभावित हुए हैं। इस स्थिति मे तेलुगु, हिन्दी अथवा अन्य भारतीय भाषाओ के लेखको के विचारो मे समानता दिखाई दे तो कोई आश्चर्य की बात नही। इतना होते हुए भी हमे यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि हिन्दी हिन्दी है और तेलुगु तेलुगु। दोनो भाषाओ का साहित्य अपना अपना अस्तित्व रखता है। यदि विभिन्न भाषाओ के दो अथवा दो से अधिक लेखको की तुलना करने की अपेक्षा हम दोनो के विचारो का पृथक्-पृथक् परिचय दें तो अधिक अच्छा रहेगा।

समापन समारोह

१३ आन्ध्र प्रदेश के हिन्दी लेखको की सगोष्ठी का समापन समारोह श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त की अध्यक्षता मे ८ फरवरी १९६५ को अपराह्ण मे

४॥ बजे प्रारभ हुआ। आरभ मे समापन समारोह के सयोजक श्री श्रीराम शर्मा ने बताया कि इस सगोष्ठी की प्रथम बैठक मे आन्ध्र प्रदेश हिन्दी लेखक सघ की नियमावली बनाने के लिए एक समिति बनायी गई थी। समिति ने नियमावली तैयार करके भेज दी है। इस नियमावली पर पहले विचार होना चाहिए।

नियमावली की प्रत्येक धारा पर विचार किया गया। कुछ सशोधनो के साथ नियमावली स्वीकार कर ली गयी। नियमावली का हिन्दी अनुवाद परिशिष्ट मे दिया जा रहा है।

१४ नियमावली की स्वीकृति के पश्चात् आन्ध्र प्रदेश हिन्दी लेखक सघ की स्थापना घोषित की गयी। आन्ध्र प्रदश साहित्य अकादमी के अध्यक्ष श्री बेजवाड गोपाल रेड्डी ने घोषित किया –

(१) आन्ध्र प्रदश हिन्दी लेखक सघ की कार्य समिति नियमानुसार आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी की हिन्दी परामशदाता समिति मानी जाएगी।

(२) आन्ध्र प्रदेश हिन्दी लेखक सघ के प्रारभिक व्यय के लिए आन्ध्र प्रदश साहित्य अकादमी पाँच सौ रुपये की सहायता देनी है।

(३) आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी प्रतिवर्ष आन्ध्र प्रदेश के हिन्दी लेखक को १११६ रुपये का पुरस्कार प्रदान करेगी। इस पुरस्कार के सम्बन्ध म आ प्र हिन्दी लखक सघ आवश्यक सुझाव दे।

(४) जब तक आन्ध्र प्रदेश लेखक सघ का अपना कार्यालय स्थापित नहीं होता, आन्ध्र प्रदेश [illegible] करेगा।

सघ के क्रमश अध्यक्ष, मत्री और कोषाध्यक्ष निर्वाचित हुए। सघ के अध्यक्ष श्री आरिगिपूडि रमेश चौधरी को अधिकार दिया गया कि वे सघ की कार्य-समिति के सदस्यो का मनोनयन करें। श्री आरिगिपूडि ने कार्यसमिति के लिए निम्नलिखित व्यक्तियो को सदस्य मनोनीत किया—

(१) श्री राममूर्ति 'रेणु'
(२) श्री सुन्दर रेड्डी
(३) बालशौरि रेड्डी
(४) श्री हनुमत् शास्त्री
(५) श्री भीमसेन 'निर्मल'
(६) श्री कामाक्षीराव
(७) श्री कर्णवीर राज शेषगिरिराव
(८) श्री वेमूरि राधाकृष्ण मूर्त्ति
(९) श्री हेमलता आजनेयुलु
(१०) श्री आलूरि बैरागी

सघ के अध्यक्ष श्री आरिगिपूडि को सघ के अन्य पदाधिकारियों और कार्य समिति के शेष सदस्यो के मनोनयन का अधिकार दिया गया।

निश्चय किया गया कि समापन-समारोह के पश्चात आज ही आन्ध्र प्रदेश हिन्दी लेखक सघ की कार्य समिति की पहली बैठक आयोजित की जाए।

श्री गगाशरण सिन्हा का भाषण

१७ समापन भाषण देते हुए श्री गगाशरण सिन्हा ने कहा—'यथार्थ मे साहित्यिक और राजनीतिक कार्यकर्त्ता समानधर्मा हैं। मैं साहित्यिक नही हूँ, जीवन भर राजनीतिक कार्यकर्त्ता के रूप मे सेवा करता रहा हूँ। आज राजनीतिक कार्यकर्त्ता के विभिन्न रूप जनता के सामने आते हैं, किन्तु मेरा विश्वास है असली राजनीतिक कार्यकर्त्ता और साहित्यिक व्यक्ति के उद्देश्य मे कोई अन्तर नही होता। दोनो एक ही उद्देश्य से प्रेरित हो कर कार्य करते हैं। उर्दू के कवि अमीर मीनाई ने एक शेर लिखा है—

खजर चले किसी पै तडपते है हम 'अमीर'
सारे जहाँ का दर्द हमारे जिगर मे है।

साहित्यिक और राजनीतिक कार्यकर्त्ता के हृदय मे सारे जहाँ का दर्द भरा रहता है। यदि साहित्यिक दूसरो के दुख-सुख को अपना दुख-सुख न

समझ तो वह सच्चा साहित्यिक नहीं बन सकता। संवेदनशीलता ही लेखक की कृति को महत्त्व प्रदान करती है। इसी प्रकार राजनीतिक कार्यकर्ता को भी स्वार्थ मे नही पडना चाहिए। उसे भी संवेदनशील बनना चाहिए। जहाँ कहीं पीड़ा हो, जहाँ कही विपत्ति हो, राजनीतिक कार्यकर्ता को निस्वार्थ भाव से वहाँ सेवा के लिए उपस्थित रहना चाहिए।

श्री गगाशरण सिन्हा ने कहा—"निस्सन्देह इस समय सार्वजनिक जीवन मे निराशा दिखाई देती है। ऐसा प्रतीत होता कि ससार मे अन्धकार गहरा होता जा रहा है, किन्तु यह आज की बात नहीं है। सृष्टि के आरभ से ही अन्धकार बना हुआ है। मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह प्रकाश फैलाये। प्रकाश की एक क्षीण रेखा भी बहुत मूल्यवान है। यह देखा गया है कि प्रकाश के रहते हुए भी अन्धकार का अस्तित्व नष्ट नहीं होता, किन्तु अन्धकार को देख कर प्रकाश को घबराना नहीं चाहिए। हम देखते हैं कि अन्धकार चाहे कितना भी घना हो किन्तु वह प्रकाश की एक क्षीण रेखा को भी नष्ट नही कर सकता। इसके विपरीत प्रकाश की एक मामूली-सी किरण भी अन्धकार का हृदय विदीर्ण कर देती है। इसीलिए साहित्यिक को निर्भीकता के साथ अन्धकार का सामना करना चाहिए।

१८ समापन-समारोह के अध्यक्ष श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त ने कहा—'यहाँ तीन दिन तक तेलुगु भाषी हिन्दी लेखकों ने अनुसंधानपूर्ण निबन्ध पढ़े। ये निबन्ध इस बात के परिचायक थे कि आन्ध्र प्रदेश के अनेक बन्धु हिन्दी और तेलुगु साहित्य के गभीर अध्ययन मे सलग्न हैं। इन लेखकों से साहित्य के क्षेत्र मे हम सब को बडी बडी आशाएँ हैं। मैं सगोष्ठी मे भाग लेने वाले सभी लेखकों को, सगोष्ठी के आयोजन के लिए आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी के अध्यक्ष श्र-

२२. डाक्टर रामनिरंजन पाडेय की अध्यक्षता मे ७ फरवरी १९६५ को सायंकाल ६ बजे कवि सम्मेलन का आयोजन हुआ। डाक्टर पाडेय ने कहा— भारत में कविता मनोरंजन की वस्तु कभी नहीं मानी गयी है। काव्यानद को ब्रह्मानन्द सहोदर माना गया है। मानव के अभ्युत्थान मे कविता ने निरंतर योग दिया है।

निम्न लिखित कवियो ने कविता पाठ किया—

सर्वश्री वाराणसी राममूर्ति 'रेणु', कमलप्रसाद 'कमल', आलूरी बैरागी, दुर्गानन्द, मल्लादि शिवराम, कर्णवीर राज शेषगिरिराव, प्रदीप, वेमूरि राधा कृष्णमूर्ति, एम एल. वी. आई. आर. शर्मा, एन. पानैया चौधरी, शिवप्रसाद काबरा, व्रजविहारी तिवारी, हेमलता आजनेयुलु।

आन्ध्र प्रदेश हिन्दी लेखक सघ की कार्य समिति की बैठक

सगोष्टि के समापन समारोह के पश्चात ८ फरवरी १९६५ को सायंकाल आन्ध्र प्रदेश हिन्दी लेखक सघ की कार्य समिति की पहली बैठक हुई। निश्चय किया गया—

(१) जब तक आ. प्र. लेखक सघ अपनी कार्य समिति के सदस्यो को बैठक में सम्मलित होने के लिए मार्गव्यय की व्यवस्था नही करता, तब तक विचारणीय विषयो का निर्णय पत्रव्यवहार से किया जाएगा।

(२) आन्ध्र प्रदेश हिन्दी लेखक सघ की ओर से साहित्यिक पत्रिका प्रकाशित की जाए। पत्रिका की पूरी योजना कार्य समिति के सदस्यो के पास भेजी जाए।

(३) पुस्तको के प्रकाशन तथा अन्य कार्यों की योजना स्वीकृति के लिए कार्य समिति के सदस्यो के पास भेजी जाएगी।

आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी को सुझाव दिया गया—

(क) अकादमी प्रतिवर्ष ११११६ रुपये के दो पुरस्कार प्रदान करे। एक पुरस्कार आन्ध्र प्रदेश के प्रमुख हिन्दी लेखक को और दूसरा पुरस्कार वर्ष भर की श्रेष्ठ हिन्दी रचना को दिया जाए। यदि एक पुरस्कार अनुवाद के लिए भी रखा जाए तो ठीक रहेगा। यदि दो भिन्न-भिन्न पुरस्कारों की व्यवस्था न हो सके तो एक वर्ष लेखक को और एक वर्ष पिछले पांच वर्ष की श्रेष्ठ कृति को पुरस्कृत किया जाए।

हिन्दी भाषा तथा उसका साहित्य

हिन्दी और उसके प्रबल पक्ष

श्री आरिगिपूडि रमेश चौधरी

लिपिबद्ध भाषा के मुख्यत दो भाग होते हैं—एक भाषा का, और दूसरा साहित्य का। दूसरे शब्दों मे आधार का और आधेय का, या माध्यम का और अभिव्यक्ति का। दोनो का सम्मिलित क्षेत्र है और पृथक् पृथक् भी।

भाषा के प्रबल पक्षो का चिन्तन भी दो स्तरो पर होता है, एक भाषा के स्तर पर, और दूसरा साहित्य के स्तर पर। मैं यहाँ पहले भाषा को लूँगा।

विपन्न से विपन्न भाषा का भी सम्पन्न पार्श्व होता है, हिन्दी नवीन ही सही, विपन्न भाषा नही है, इसका प्रतिरूप सस्कृत द्वारा नियन्त्रित है और सस्कृत ससार की सबसे अधिक समृद्ध भाषाओं मे परिगणित है, यही नही, हिन्दी एक स्वतन्त्र भाषा भी है, इसलिए इसके अपने आधार है।

भाषा का स्वरूप भी दो बातो पर निर्भर है—एक है इसकी सचय-क्षमता, और दूसरी सर्जन-क्षमता। इनमे कोई आनुपातिक सम्बन्ध नही हैं, पर दोनो ही भाषा के विकास के लिए आवश्यक हैं, शायद एक ही प्रक्रिया के दो पूरक रूप है। इनके बढते परिमाण ही, भाषा की विकासशीलता के द्योतक है। और इस सन्दर्भ मे पहले का सम्बन्ध भाषा से है, और दूसरे का साहित्य से।

यह एक भाषा के सर्वांगिक निर्माण की बात है, पर भाषा के प्रचलन के लिए तभी अनुकूल वातावरण मिलता है, जब वह सरल हो, सुबोध हो, और समीपवर्ती प्रदेशो की भाषा से साम्य रखती हो। भाषा का सरल होना या किया जाना सम्भव है, पर उसका प्रचलन योग्य बन जाना आकस्मिक है। और हिन्दी को यह आकस्मिक भाग्य प्राप्त है, और इसके बारे में यह सत्य है कि प्रचलन और विकास एक साथ सम्भव है। यह भाषा की समतल प्रगति के बारे मे ही है, क्योंकि अंग्रेजी तथा कुछ अन्य भाषाएँ इसके अपवाद हैं।

वर्तमान हिन्दी की सचय क्षमता निस्सन्देह असाधारण और आश्चर्य-जनक है, इसमे हिन्दी क्षेत्र की सभी प्रचलित अपभ्रंश भाषाओ के शब्द प्रचुर मात्रा मे हैं ही। हिन्दी जिस रूप मे आज है, यह अपभ्रंश भाषाओ की उत्तराधिकारिणी ही नही है अपने विस्तृत रूप मे शायद उन सबको खपा भी लेती है।

अपभ्रंश भाषाएँ हिन्दी हैं कि नही, यह विवादास्पद है। पर मानना होगा कि ये हिन्दी के जितनी निकट हैं, उतनी किसी और भाषा के निकट नही हैं—फिर उन प्रान्तो की हैं, जहाँ हिन्दी स्वीकृत प्रान्तीय भाषा है। इस तरह युक्ति दी जा सकती है, राजस्थानी, ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली आदि अपना भिन्न स्थान रखते हुए भी हिन्दी के बढते भवन मे भिन्न कक्ष मात्र हैं, और लिपि तो इन सबकी नागरी है ही। या यूँ कहा जाए कि हिन्दी इन सब भाषाओ का सम्मिलित या समन्वित रूप है।

अपभ्रंश का विकास सीमित है, प्रचलन सीमित है, ये शिक्षा की माध्यम नहीं हैं। अपभ्रंश, साहित्य के वाहन के रूप मे जहाँ मन्थर पड जाती है, हिन्दी वहाँ छलांगें भरती है। अपभ्रंश और हिन्दी, एक ही प्रक्रिया के पूर्व और उत्तर अश हैं।

इसलिए हिन्दी नयी है,—यह जिस रूप मे आज है शायद भारतेन्दु कालीन है, अर्थात् मुश्किल से सौ वर्ष की। परन्तु इस अल्प समय मे यह इतनी परिवर्तित और परिवर्धित हुई है, कि कहना होगा इस जैसी सचयशील और गतिशील भाषाएँ ससार मे कम ही हैं।

इन सौ वर्षों म हिन्दी का कायाकल्प हुआ है, न भरतेन्दु की भाषा आज टकसाली है न राजा शिवप्रसाद की ही। महावीरप्रसाद द्विवेदी युग मे इसको जो आधार मिला, वह आज भी विद्यमान है, पर द्विवेदी युग की हिन्दी मे और आज की हिन्दी मे काफ़ी भेद है। हिन्दी का स्वरूप बदल रहा है और यह परिवर्तन वाछनीय है। यह एक जीवन्त भाषा का लक्षण है।

हिन्दी का नयापन——हिन्दी का प्राचीन न होना, इसका एक प्रबल पक्ष है। हिन्दी को प्राचीन बनाने की चेष्टा, शायद एक हीन भावना झलकाती है—भाषाएँ ज्यो-ज्यो प्राचीन होती जाती हैं, वे व्याकरण व प्रचलन के अनिश्चित नियमो मे रूढ़िबद्ध-सी हो जाती हैं, और उनकी प्रगति का परिमाण मन्द और न्यून हो जाता है।

इसका नयापन ही, विकास के लिए चेतावनी है, और यह चेतावनी स्वीकार भी कर ली गयी है। विकास कहीं-कहीं अनुकरणात्मक ही सही, विकास है। कालक्रम से वह अधिक पुष्ट और मौलिक हो जाएगा।

आज की हिन्दी भाषा, सिवाय दिल्ली और उसके पास के इलाके मे कही उस तरह नही बोली जाती है, जिस प्रकार वह लिखी जाती है। सम्पूर्ण हिन्दी प्रान्त की लिखित भाषा मोटे तौर पर एक-सी ही है। दूसरे शब्दो मे यह सर्वत्र सिखाई जाती है। यह अध्यापन सुलभ भाषा है। यही कारण है कि इसके अध्ययन, और अध्यापन की सुविधाएँ पजाब से ले कर तमिलनाड तक उन दिनो भी उपलब्ध थी, जब यह राष्ट्रभाषा या राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित न थी। सम्प्रति तो खैर है ही। यह इसका एक और प्रबल आकर्षण है।

भाषा की दृष्टि से, यह प्राय बहुमत की दूसरी भाषा है। इसलिये यह हर किसी की मातृभाषा का प्रभाव ग्रहण करती है, और अपनापन बनाये रखती है। यह परिवर्तित हो कर भी वस्तुत परिवर्तित नही होती। इसकी यह विशेषता, बिना विरोध के, इसके प्रचलन को निर्विघ्न और सरल बनाती है। भाषा की ग्रहणशीलता, वैय्याकरणो की कुछ भी राय हो, प्रारम्भ मे उसके प्रचलन को शक्ति देती है, और प्रचलन के मार्ग की दिशा निर्णीत करती है, और वह इस तरह आसानी से सवत्र स्वीकार्य भी हो जाती है। इससे हिन्दी तो समृद्ध होती ही है, दूसरी भाषाएँ भी इसके सहवास मे कुछ नही खोती। हिन्दी सगति योग्य भाषा है।

हिन्दी का नयापन ही इसकी रक्षा है। एक बनती भाषा किसी और भाषा को नही बिगाडती। बनती भाषा हमेशा उधार लेती है। जहाँ तक मैं अनुमान कर सकता हूँ, भारत की चौदह भाषाओ मे, वर्तमान हिन्दी ही शायद सब से कम प्राचीन है। और यह कोई लज्जास्पद विषय नही है।

हिन्दी की सचय क्षमता विचित्र और प्रभावोत्पादक है। और भाषाओ के शब्द इसमे समा जाते हैं, जहाँ तक मेरा अनुभव है, भाषा के प्रवाह को अवरुद्ध नही करते। देखा जाये तो नवीनता की पृष्ठभूमि मे, इसके अपने शब्द हैं भी कम, पर सम्मिश्रण के कारण इसका शब्द भाडार कम ही समय मे बहुत विशाल हो गया है। हिन्दी भाषा उदार है, और उधार प्रिय है। हर भाषा से इसमे शब्द आये हैं, और इसके अपने हो गये है। द्राविड भाषाओ में, जहाँ तक मैं जानता हूँ, नये शब्द उस मात्रा मे नही आ रहे हैं, यदि आ

भी रहे हैं तो वे इस तरह खप नहीं पाते है—वे जोड ही रहो जाते हैं। हर भाषा की अपनी-अपनी मिफ्त होती है।

तेलुगु मे, कहा जाता है, ८० प्रतिशत संस्कृत के शब्द हैं, पर इन ८० प्रतिशत शब्दो के लिए करीब-करीब तेलुगु के शब्द भी हैं। मेरा इशारा 'उच्च तेलुगु' अर्थात संस्कृत बहुल तेलुगु की ओर है। इन दोनो का सम्मिलित रूप है, और पृथक रूप भी।

यही बात तमिल की है, इसमें संस्कृत के शब्द हैं, इनका तमिल मे कुछ कुछ रूप भी बदल गया है, परन्तु वे संस्कृत के ही शब्द हैं, तमिल के नही। इसके लिए बाहर से अपनाये हुये शब्द एक अतिरिक्त शब्द-राशि मात्र है।

पर हिन्दी के इस तरह पृथक कोश नही हैं, जो शब्द इसने और भाषाओ से लिए हैं, वे इसके अपने हो गये हैं, और उनके स्थान पर इसके पास उस तरह के शब्द नही हैं, जिस तरह तमिल और तेलुगु के पास हैं। पर्यावाची पद सम्भव हैं, पर वे भी अधिकाश उधार के ही हैं।

यही नहीं, इसके व्यावहारिक, और ग्रान्थिक रूप मे भी कम अन्तर है। इसकी लिखित शैली मे सन्तोषजनक एकरूपता है, लिखित हिन्दी चाहे बिहार की हो, या राजस्थान की, या मध्य प्रदेश की, या मद्रास या आन्ध्र की, मोटे तौर पर एक-सी है। यह निर्विवाद ही एक लिपिबद्ध भाषा के सुदृढ आधार हैं।

मैं यह नही सुना रहा हूँ कि यह कोई निश्चित योजना के अन्तर्गत व किसी नियम के अनुसार हुआ है। भाषा का स्वभाव ही ऐसा है, जब भाषा के निर्माण को योजनाबद्ध कर दिया जाता है, जैसा कि आजकल कहीं कहीं देखा जा रहा है, तो उसम प्रगति की अपेक्षा सम्भवत गतिरोध अधिक आता है। एकरूपता एक स्वाभाविक परिणाम है, न कि पूर्व चिन्तित प्रयत्न। एकरूपता के बहाने, उधार की प्रवृत्ति को, एक ही भाषा तक सीमित रखना हठधर्मी है, बुद्धिमत्ता नही। एक बढती भाषा के लिए एकरूपता उतनी स्वस्थ भी नहीं है।

आजकल हिन्दी की शब्दावली संस्कृत से ही ली जा रही है। और युक्ति दी जाती है कि और भारतीय भाषाओ का आधार भी संस्कृत ही है। पर संस्कृत के शब्द जिस स्वतन्त्र रूप से बनाये जा रहे हैं, वे कभी-कभी

संस्कृत के विद्यार्थी के लिए भी क्लिष्ट और दुर्बोध हो जाते हैं। यदि ये इसलिए लिये जा रहे है क्यो कि और भारतीय भाषाएँ भी संस्कृतोद्भूत हैं, या संस्कृत प्रभावित है, तो ध्यान रखा जाना चाहिए, कि संस्कृत शब्दावली सभी भाषाओ मे एकरूप हो। यह इस समय है नही।

हिन्दी का जैसे विकास हुआ है, और इसकी भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि इसके द्वार सभी भाषाओ के लिए खुले रहने चाहिएँ। स्वभावत इसके द्वार खुले हुए ही हैं, पर यही वही, इनको बन्द करके, या बन्द करने का प्रयत्न करके, इसकी स्वाभाविक प्रबलता को क्षीण किया जा रहा है। इस प्रकार का एकपक्षी शब्दाविष्करण इसके प्रचलन के लिए प्रतिबन्धक होगा। और इसको ऐसे ढाँचे मे ढाल देगा, जो इसके विस्तार के हित मे न होगा।

स्वातन्त्र्योत्तर काल मे, हिन्दी मे निरन्तर शब्द बन रहे हैं, बहुत कुछ बनाये जा रहे है, और इतना कुछ बताया गया है, और इस तरीके से बनाया गया है कि शायद उनम से बहुत कम हो हिन्दी खपा पाएगी। इस तरह हिन्दी कृत्रिम और मुटियल हो जाती है। परन्तु यह इस प्रकार इतने शब्द बना सकी, यह कुछ और सूचित करे या न करे, इसकी सृजन-क्षमता अवश्य सूचित करती है। यह सृजन स्वस्थ है कि नही कदाचित् विषयान्तर है।

भाषा का स्वभाव ही प्रचलन है, जब इसको कृत्रिम बना दिया जाता है तो इसका प्रचलन सीमित हो जाता है। इसके लिए पटरियाँ निश्चित कर दी जाती हैं, जो भाषा की सहज नैतिकता का कुछ अश तक उल्लघन ही है, और इसके प्रचार की आवश्यकता अनुभव की जाती है, और जब प्रचार होता है तो विरोध भी होता है। कोई यह नही चाहता कि उसकी अपनी गली मे किसी और की भी कोई पटरी हो। अच्छा है यदि हिन्दी को स्वाभाविक रूप से बढने दिया जाए।

हिन्दी का न मालूम क्यो आकर्षण रहा है—स्त्रियाँ जो औरो को आकर्षित करती है, इससे विशेषत आकर्षित हैं। उनको आकर्षित करने के लिए किसी प्रकार प्रचार या प्रदर्शन की आवश्यकता न थी। परि-स्थिति आज विशेष नहीं बदली है। यह हिन्दी का सौभाग्य है कि अशिक्षित इसके द्वारा अपने को शिक्षित करते है——जो अंग्रेजी शिक्षणालयों की खर्चीली विद्या से वंचित रहते हैं, हिन्दी सीख कर अपनी शिक्षा पूरी करते है—दूसरे शब्दो मे यह शिक्षा का वैकल्पिक माध्यम है, इसके लिए जितनी

परीक्षाएँ और पदवियाँ है, शायद भारत की किसी अन्य भाषा मे नही है। यह भी इसकी प्रवल विशेषता है।

कुछ भी हो, हिन्दी, वस्तुत बडी सचय क्षम और सृजन क्षम भाषा है।

जब मैं हिन्दी का प्रवल पक्ष कहता हूँ तो मेरा अर्थ इसके दोनो रूपो से है, इसका वर्तमान रूप, और इसका अपभ्रश रूप, और साहित्य रूप।

इसके साहित्य मे ऐसी कौन सी विशेषताएँ हैं, जो और भाषाओ मे इस परिमाण मे नही है ? ऐसी कौन सी विधाएँ है, जिनमे हिन्दी विशेषत समृद्ध है, इसके कौन से अग है, जो तुलनात्मक दृष्टि से और भाषाओ से अधिक पुष्ट हैं ?

सन्त साहित्य सभी भारतीय भाषाओ मे है, पर जो वैविध्य हिन्दी मे है, उस मात्रा मे, जहाँ तक मैं जानता हूँ, और भाषाओं मे नही है। यह भक्ति प्रधान ही नही, दर्शन प्रधान है, यह कथा प्रधान ही नही, गीत प्रधान भी है, धर्म की पृष्टभूमि मे, यह ललित साहित्य का सुन्दर उदाहरण है।

यदि इसमे गूढ रहस्यवाद है, या युक्ति सम्पन्न सगुण, और निर्गुण वाद है, तो यह रसमयी कविता भी है, तुलसी, सूर, कबीर, और बीसियो सन्त किसी भी देश के दर्शन के, कविता के आदर्श क्रान्तिद्रष्टा हो सकते हैं। मीरा की कविता जो स्निग्ध ज्योत्स्ना-सी है, या सगीत सुधा-सी, अन्य भाषाओ मे दुर्लभ है।

भारतीय चिन्तन, वस्तुत, जिस सुबोध रीति से सन्त साहित्य मे व्यक्त हुआ है, सम्भवत किसी और माध्यम मे नही हुआ है,—आध्यात्मिक, आधि-भौतिक, लौकिक, अलौकिक, वास्तविक, काल्पनिक सभी विचार इस मे हैं। यह काव्यात्मक, तार्किक दर्शन की चरम सीमा है। मन के सभी कुतूहल इसमे प्रतिबिम्बित हुए हैं, और कुछ अश तक परिष्कृत भी।

विचार-पथ काई भी हो, धर्म कुछ भी हो, आराध्य देव कोई भी हो, कोई भी बौद्धिक वाद हो, पर वे सभी पद्य मे ही व्यक्त हुए हैं, और यह भी शुद्ध भारतीय परम्परा म।

अच्छी कविता का अनुवाद कठिन है, भाषा और शैली कुछ भी हो, प्राय अच्छी कविता के भाव जब अनुरित्त होन लगते हैं, सभी भाषाओं मे एक ही तरह प्रस्फुटित होते हैं। शायद यही कारण कि हिन्दी का सन्त साहित्य पूर्ण रूप से अभी भारत की समृद्ध भाषाओ मे भी अनूदित नहीं हुआ है।

सम्भव है कि इसका कारण अपभ्रंशो का अप्रचलन हो या इनकी गूढ़ता हो, या समाज के बढते धर्म निरपेक्ष मूल्य हो, पर उनके साहित्यिक व बौद्धिक मूल्य शाश्वत हैं।

छायावाद वर्तमान हिन्दी की अपनी विशेष सम्पत्ति है, आज की कविता तो छायावाद की क्यारी से भी बाहर आ गई है—क्या आ गई है ? मैं यहाँ यह निश्चित करने की अनधिकार चेष्टा नही करूँगा।

मानव कल्पना, और अनुभूति भिन्न-भिन्न रूपो मे, भिन्न-भिन्न समयो पर भिन्न भिन्न माध्यम, और विधाओं मे व्यक्त हुई है। प्रधानता अनुभूति और अभिव्यक्ति की है। कभी वह परम्परा का पालन करके हुई है, तो कभी परम्परा का उल्लघन करके हुई है। दोनो का ही, अपने-अपने सदर्भ मे मैं स्वागत करता हूँ। कहना न होगा आधुनिक अतिवास्तविक वाद या "वाद रहित वाद" से कोई शिकायत नही है।

छायावाद शायद अग्रेजी के इम्प्रेशनिज्म का अनुवाद है। इसमे विषय अपेक्षाकृत गौण है, और व्यक्ति मुख्य। यह आधारत व्यक्तिपरक साहित्य है। इसमे कवि प्रच्छन्न नही है। वह प्रत्यक्ष ही नही है, वह औरो के लिए शायद दर्पण बनने का भी प्रयत्न करता है।

जो एक व्यक्ति के लिए एक समय मे स्पष्ट है, वह दूसरे के लिए उसी रूप मे, उसी मात्रा मे, स्पष्ट हो, यह नही कहा जा सकता। पर व्यक्ति को अपने अनुभव और विचार प्रकट करने का अधिकार है। छायावाद का बल सम्प्रेषणीयता पर न होकर, कदाचित आत्माभिव्यक्ति पर है।

कविता का सबसे मुख्य विषय, अन्तिम विश्लेषण मे, कवि स्वय है। वह कोई परिस्थिति या विषय नही प्रस्तुत कर रहा है जैसा कि विषयपरक कविता मे होता था पर परिस्थिति के प्रति वह अपनी प्रतिक्रिया प्रस्तुत कर रहा है। मनुष्य ही एक रहस्य है, और मनुष्यो मे कवि और भी रहस्यपूर्ण है, इसलिए छायावाद का उदार आलोचकों की सम्मति मे रहस्यपूर्ण हो जाना स्वाभाविक था यह रहस्य क्या है, इसका रूप क्या है, यह मेरी कुतूहल की परिधि से बाहर है।

छायावाद एक बौद्धिक अन्वेषण है, और एक शिल्प परीक्षण है। यह निश्चय ही भारतीय कविता मे एक नया अध्याय है, एक नया क्षेत्र है, पहले कविता म भी कथा का आधार होता था, या विषय-परिपोषण होता था, अब छायावाद मे कवि अपना ही प्रक्षेपण करता है।

छायावाद के विकास मे, हो सकता है, बंगाली का प्रभाव हो, उर्दू का प्रभाव हो, पाश्चात्य परीक्षणो का प्रभाव हो। यह भी संभव है कि इसकी बहुत सी सामग्री अनुपादेय होकर काल-कवलित हो गई हो। पर इसका हिन्दी साहित्य में युग रहा है, और वह निस्सन्देह महत्वपूर्ण युग है।

जब कविता व्यक्तिपरक हो जाती है, और व्यक्ति की अनुभूतियाँ अनिश्चित हैं, और इसकी मानसिक प्रवृत्तियो पर निर्भर हैं, अभिव्यक्ति की क्रियाएँ भी निश्चित रूप से, नियमबद्ध न हो, परिलब्ध न हो, तो कवि की दृष्टि मे वह भले ही साहित्यिक कृति हो, पर अकवि पाठक की दृष्टि मे वह ज्वालामुखी का विस्फोट ही है, अपचन का वमन ही है। यह सभी कलाकृतियो के बारे मे कहा जा सकता है। वे, सब मे, एक समय मे, एक ही प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं पैदा करती।

पर हो सकता है, एक ही समय म, एक से अधिक व्यक्ति एक ही तरह की चीज सोच रहे हो, और एक ही तरह की बातें कहना चाह रहे हो, उस हालत मे कवि को अपनी ध्वनि की प्रतिध्वनि पाठक म भी मिलती है। लेकिन प्राय आधुनिक कविता मे ऐसा नही होता, इसलिए इस प्रकार की कविता की उपयोगिता कम हो रही है।

पर कहना होगा कविता के विकास की प्रक्रिया मे इस कविता की भी महत्ता है। मथने के बाद मक्खन भी पहले झाग रूप म ही निकलता है।

हिन्दी भूमि कविता के लिए बहुत उर्वरा प्रतीत होती है, इसका परिमाण ही इतना विस्तृत और वैविध्यपूर्ण है कि इसको हिन्दी का प्रबल पक्ष ही कहना होगा और बदलते साहित्यिक मूल्यो के सिलसिले मे मैं इसकी अमरता आँकने का दुष्प्रयत्न नहीं करूँगा।

कई कहते हैं हिन्दी मे प्रेमचन्द हैं और प्रेमचन्द उपन्याससम्राट हैं, महान् लेखक हैं, इसलिए हिन्दी का उपन्यास साहित्य भी महान् होगा। हिन्दी मे, अनुवाद रूप मे, उन सब उपन्यासकारो की रचनाएं भी हैं जो अपनी-अपनी भाषाओ मे महान हैं, हिन्दी के उपन्यास साहित्य मे क्या वह सब कुछ है जो अन्य भाषाओं के उपन्यास साहित्य मे है, अत हिन्दी का उपन्यास साहित्य बहुत विस्तृत है।

यह बात मानसिक धारणाओं की है, इसलिए कुछ-कुछ भावुकता की भी। पर मेरी दृष्टि म अप्रिय सत्य कुछ और है।

सामूहिक साहित्य दो तरह से आँका जाता है, एक आवश्यक्ता के सिरे मे, और दूसरा शक्ति के सिरे से। उपन्यास की विधा, बहुत ही लोकप्रिय और उपयोगी विधा है। वह मनोरजन का माध्यम ही नही, चेतना का भी माध्यम है। आवश्यकताएँ कई प्रकार की हैं, और उपन्यासकार के दायित्व भी कई प्रकार के है। मुझे सन्देह है, कि हिन्दी के उपन्यास साहित्य मे, हिन्दी लेखको के द्वारा, उन आवश्यकताओ की पूर्ति हो रही है कि नही।

यदि शक्ति के सिरे से देखा जाए, हिन्दी भाषी, मत की बात है, उतने सशक्त नही उतरते। चूँकि उनका उपन्यास साहित्य उतना मौलिक और सम्पन्न नही मालूम होता। यह एक बडे देश की सबसे बडे क्षेत्र की भाषा है, और इसका उपन्यास साहित्य, सहसा हम पूछ बैठते है, यह ही है, इतना ही है ?

उपन्यास को, किसी फ्रेंच लेखक ने "सडक" बताया है, अर्थात् इसमे सब कुछ आता है, एक जगह से शुरू होता है, एक जगह समाप्त होता है, या एक दर्पण-सा है—इतिहास से कुछ मिलता-जुलता, कल्पना और यथार्थ का सुन्दर सम्मिश्रण, जिसमे समाज अपना प्रतिबिम्ब देखता है, अपना पथ देखता है, और गतव्य देखता है। इस अर्थ मे, हिन्दी लेखको के कितने उपन्यास हैं, जो इस कसौटी पर खरे उतरते हो।

सत्य है, प्रेमचन्द के उपन्यासो म, तत्कालीन सामाजिक झाँकियाँ मिलती हैं। उनकी कई कृतियाँ सामयिक है। और सामयिक कृतियो का, यदि वे सर्वव्यापी शाश्वत मूल्यो पर आधारित न हो यह दुर्भाग्य है कि वे चिरायुष्मती नही होती। चूँकि समय बदलता है, और समय के साथ मूल्य बदलते है, परन्तु सौभाग्य से प्रेमचन्द को अभी इस दुर्भाग्य ने शायद नही ग्रसा है।

मैं केवल यह कहने का प्रयत्न कर रहा हूँ कि हिन्दी का उपन्यास-पक्ष उतना प्रबल नही है, कि वह औरो के लिए सहसा उदहरणीय हो। कविता के पार्श्व से तो यह निर्बल है ही। यह भी एक चेतावनी है, शक्ति की चेतावनी है, और आवश्यक्ता की चेतावनी है। इसे हमे स्वीकारना होगा।

पर हिन्दी मे, कविता और उपन्यास से भी बहुत ही अधिक सबल पक्ष है, समालोचना का। यह शायद वर्तमान हिन्दी का प्रबलतम पक्ष है। जितनी आलोचना, प्रत्यालोचना हिन्दी मे होती है, शायद भारत की किसी

और भाषा मे नही होती, जितना अनुसन्धान हिन्दी मे होता है, और जितने "अन्वेषण प्रबन्ध" हिन्दी मे लिखे जाते हैं, शायद किसी और भाषा मे नही लिखे जाते।

आलोचना का स्तर कुछ भी हो, कितना ही कलुषित, और पक्षपात-पूर्ण और गुटबन्दी ग्रस्त हो, मेरे लिए यही सतोष का विषय है, कि आलोचना होती तो है।

अपभ्रश कवियो पर विस्तृत अनुसन्धान करके, आलोचनात्मक इतिहास लिख कर हिन्दी ने उनको आत्मसात् करने का श्लाघनीय प्रयत्न किया है।

आलोचना की पुस्तकें तो प्रकाशित होती ही है, कई पत्र-पत्रिकाएँ भी निकलती है, जिनकी सारी सामग्री अनुसन्धान और आलोचना से सम्बन्ध रखती है।

आलोचना की पदावली भी हिन्दी की एक विशेषता है, जो प्राय उन्ही के लिए सुबोध होती है, जो अंग्रेजी जानते हो, और जो अंग्रेजी जानते हो, वे हिन्दी मे आलोचना क्यो पढ़ें ? चूँकि हिन्दी की पुस्तको की आलोचना अंग्रेजी मे नही निकलती, अन्य भारतीय भाषाएँ भी उनके बारे म तटस्थ ही रहती हैं, अत यह भी सम्भव है कि आलोचना पढी भी न जाती हो।

आलोचना साहित्य हिन्दी मे इतना निकलता है कि कभी कभी सन्देह होने लगता है कि आलोचना की पुस्तकें अधिक प्रकाशित होती हैं, बनिस्बत आलोच्य पुस्तको के।

पिष्ट-पेषण मौलिक चिन्तन के लिए विष समान हो सकता है, पर आलोचक के लिए, हो सकता है, वह पौष्टिक भोजन हो। विषय सीमित हो, और पाण्डित्य भी सीमित हो, तो पिष्टपेषण अपरिहार्य है। यह हिन्दी की खूबी है, कि एक ही विषय पर एक-सी सामग्री, बहुत से लेखको द्वारा एक ही समय मे दी जाती है। नही मालूम कि इस सम्बन्ध मे, मौलिकता के दावे किये जाते हैं कि नहीं। पिष्टपेषण ही सही वे सक्रिय तो हैं।

यो ता अंग्रेजी ने सभी भारतीय भाषाओ को प्रभावित किया है, पर जितनी हिन्दी आलोचना इससे प्रभावित हुई है, शायद और कोई भाषा नहीं हुई है। हिन्दी आलोचना अंग्रेजी उद्धरण-बहुल है, जब कि आलोच्य वस्तु भारतीय है। इस पर क्या कहा जाए या निकलता ?

मैंने अन्यत्र कहा है कि हिन्दी अध्यापन सुलभ भाषा है। यह अनिवार्य पाठ्य विषय है। जिस ज़ोर-शोर के साथ, इसे पढ़ाया जाता है कोई और भाषा नहीं पढ़ायी जाती। यही कारण है कि इस पर अध्यापकों का दबदबा है। आलोचकों की, जो प्राय आजकल प्राध्यापक, और प्रवाचक ही होते हैं, इस पर जबर्दस्त पकड़ है। कुछ प्रबुद्ध चिन्तकों की दृष्टि में, हिन्दी, आलोचक और अध्यापकग्रस्त भाषा भी है। इसमें लेखक पीछे हैं, और आलोचक आगे। यह इसकी विशेषता अवश्य है, प्रबल पक्ष हो या न हो।

हिन्दी का प्रबलतम पार्श्व इसका राष्ट्रभाषा होना है। इसको राष्ट्रीय-एकता का सूत्र समझा जाता है, और यह एकता का सूत्र, उदार दृष्टिकोण और उत्तम साहित्य से ही सशक्त किया जा सकता है।

सत्य यह है, राष्ट्रभाषा के लिए कोई भी भाषा पूर्णत विकसित नहीं है, राष्ट्रभाषा हो कर, कोई भी भाषा अविकसित नहीं है। प्रश्न विकास और अविकास का नहीं है, प्राचीनता, अर्वाचीनता का नहीं है। अपनी और पराई का है। हिन्दी भारतीय है, अपनी है, यही मुख्य और महत्त्वपूर्ण बात है।

हिन्दी को आन्ध्र की देन

डा० भीमसेन 'निर्मल'

भारतीय मनीषी अनेकता में एकता का अनुभव करता है, उसकी यह प्रवृत्ति अतिप्राचीन है। समस्त सृष्टि में एक अद्वैत तत्त्व की स्थापना करने तक उसे शान्ति प्राप्त नहीं हुई थी। अनेक में एक को देखने तथा अनुभव करने में ही जीवन की सार्थकता मानी गयी, जो भारतीय संस्कृति की विशेषता है। कन्याकुमारी से काश्मीर तक तथा जगन्नाथपुरी से द्वारकाधाम तक व्याप्त इस संस्कृति की एकरूपता अतिप्राचीन काल से बनी हुई है। जीवन-विधान, विचारधारा, वेशभूषा, भाषा आदि में प्रतिभासित होने वाली बाहरी विभिन्नता के पीछे एक अखंडता है। इन बाह्य विभिन्नताओं के सूक्ष्म एवं तुलनात्मक अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ये सब मानो एक ही तत्त्व की अनेक टीकाएँ हैं, अनेक परिभाषाएँ हैं। श्रीमती महादेवी वर्मा के शब्दों में 'ये सब एक अखंड और विराट सत्य पर विभिन्न दिशाओं से फेंके गये प्रकाश की किरणें हैं।

भौगोलिक तथा राजनैतिक विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत की यह सांस्कृतिक एकता युगों से सुस्थापित है, किन्तु एकता की यह भावना अनायास घटित नहीं है। समय-समय पर, स्थान-स्थान पर उत्पन्न होकर हमारे साहित्यकार, कलाकार, चिन्तक, साधक अपनी रचनाओं एवं उपदेशों द्वारा इस एकता की भावना का प्रचार करते रहे, साहित्य-सृजन द्वारा भारतीयता की प्राण प्रतिष्ठा करते रहे। उत्तर और दक्षिण की मोक्षप्रदायिनी सात नगरियाँ, पंच गंगाएँ, जगद्गुरु द्वारा स्थापित चारों धाम भारतीय साहित्य, आदि, स्मृति, [illegible] हैं।

भारत को एक सूत्र में बाँध रखने का अथवा भारतीय जन मानस को एक मौन में डालने के साधनों में भाषा एवं साहित्य का स्थान सर्वोपरि है।

भिन्नता मे अभिन्नता सिद्ध करने मे, भावो की अभिव्यक्ति का एकमात्र साधन भाषा ही है। इस दृष्टिकोण से 'मध्यदेश' की भाषा का—चाहे वह सस्कृत रही हो, चाहे प्राकृत, चाहे पाली, चाहे खडी बोली हिन्दी ही क्यो न हो—भारत के सास्कृतिक इतिहास मे प्रमुख स्थान रहा है। धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक एव आर्थिक सम्बन्धो के निर्वाह के लिए, 'मध्यदेश' की भाषा प्राचीन काल से ही अन्तप्रान्तीय व्यवहार का माध्यम रही है। ऐतिहासिक प्रमाणो से यह सिद्ध हो जाता है कि 'मध्यदेश' की भाषाओ की साहित्य सम्पन्नता मे अपना सहयोग प्रदान करना, आन्ध्रो की परम्परा रही है। सर्वदा आन्ध्रो ने मध्यदेश की भाषाओं का दिल खोल कर स्वागत किया है, किसी प्रकार के वैमनस्य के बिना ही, अपनी सेवाएँ अर्पित की है और इन भाषाओ के साहित्यो की श्रीवृद्धि मे अपनी शक्ति लगायी है।

अब यहाँ उसी ऐतिहासिक परम्परा का सक्षेप मे विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

ससार की सम्पन्न भाषाओ और उनके साहित्यो मे सस्कृत भाषा व साहित्य का स्थान सर्वोपरि है। इस सर्वतोमुखी सम्पन्नता का श्रेय भारत के सभी प्रान्तो के मनीषियो तथा•प्रतिभाशाली व्यक्तियो को है। द्रविड भाषा-परिवार से सम्बद्ध होने पर भी आन्ध्र ने सस्कृत साहित्य की जो सेवा की है, वह अनुपम एव अद्वितीय है।

दक्षिण भारत मे आन्ध्र प्रान्त एक ऐसे स्थान पर स्थित है जहाँ आर्य-सस्कृति एव सस्कृत भाषा और उसके साहित्य का सीधा और सहज प्रभाव पड सकता है। आन्ध्र की भाषा और साहित्य को सस्कृत ने अत्यधिक प्रभावित किया है। सस्कृत से प्रभाव ग्रहण कर, आन्ध्रो ने सस्कृत शारदा की अर्चना मे कोई कसर नही रखी। 'ब्रह्मसूत्र भाष्य' से ले कर मुक्तक तक साहित्य की सभी विधाओ मे आन्ध्रो ने अपनी प्रतिभा के प्रमाण उपस्थित किये। साहित्य की कुछ शाखाओ मे तो उनकी रचनाएँ विशेष महत्त्व रखती हैं। वैदिक विज्ञान मे विद्यारण्य स्वामी, दार्शनिक वाङमय मे कुमारिलभट्ट, व्याख्यारचना मे मल्लिनाथ सूरि, काव्य शास्त्र प्रणेताओ मे पडितराज जगन्नाथ माँ-सरस्वती के ऐसे ही वरद पुत्र हैं, जिन पर आन्ध्र को समुचित गर्व है।

धर्मसूत्रकार आपस्तब ऋषि, 'प्रतापरुद्र यशोभूषण' के कर्ता विद्यानाथ, 'कुमारगिरिराजीय' के प्रणेता काटयवेम, सिंगभूपाल, पेदकोमटि वेमारेड्डी, भट्ट वामन, श्रीकृष्णदेवराय, नारायण तीर्थ, अन्नभट्ट के अतिरिक्त और भी अनेक

आन्ध्रो ने संस्कृत भाषा मे अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की और कर रहे हैं। स्थानाभाव के कारण उन सब कवियो की रचनाओ का परिचय देना सम्भव नही है।

संस्कृत के पश्चात् आन्ध्रो ने प्राकृत भाषाओ मे काव्य लिखे। इनमे हाल सातवाहन के द्वारा सकलित 'गाथा सप्तशती' का स्थान सर्वोपरि है। हिन्दी साहित्य की अत्यधिक लोकप्रिय मुक्तक काव्य सतसई की परम्परा हिन्दी के लिए आन्ध्र की सर्व प्रथम तथा सर्वप्रधान देन है।

जैन और बौद्ध धर्मों के प्रचार तथा प्रसार के साथ प्राकृत भाषाओ का प्रभाव भी बढ़ता गया। सम्राट् अशोक के शासनकाल से ले कर, ईसा की पाँचवी छठी शती तक दक्षिण के शासको ने अपने शिलालेखो मे प्राकृत भाषा का ही प्रयोग किया। ऐतिहासिक प्रमाणो से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ईसा की प्रारम्भिक शतियो से ले कर लगभग ७वीं शती तक आन्ध्र प्रान्त मे प्राकृत भाषा का व्यवहार था। इसका कारण यह है कि आन्ध्र प्रदेश मे बौद्ध और जैन धर्मों का अत्यधिक प्रचार तथा प्रभाव रहा।

यह बडे आश्चर्य की बात है कि इतने सर्वव्यापी रूप मे, राजाश्रय के अधिकारी बने रहने वाले धर्मों से सम्बद्ध एक भी रचना आज हमे दृष्टिगत नही होती। आन्ध्र मे जैन तथा बौद्ध धर्मावलबियो के लिए अनेक विहार बने थे, अनेक स्तूप बने थे, राजाओ की ओर से अनेक दान दिये गये, इस स्थिति मे इन धर्मों स सम्बद्ध ग्रन्थ अवश्य ही लिखे गये होगे, परन्तु आज इन धर्मों के चिह्न स्वरूप हमारे यहाँ केवल खँडहर बचे है।

सस्कृत और प्राकृत के बाद आन्ध्रो ने उन भाषाओ की उत्तराधिकारी हिन्दी भाषा तथा उसके साहित्य की अनुपम सेवा की है और वे इस दिशा मे सतत प्रयत्नशील है।

हिन्दी मे स्वय न लिख कर भी हिन्दी साहित्य को अत्यधिक प्रभावित करने वाले आचार्य श्री वल्लभ आन्ध्र थे। ये कभपाटि के त्रिलिंग ब्राह्मण थे। इनके पिता लक्ष्मण भट्ट गोदावरी तीरस्थ 'काकरपाडु' या 'काकरवाड' ग्राम के निवासी थे। वल्लभाचार्य के वशज आज भी मथुरा म रहते है, उन्होंने आज तक आन्ध्रप्रदेश से ही वैवाहिक सम्बन्ध बनाए रखा है। वल्लभ सम्प्रदाय ने हिन्दी-साहित्य के भण्डार को अक्षय निधियाँ प्रदान की।

मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य मे श्री वल्लभाचार्य के बाद पद्माकर भट्ट का नाम लिया जाना चाहिए। रीतिकालीन कवियो मे भाषा के विचार से

प्रौढ़, वाग्विदग्ध एवं कुशल कलाकार माने जानेवाले कविश्रेष्ठ पद्माकर भट्ट तैलग ब्राह्मण थे। उन्होंने स्वयं कहा है —

"भट्ट तैलंगाने को बुन्देलखण्डवासी"

अकबर के शासनकाल मे, गढ़पत्तन पर रानी दुर्गावती के शासन करते समय अर्थात् १६वी शती के उत्तरार्द्ध मे दक्षिण से लगभग साढे सात सौ तैलग ब्राह्मण वहाँ पहुँचे थे। उनमे एक मधुकर भट्ट भी थे। कालांतर मे तैलग ब्राह्मण आमेर, रतलाम, झालवाड, बूँदी, कानपुर, आगरा, प्रयाग, काशी आदि नगरो मे बस गये। मधुकरभट्ट की छठी पीढ़ी मे मोहनलाल भट्ट हुए जिनके पुत्र थे पद्माकर भट्ट।

पद्माकर भट्ट जी की परम्परा मे ही श्री बालकृष्णराव आते हैं जो आन्ध्र होते हुए भी हिन्दी की सेवा कर रहे हैं और हिन्दी प्रदेश को अपना बना चुके हैं। मेरा विश्वास है कि हिन्दी प्रांत मे उपलब्ध होने वाली पुरानी पोथियों का सम्यक् अध्ययन करने पर ऐसी बहुत-सी रचनाएँ मिल सकती हैं जो हिन्दी प्रान्त मे बसने वाले आन्ध्रों द्वारा लिखी गई।

यह बात हिन्दी प्रान्त मे रह कर, हिन्दी की सेवा करने वाले आन्ध्रो की है।

हाल ही मे १७वी शती मे तंजाऊर के 'सरस्वती महल' मे तेलुगु यक्षगानो के अनुकरण पर लिखे गये शाहजी महाराज के दो यक्षगान हिन्दी मे प्राप्त हुए हैं। इन नाटको को सर्वप्रथम प्रकाश मे लाने का श्रेय श्री वारणासि राममूर्ति जी 'रेणु' को है, जिन्होंने आकाशवाणी के हैदराबाद केन्द्र द्वारा 'राधा बनसीधर विलास नाटक' को सन् १९५९ मे प्रसारित करवाया था। तदुपरान्त ये दोनो नाटक सन १९६१ मे 'सरस्वती महल' के कार्यकर्ता श्री एस गणपतिराव "स्वानन्द" ने सम्पादित करके प्रकाशित कराये।

भोसला वंश के मालोजी के पौत्र एकोजी तंजाऊर के प्रथम महाराष्ट्र नायक नरेश थे। एकोजी और दीपाबा के सुपुत्र शाहजी महाराज ने सन् १६८४ से १७१२ तक शासन किया। शाहजी संगीत और साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान्, उत्कृष्ट कवि एवं आश्रयदाता के रूप म तेलुगु साहित्य के इतिहास मे चिरस्मरणीय रहेंगे। संगीत और साहित्य के सुन्दर सम्मिश्रण के रूप मे इन्होंने तेलुगु मे २१ यक्षगानो की रचना के अतिरिक्त अपनी मातृभाषा मराठी मे एक—लक्ष्मीनारायण कल्याण-तथा हिन्दी मे दो—'राधा बनसीधर विलास नाटक,' और 'विश्वातीत विलास नाटक'—यक्षगानो की रचना की है।

'विश्वातीत विलास नाटक' की कथावस्तु पुराणों से ली गयी है, जिसका लक्ष्य शिवजी की महिमा का वर्णन करना है। कथानक मे भक्ति के साथ-साथ विप्रलम्भ शृंगार को भी स्थान दिया गया है। 'राधा वनसीधर विलास नाटक' मे राधा और कृष्ण के संयोग और विप्रलम्भ शृंगार का सुन्दर चित्रण किया गया है।

इन नाटकों की महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इनमे भाषा तो हिन्दी प्रयुक्त हुई है किन्तु गीतों के राग-ताल कर्नाटक संगीत के सांचे मे हिन्दी भाषा को ढालने में शाह जी बहुत सफल सिद्ध हुए।

आन्ध्र प्रदेश के प्रायः सभी विद्वान् और ऐतिहासिक व्यक्ति एक मत से इस बात की घोषणा करते रहे हैं कि एक महाराष्ट्र नाटक मण्डली जिसे 'धारवाड नाटक कम्पनी' कहते हैं, आन्ध्र प्रदेश मे सन् १८८० के लगभग आयी थी और उसने आन्ध्र के बडे-बडे नगरो म अपने नाटक खेले थे। नाटक प्रायः संस्कृतनिष्ठ हिन्दी मे थे। ये नाटक 'तेलुगु कला-क्षेत्र' मे मुरझाए खेत के लिए वर्षा के समान सिद्ध हुए और इन्ही नाटकों के अनुकरण पर आन्ध्र के नगर-नगर, गाँव-गाँव मे नाटक खेले जाने लगे। नाटकों की बाढ-सी आ गई थी।

आन्ध्र प्रदेश की आधुनिक नाटक रचना और अभिनय कला, १९ वीं शती के उत्तरार्द्ध से ही विकसित होने लगी। इस विकास क्रम मे संस्कृत और अंग्रेजी नाटकों के साथ-साथ महाराष्ट्र नाटक मंडलियों का भी विशेष सहयोग रहा।

'धारवाड नाटक समाज' के प्रभाव से प्रेरित हो कर जिन-जिन नाटक-समाजों की स्थापना हुई, उनमे कुछ नाटक समाजों ने तेलुगु के अतिरिक्त हिन्दी मे भी नाटक लिखवा कर अभिनीत किये। परन्तु उन नाटककारों के यहाँ श्री मेधादक्षिणामूर्ति जैसा सुपुत्र नही था इसी लिए उनकी हिन्दी रचनाएँ काल के कराल गह्वर मे विलुप्त हो गईं। केवल श्री नादेल्ल पुरुषोत्तम कवि जी के ३२ नाटकों म से १४ नाटक सुरक्षित रह गये। इन नाटकों की सुरक्षा का श्रेय नाटककार के सुपुत्र को है।

श्री पसुमर्ति यज्ञनारायण शास्त्री जी ने *'आन्ध्र नट प्रकाशिका' नामक* तेलुगु ग्रंथ के पंचम अध्याय म इन नाटक-समाजों का विस्तार से वर्णन किया है और यह बतलाया है कि—

"विशाखपट्टनम के जगन्मित्र समाज ने (जिसका प्रारम्भ सन् १८८५ मे हुआ था) सन् १८८९–९० मे हिन्दी मे नाटक अभिनीत किये थे।"

"प्रियसल्लाप नाटक' कम्पनी ने हिन्दी मे कई नाटकों का प्रदर्शन किया था। इसके प्रमुख अभिनेताओ मे गोविन्दराव, शकरम् आदि थे। ये आस-पास के गाँवो मे भी नाटको का प्रदर्शन करते थे।"

"काकिनाडा के वेदुरुमूडि शेषगिरिराव ने 'शिवाजी चरित्र', 'पेशवा नारायण वध' आदि हिन्दी नाटको की रचना की थी।"

एलूरु मे "वामन भट्ट जोशी सन् १८८५ से लेकर १८९० ई तक हिन्दी नाटको का प्रदर्शन करते रहे।"

"सन् १९०२ मे नरसापुर मे बुद्धिराजु ब्रह्मानन्दम, वोम्मकटि कृष्ण-मूर्ति और मामिल्लपल्लि केशवाचार्य ने 'आर्यानन्द हिन्दू नाटक समाज' की स्थापना कर हिन्दी मे नाटको का अभिनय किया।"

"केवल हिन्दी नाटको के अभिनय करने के लिए ही भीमुनिपट्टणम्' म 'भक्ति विलासिनी समाज' की स्थापना हुई। इस सस्था के सस्थापक श्री मिदी रामचन्द्रराव अच्छे अभिनेता थे।"

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट है कि आन्ध्र नाटय साहित्य के प्रार भ काल मे हिन्दी के पर्याप्त नाटक लिखे गये और उनका अभिनय भी हुआ। इससे स्पष्ट है कि इस दिशा मे उस युग के आन्ध्र लेखको ने प्रयत्न किया था। काश, उनकी वे सभी हिन्दी रचनाएँ प्राप्त होती! हमारे लिए यही अहोभाग्य की बात है कि श्री नादेल्ल पुरुषोत्तम कवि कृत ३२ हिन्दी नाटको म से, कम से कम १४ नाटक तो उपलब्ध है जो हिन्दी नाटको के लिए आन्ध्र की बहुत बडी देन है।

श्री पुरुषोत्तम कवि का जन्म सन् १८६३ को कृष्णा जिले के सीतारामपुरी नामक ग्राम मे हुआ था। यह गाँव सन् १८६४ की बाढ मे बह गया था। प्रकृति के इस भीषण ताडव के कारण श्री पुरुषोत्तमजी को अपने माता पिता के साथ, हैदराबाद के महाराजगज मे १२ वर्ष अर्थात् सन् १८७६ तक रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस अवधि मे मेधावी बालक ने अरबी, फारसी, उर्दू, अच्छी तरह सीख ली। हैदराबाद से लौट कर वे पुन मछली-पट्टणम आ गये और मिडिल ट्रेनिंग पास करके रेपल्ले के 'लोअर सेकडरी स्कूल' मे अध्यापक रहे।

मछलीपट्टणम में सन् १८८१ के लगभग 'हिन्दू थियेटर' नामक एक संस्था स्थापित हुई। इसने पारसाड के नाटको के अनुकरण पर तेलुगु नाटक लिखवा कर अभिनीत करने का उपक्रम किया, किन्तु कुछ लोगों का सुझाव रहा कि हिन्दी भाषा मे भी नाटक लिखवा कर प्रदर्शित किए जाएँ। तब उस कम्पनी के मैनेजर दामानि वेंकटस्वामी नायुडू हिन्दी में नाटक लिख सकने वाले किसी आन्ध्र विद्वान् की खोज मे, रेपल्ले में स्थित पुरुषोत्तम के यहाँ पहुँचे। श्री वेंकटस्वामी के आग्रह को मान कर पुरुषोत्तमजी को हिन्दी नाटकों की रचना करनी पडी। यह हिन्दी साहित्य के लिए महत् सौभाग्य की बात सिद्ध हुई।

श्री पुरुषोत्तमजी के वचनानुसार उस सस्था का नाम बदल कर नेशनल थियेट्रिकल सोसायटी रखा गया। स्मरण रहे कि नेशनल-कांग्रेस की स्थापना से ठीक एक वर्ष पूर्व ही पुरुषोत्तमजी ने 'नेशनल' शब्द का प्रयोग किया और राष्ट्रभाषा मे नाटकों की रचना की।

सन् १८८४ ने आन्ध्र को एक ऐसा सौभाग्य प्रदान किया कि उसने हिन्दी नाटकों की श्रीवृद्धि मे अपूर्व योगदान दिया। ये नाटक अहिन्दी प्रान्त मे लिखे गये थे और इनकी लिपि तेलुगु थी, इसलिए इनका प्रचार हिन्दी-भाषी प्रदेशों मे नही हो सका। हिन्दी और केवल तेलुगु के विद्वान् पाठकों के लिए ये रचनाएँ बोधगम्य न रहीं।

१९वी शती मे हिन्दी मे रचना कर हिन्दी-साहित्य-भण्डार को भरने वाले आन्ध्रो मे केवल पुरुषोत्तमजी की रचनाएँ ही उपलब्ध होती हैं। उनका इतिवृत्त भी हमें ज्ञात है। आज से लगभग ८० वर्ष पहले ही हिन्दी भाषा व साहित्य का अपनी देन से कृतकृत्य बनाने वाले पुरुषोत्तमजी की असाधारण प्रतिभा पर आन्ध्र को समुचित गर्व करना चाहिए। आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी तथा आन्ध्र सरकार का कर्त्तव्य है कि इस अपूर्व निधि से हिन्दी विद्वानों को अवगत कराए।

श्री पुरुषोत्तमजी ने "पुरविरोधि कृपार्जना से, पुण्य चारित्रों, विरचन करके, दक्षिणामूर्ति देव कुसमर्पण मैं किया हूँ" कह कर ३२ नाटकों की रचना की, उन नाटको के नाम हैं —

रामायण सबंधी नाटक

१. पुत्रकामेष्टि
२ सीता कल्याण

३ दशरथ निर्माण
४ रामारण्यवास
५ सीता हरण
६ सुग्रीव पट्टाभिषेक
७ हनुमत्प्रताप
८ रावण सहार
९ शम्बूक वध
१०. लवणासुर सहार
११ इल महाराज चरित्र

महाभारत सबधी नाटक

१२. सुभद्रा परिणय
१३ मनोजवालक्ष्मी निवारण
१४ मित्र सहोपाख्यान
१५ सुकन्या परिणय

अन्य पुराण सबंधी नाटक

१६	कालासुर वध	(ब्रह्मवैवर्त पुराण)
१७	पचाक्षरी महिमा	(स्कन्द पुराण)
१८	भस्मासुर वध	(,, ,)
१९	कलावती परिणय	(, ,,)
२०	शारदोपाख्यान	(,, ,,)
२१	सीमन्तिनी चरित्र	(,, ,,)
२२	भद्रायुरभ्युदय	(,, ,,)
२३	कीर्तिमालिनी प्रदान	(,, ,,)
२४	अपूर्व दाम्पत्य	(,, ,,)
२५	गोकर्ण महात्म्य	(ब्रह्म पु ाण)
२६	अहल्यासक्रदनीय	(ब्रह्माण्ड पुराण)
२७	श्रीयाल चरित्र	(हर पुराण)
२८	सत्य हरिश्चन्द्र	(मार्कण्डेय पुराण)
२९	विल्हणीय	(?)
३०	शुकरम्भा सवाद	(?)

३१. पींदवा नारायणराव वध
३२. रामदास चरित्र

दुर्भाग्य से इन नाटकों में १ से ८ तक के नाटकों के गीत मात्र प्राप्त हैं और २१, २२, २३, २४, २६ तथा ३२ मख्या वाले नाटकों का गद्य-पद्य भाग प्राप्त है। अर्थात् कविवृत ३२ नाटकों में से १८ नाटक पूर्ण तरह नहीं मिल सके। प्राप्त नाटकों में 'रामदास चरित्र' स्वय कवि द्वारा तेलुगु भूमिका सहित, सन् १९१६ में प्रकाशित किया गया। इन पक्तियों के लेखक ने प्राप्त सामग्री को देवनागरी लिपि में टिप्पणियों के साथ लिप्यन्तर किया है। प्राप्त सामग्री लगभग ३५० पृष्ठों में है। श्री पुरुषोत्तमजी द्वारा रचित ३२ हिन्दी नाटकों की पृष्ठ सख्या लगभग एक हजार रही होगी। इस प्रकार निष्ठापूर्वक ३२ हिन्दी नाटकों की रचना कर पुरुषोत्तमजी ने हिन्दी के प्रति अपनी अनन्य श्रद्धा प्रकट की।

१९ वीं शती के उत्तरार्द्ध में भी आन्ध्र के कई लेखकों ने हिन्दी में रचनाएँ की थीं। इस प्रसग में एक विषय ध्यान देने योग्य है। वह यह कि ये सभी रचनाएँ उस समय की हैं, जबकि हिन्दी प्रचार के नारे का जन्म तक नहीं हुआ था। अत इन हिन्दी रचनाओं का अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व है।

२० वीं शती के प्रारम्भ में पूज्य बापूजी की सत्प्रेरणा से, दक्षिण भारत में नियमित रूप से हिन्दी का पठन पाठन होने लगा। महात्माजी का उद्देश्य था कि आदान प्रदान में भाषा की विभिन्नताओं तथा अंग्रेज़ी शासन की कूट-नीति के कारण खडित भारत की आत्मा के एकत्व का परिचय करा कर, समस्त राष्ट्र को 'भारतीयता' के एक सूत्र में निबद्ध किया जा सकेगा। आन्ध्रों ने हिन्दी के प्रचार एव प्रसार के कार्य को सफल बनाया। हिन्दी रचनाओं को पढने-समझने, तथा हिन्दी भाषा में बोलने के अतिरिक्त कई आन्ध्रों ने अपनी रचनाओं से हिन्दी साहित्य को सम्पन्न किया है। हिन्दी रचनाओं को तेलुगु में अनूदित करने तथा तेलुगु रचनाओं को हिन्दी में प्रस्तुत करने के अतिरिक्त अपनी मौलिक रचनाओं से हिन्दी साहित्य के भण्डार को भरने वाले आन्ध्रों की सख्या कम नहीं है।

तेलुगु की श्रेष्ठ रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद करने वाले बीसियों आन्ध्र हैं। अनुवाद का कार्य मौलिक प्रतिभा का परिचय नहीं देता, फिर भी

साहित्य के विकास में, नूतन मार्ग दर्शन मे, अनुवाद का विशेष महत्त्व है। किसी सम्पन्न भाषा की साहित्यिक उपलब्धियो का परिचय पा कर अन्य भाषा-भाषी उन-उन विधाओ से अपने साहित्य को सुशोभित कर लेते है। प्रस्तुत लेख मे तेलुगु से हिन्दी मे और हिन्दी से तेलुगु मे अनुवाद करने वाले लेखको का परिचय न दे कर हिन्दी में मौलिक रचनाएँ करने वाले लेखको का ही थोडा परिचय देने का प्रयत्न किया जाएगा।

हिन्दी मे मौलिक रचनाएँ करने वाले आन्ध्रो की संख्या भी कम नहीं है। इन में श्री मोटूरि सत्यनारायणजी का नाम सर्व प्रथम लिया जा सकता है। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा आपकी लगन से ही आज दक्षिण का हिन्दी विश्वविद्यालय बन सकी है। भाषा प्रचार के लिए पाठ्य पुस्तको की रचना के अतिरिक्त आपने दक्षिण के साहित्य, संस्कृति, भाषा आदि से हिन्दी-पाठकों को परिचित कराने के लिए अनेक लेख लिखे। आपका कार्य दक्षिण और उत्तर को मिलाने वाले सेतु के समान है। सत्यनारायणजी के समान हिन्दी भाषा पर अधिकार बहुत कम लोगो को प्राप्त है। प्रारम्भिक युग के लेखको मे स्व जवाल शिवय्या शास्त्री, पिसपाटि वेंकट सुब्बाराव आदि हैं।

हिन्दी म मौलिक उपन्यास, कहानियाँ और एकाकी लिख कर प्रसिद्धि प्राप्त करने वालो मे श्री आरिगिपूडि रमेश चौधरी प्रसिद्ध हैं। 'दूर के ढोल,' 'पतित पावनी,' 'अपनी करनी' आदि उपन्यास, भगवान भला करे नामक कहानी सग्रह तथा 'नेपथ्य नामक एकाकी सग्रहों के प्रकाशन से आपने आधुनिक हिन्दी साहित्य मे स्थान प्राप्त कर लिया है। आप की सशक्त लेखनी से हिन्दी को बहुत आशाएँ है।

तेलुगु साहित्य की उत्कृष्टता का परिचय कराते हुए तथा रचनाओ के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा भावनात्मक एकता के लिए आदान प्रदान को सफल साधन सिद्ध करने वाले श्री वारणासि राममूर्ति रेणु कई वर्षों से सराहनीय प्रयत्न कर रहे है। हिन्दी और तेलुगु के साहित्यकारो के तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित आपके लेखो का एक सग्रह आदान प्रदान' के नाम से प्रकाशित हुआ है। 'आन्ध्र के कबीर वेमना' नामक पुस्तक हिन्दी क्षेत्र मे पर्याप्त प्रसिद्ध हुई है। आप हिन्दी के सफल कवि भी हैं।

तेलुगु साहित्य का समग्र एव सम्यक् परिचय देते हुए हिन्दी मे पुस्तकें लिखने वाला म श्री बालशौरिरेड्डी जी का नाम लिया जाना चाहिए। तेलुगु के पाँच प्रसिद्ध काव्यो का परिचय देते हुए लिखा गया 'पंचामृत तेलुगु की

विविध साहित्य विधाओं तथा श्रेष्ठ लेखकों का परिचय देते हुई लिखी गयी। 'आन्ध्र भारती,' 'तेलुगु साहित्य का इतिहास' आदि पुस्तकें उत्तर-प्रदेश की सरकार से पुरस्कृत हुईं। इनके अतिरिक्त रेड्डीजी ने 'शबरी,' 'जिन्दगी की राह', 'यह बस्ती-ये लोग' आदि मौलिक उपन्यास, 'सत्य की खोज' नामक एकांकी-संग्रह भी लिखा। आशा है, रेड्डीजी अपनी रचनाओं से हिन्दी साहित्य को अधिकाधिक सम्पन्न बनाएँगे।

आन्ध्र विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष श्री जी सुन्दर रेड्डी के विचारात्मक लेखों के दो संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, 'साहित्य और समाज' तथा 'मेरे विचार'। अभी हाल में आपका, 'हिन्दी और तेलुगु-एक तुलनात्मक अध्ययन' नाम से एक आलोचनात्मक ग्रन्थ भी प्रकाशित हुआ है।

श्री वी वी सुब्बारावजी ने 'हरिकिशोर' के उपनाम से हिन्दी में कई कविताएँ तथा कहानियाँ लिखी हैं। 'तूफान' उनका प्रसिद्ध उपन्यास है।

श्री चोडवरपु राम शेषय्याजी ने 'बोब्बिलि', 'गृहिणी', 'मन्त्री रामय्या' 'रानी मल्लम्मा', 'सती वण्णकी' नाम से दक्षिण के, विशेष कर आन्ध्र के ऐतिहासिक इतिवृत्तों को ले कर सफल नाटक लिखे।

श्री चावलि सूर्यनारायण मूर्तिजी ने 'समझौता', तथा 'महानाश की ओर' 'सत्यमेव जयते' नामक मौलिक नाटक तथा 'सती ऊर्मिला' तथा 'मानस-लहरी' नामक खंड काव्य की रचना की। मूर्तिजी के कई आलोचनात्मक लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। 'मध्य कालीन राम कथा का तुलनात्मक अनुशीलन' शीर्षक शोध प्रबन्ध सागर विश्वविद्यालय में स्वीकृत हो चुका है।

श्री अयाचितुल हनुमत् शास्त्री ने 'तेलुगु साहित्य का इतिहास' नामक पुस्तक के अतिरिक्त तेलुगु साहित्य सम्बन्धी कई लेख लिखे।

श्री कर्णराज शेषगिरिराव ने आन्ध्र की लोककथाएँ नामक पुस्तक लिखी है, जिस पर केन्द्रीय सरकार का पुरस्कार प्राप्त हुआ।

श्री वेमूरि राधाकृष्ण मूर्तिजी ने 'नागार्जुन सागर' नामक एक गेय काव्य—तेलुगु की बुरकथा की गायन शैली पर लिखा। तेलुगु के आधुनिक साहित्य के १६ प्रसिद्ध कवियों का परिचय देते हुए आपने एक पुस्तक लिखी है।

श्री आलूरि बैरागी चौधरीजी हिन्दी में अच्छी कविताएँ लिखते हैं। 'पलायन' तथा 'बदली की रात' के नाम से आप की कविताओं के दो संग्रह प्रकाशित हुए हैं। बैरागीजी की कविताओं का हिन्दी काव्य संसार में विशेष सम्मान हुआ है।

श्री मुट्नूरि संगमेशमजी ने 'विश्वामित्र' नामक एक पुस्तक प्रकाशित की है। आपके आलोचनात्मक लेख समय-समय पर प्रकाशित होते रहते हैं।

श्री ए सी कामाक्षिराव ने पाठ्य पुस्तकों तथा आलोचनात्मक लेखों के अलावा शब्द कोशों की रचना भी की है। हिन्दी-तेलुगु व्याकरणों की तुलना करते हुए आपने विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ भी लिखा है।

हिन्दी में शोध प्रबन्ध लिख कर डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त करने वालों में श्री इलपावुलूरि पाण्डुरंगाराव जी सर्वप्रथम आन्ध्र है। 'आन्ध्र हिन्दी रूपक' नामक आपके शोध ग्रन्थ पर नागपुर विश्वविद्यालय ने आपको डाक्टरेट की उपाधि प्रदान की है।

श्री एम टी नरसिंहाचार्यजी के 'साहित्य दर्शन' नामक शोधप्रबन्ध पर हिन्दू विश्वविद्यालय ने डाक्टरेट की उपाधि प्रदान की है।

इन पंक्तियों के लेखक को 'आन्ध्र के हिन्दी नाटककार श्री पुरुषोत्तम कवि के हिन्दुस्थानी नाटक' शीर्षक शोध प्रबन्ध पर उस्मानिया विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की डिग्री मिली है। श्री वेंकटरमण और श्री वसन्त चक्रवर्ती को पी एच डी, की उपाधियाँ मिल चुकी है।

इन दोनों महानुभावों को क्रमश 'हिन्दी के कविगय और उनका सामाजिक पक्ष' तथा 'जयशंकर प्रसाद का दार्शनिक पक्ष' नामक प्रबन्ध पर डाक्टर की उपाधि दी गयी।

उपरोक्त लेखकों के अलावा, समय-समय पर विभिन्न विषयों पर हिन्दी म लेख लिखने वालों में श्री उन्नव राजगोपालकृष्णय्या, वेमूरि आजनेय शर्मा, चिट्टूरि लक्ष्मीनारायण शर्मा, बोयपाटि नागेश्वर राव, कोट सुन्दर राम शर्मा, दशिक सूर्यप्रकाशराव, दण्डमूडि महीधर, दुर्गानन्द, चलसानि सुब्बाराव, यलमंचिलि वेंकटेश्वरराव, श्रीमती बी दयावन्ती आदि के नाम उल्लेख्य है। वैसे इस छोटे-से लेख में हिन्दी में लिखने वाले सभी आन्ध्रों का समग्र परिचय तो नहीं दिया जा सकता, केवल नामोल्लेख

मान्य हो चुका है। यदि किन्हीं लेखकों के नाम छूट गये हों तो यह इन पंक्तियों के लेखक का अल्प ज्ञान ही समझा जाए।

इस प्रकार हिन्दी में मौलिक रूप से लिखने वाले आन्ध्रों की संख्या पर्याप्त है, और मुझे विश्वास है कि इस प्रान्त के लोग निकट भविष्य में हिन्दी साहित्य को अपनी अनेक बहुमूल्य रचनाएँ प्रदान करेंगे।

भारतीय साहित्य और हिन्दी : अनुवाद-माध्यम के रूप में

श्रीमती हेमलता लाजनेयुलु

सबसे पहले तो मैं आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी की अत्यन्त आभारी हूँ कि इस सस्था के आयोजको ने मुझे इस गोष्ठी मे सम्मिलित होने तथा अपने विचार प्रकट करने का मौका दिया है। अकादमी ने हिन्दी लेखको के इस सम्मेलन का आयोजन कर आन्ध्र प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रो मे फैले हुए तथा स्वतत्र रूप से हिन्दी मे लेखन कार्य करने वाले सरस्वती के उपासको को एक मच पर एकत्रित किया है जिससे वे आपस मे अपनी समस्याओ, अपनी कठिनाइयो और अपनी आवश्यकताओं के बारे मे चर्चा करें। मिलजुल कर अनेक बातो पर विचार करें। भविष्य मे निर्गित होने वाली अखिल भारतीय भावना और भाषा, तथा साहित्य के लिए सक्रिय योगदान की रूपरेखा निश्चित कर सकें।

कल की गोष्ठी मे (६ फरवरी) तथा शाम का उद्घाटन समारोह के बाद खुले अधिवेशन मे अनेक विद्वानो ने तेलुगु व हिन्दी भाषा के पारस्परिक सम्बन्ध, सहयोग और उसकी आवश्यकताओं, अनुवाद, प्रकाशन और प्रसार आदि के बारे मे, अनेक पहलुओ पर अपने विचार प्रकट किये। और आज इक बैठक मे भी, हम हिन्दी से सम्बन्धित सवालो पर सोच-विचार कर रहे है।

मैंने इस समय की अपनी बातचीत की सीमा रखी है "भारतीय साहित्य और हिन्दी अनुवाद माध्यम के रूप मे।" इसके अग है—(१) भारतीय साहित्य, (२) हिन्दी, (३) अनुवाद, (४) अनुवाद-माध्यम और (५) हिन्दी-अनुवाद माध्यम के रूप मे। इन विषयो पर थोडे बहुत रूप मे काफी चर्चा हो चुकी है पर इस समय मैं इन सबको सगठित रूप मे—सबद्ध रूप मे करके अपने कुछ विचार और अनुभव आपके सामने रखने का प्रयत्न करूँगी।

सबसे पहले हम सोचें कि भारतीय साहित्य क्या है? प्रकाशन का माध्यम—जरिया क्या है? क्या भारत की भौगोलिक सीमा के अतर्गत

लिखी हर चीज, हर भारतीय भाषा मे लिखी हर चीज भारतीय साहित्य है ? और क्या भारत के बारे मे लिखी हर चीज भारतीय साहित्य है ? तब तुरन्त हमें जवाब मिलता है—नही। तो फिर किसे हम भारतीय साहित्य कहेंगे ? हमारे राष्ट्रपति डा राधाकृष्णन ने एक स्थान पर कहा है —

"भारतीय साहित्य एक है, मात्र वह अनेक भाषाओ मे लिखा गया है।" कल के खुले अधिवेशन मे प्रो विनायक कृष्ण गोकाक ने बताया कि किस प्रकार हमारी सभी भारतीय भाषाओ मे एक-सी प्रवृत्तियाँ आरम्भ मे अब तक चली आ रही हैं। ऐसे अनेक मतो को देखने, समझने और तोलने पर यही लगता है कि भारतीय साहित्य वही है जो भारतीय जन मन की आशा-आकाक्षा, राग-विराग, आनन्द द्वेष, हर्षोल्लास, कुठाओ आदि को लेता हुआ रजक शैली मे, सुन्दर आकर्षक परिधान मे प्रस्तुत करे। जो जीवन को सही मानो मे चित्रित करे। तो ऐसा करने पर क्या वह भारतीय जीवन का फोटोग्राफिक चित्र है, अलवम है ? नही। वह विविध सजीव पात्रो के माध्यम से जीवत समाज की हलचलो, कुठाओ, उत्थान-पतन, सघर्ष, प्रगति आदि का रोचक चित्रण कर न केवल जीवन को गति प्रदान करता है, वल्कि जन मन को साथ लिए चलता है—वह न उसे ठेलता है और न दौडाता है। जीवन साहित्य की पृष्ठभूमि है और साहित्य के अतिरजित रूप से जीवन उत्साह, सतोष और सहारा पाता है। ये सब बातें जिन भारतीय रचनाओ मे होगी उन्हे ही हम भारतीय साहित्य की परिधि मे रख सकेंगे। इस पैमाने का ध्यान मे रख कर यदि हम विभिन्न रचनाओ की ओर ध्यान दें तो हमे मिलता है—रामायण, महाभारत और भागवत तथा अन्य इस प्रकार का साहित्य जो विभिन्न समयो पर विभिन्न साहित्य रूपो मे प्रकाशित होता रहा, लिखा गया। उस समय धर्म ने सम्पूर्ण भारतीय जीवन को एक सूत्र मे बाँध रखा था, परन्तु *अब जमाना बदल गया है। जीवनक्रम और जीवन के दायरे बदल गये है।* छोटे-छोटे सामाजिक घेरो से उठ कर हम बाहर निकल आये है। आज के भारतीय साहित्य में धार्मिक सूत्र नही मिलता। मिलता है सामाजिक जीवन का अश्रु हास पूर्ण भीना आँचल। आज जिन्हे हम भारतीय साहित्य के नाम से जिन पुस्तको को अतर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे रख सकेंगे, वे हैं—प्रेमचन्द का "गोदान", तकाजी शिवशकर पिल्लई का 'चम्मीन", फणीश्वरनाथ 'रेणु' का "मैला आँचल" और 'परती परिकथा विश्वनाथ सत्यनारायणजी का "वेई पडगलु" तथा इसी कोटि की लिखी अन्य भाषाओ की रचनाएँ। इन

कृतियों में लेखकों ने जीवन की दुखती रगों को व्यक्त किया है, उनका गुन-दुःख प्रदर्शित किया है। पाठक का हृदय डोल उठता है और पाठक के मन में प्रतिक्रिया होती है कि जो भी हो आने वाली पीढ़ियों का जीवन इतना संघर्षपूर्ण नहीं होना चाहिए। उनके जीवन-आँगन में आनन्द की मूर्तियाँ छूम छनन छन नाचेंगी, गाएँगी।

अब हमारे सामने दूसरा सवाल आता है कि यह जो भारतीय साहित्य के नमूने हैं, जो अलग-अलग भाषाओं में सिद्धहस्त लेखकों के सृजनात्मक कौशल के प्रतीक है, वैसे अन्य भाषियों तक पहुँच सकते है? जवाब मिलता है कि सीधे मूल से नहीं तो उसके अनुवाद से। पर क्या सभी का एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद हो पाना सभव है?

यहाँ एक बात की ओर ध्यान दिलाना चाहती हूँ। कल अपने भाषणों के अनेक अवसरों पर श्री गोपाल रेड्डीजी ने इस बात पर जोर दिया कि या तो मूल पढ़ा जाए या फिर उसके सीधे अनुवाद को पढ़ा जाए।—बात बड़ी अच्छी है, पते की है, पर सम्भव नहीं लगती—इस अवसर पर, इस सधिकाल में। शायद ४०–५० वर्षों के बाद जब भारत का प्रत्येक या अधिकांश साहित्य-प्रेमी भारत की सभी भाषाओं को जानेगा या समझ सकेगा, तो वह मूल ग्रंथों को अवश्य पढ़ेगा और उसके मौलिक आनन्द का लाभ उठाएगा। परन्तु आज के युग में यह सभव नहीं लगता—न केवल भारत में बल्कि दूसरे देशों में भी। मूल पाठ का आनन्द दिलाना वैसे ही है जैसे भूखे के लिए मिष्टान्न या षड्रस भोजन की व्यवस्था करना, जो अधिकांश अवसरों पर अप्राप्य होता है। भूख को तो जो भी प्राप्य हो रूखा-सूखा—वही पहले देना होगा। फिर भूख शान्त होने पर और मिष्टान्न प्राप्त होने पर उसे अवश्य मिष्टान्न देना चाहिए। इसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में आज अनुवादों की और अनुवाद माध्यमों की अत्यंत आवश्यकता है। यह स्थिति केवल हमारे ही देश की नहीं बल्कि विश्व के प्रत्येक बहुभाषी देश की है।

पहले विदेशों की भाषा स्थिति की ओर ध्यान दें और देखें कि उन्होंने अपनी समस्याओं का कैसे हल किया है।

अनुवाद की समस्या इंग्लैण्ड, अमरीका, आस्ट्रेलिया में उतनी नहीं है जितनी यूरोप, रूस, चीन आदि देशों में है। यूरोप का हर देश इतना छोटा है कि आम तौर पर एक भाषा से या एक मुख्य राजभाषा से काम नहीं चल पाता है। स्विट्ज़रलैण्ड में चार भाषाएँ समान रूप से और बेल्जियम

मे दो भाषाएँ—फ्लेमिश और फ्रांसीसी—समान रूप से प्रयोग मे आती हैं। पश्चिमी जर्मनी मे प्रादेशिक भाषाओ के द्वारा प्रांतीय कार्य चलते हैं फिर भी पूरे देश की भाषा जर्मन ही है। यूगोस्लाविया मे सर्बियन या सर्बोक्रोएटिश मुख्य भाषा है जबकि क्रोएशियन, दल्मातियन आदि अन्य प्रादेशिक भाषाओ मे प्रदेश-विशेष का काम होता है। सोवियत सघ मे रूसी भाषा मे सारे देश का कार्य होता है पर प्रांतो का सारा कार्य प्रांतीय भाषाओ मे होता है। केन्द्र के साथ रूसी अनुवाद के सहारे काम चलता है।

यह तो हुई एक भाषा से दूसरे मे सीधे अनुवाद करने की मिसाल। पर समस्या तब और उलझ जाती है जब दो असमान वर्गों की भाषाओ के बीच अनुवाद करने का मौका आता है। उदाहरण के लिए पिछले कुछ वर्षों मे नोबल पुरस्कार आइसलैंड, युगोस्लावाकिया, ग्रीस, रूस और फ्रांस के लेखको की रचनाओ को मिले हैं। अब इन महान लेखको की रचनाओ को दुनिया का हर साहित्य-प्रेमी पढना चाहता है—तो कैसे पढे ? भले अधिक शिक्षित और पूर्ण साक्षरता वाले यूरोपीय देशो का नागरिक अपनी मातृभाषा और राष्ट्र भाषा के अलावा एक या दो, या अधिक भाषाएँ जानता हो पर कोई यूरोप के हर कोने की भाषा जाने यह कैसे हो सकता है। इन महान रचनाओ को योरोपीय देशो के लोग फ्रांसीसी, जर्मन और अंग्रेजी के माध्यम से अनुवाद करके पढ सकते हैं, क्योकि किसी भी देश मे ऐसे कितने लोग होगे जो उस देश की भाषा के साथ ही साथ आइसलैंड, युगोस्लाविया या ग्रीस के लेखक की भाषा को जानते हैं। यह समस्या अनुवाद माध्यम के द्वारा आसानी से हल की जा सकती है।

सोवियत रूस के अपने अनुभवो से मैंने यही पाया कि वहाँ संसार की प्राय: हर मुख्य भाषा के लिए कम से कम एक न एक दुभाषिया या अनुवादक आसानी से और अवश्य मिल जाता है। इसका फायदा उठा कर वे हर भाषा की रचना का मूल से रूसी मे या किसी अन्य माध्यम के द्वारा रूसी मे अनुवाद कर लेते हैं। और फिर दूसरी प्रजातंत्रीय भाषाओं मे उस अनुवाद का अनुवाद होता है। रेडियो किमिटि (रेडियो मास्को) मे काम करते समय, रूसी भाषा बोलना सीख लेने पर दूसरे देशो के सहयोगियो के साथ काम करने मे किसी भी प्रकार की कठिनाई नही पडती थी, क्योकि हम लोगों के बीच रूसी भाषा का माध्यम था।

इसी के अनुसार हम भारतीय भाषाओ की स्थिति की ओर देखें तो समस्या यूरोप या रूस से कुछ सरल नही जान पडती। रूस और यूरोप मे

यदि पूरी नई पीढी साक्षर है तो भारत मे अभी साक्षरता का आँकडा ५० प्रतिशत तक भी नही पहुँचा है। और इस सख्या मे भी केवल मातृभाषा जानने वाले अधिक है। देश के एक छोर की भाषा को दूसरे छोर का व्यक्ति नही जानता। पढे-लिखे लोग अग्रेजी के माध्यम से काम चला लेते हैं, पर आम जनता ऐसा नही कर पाती। ऐसे अवसरो पर एक 'जोड भाषा' की अत्यन्त आवश्यकता है जो भारतीय जीवन, भारतीय सस्कृति के अत्यधिक समीप हो और अधिकाश लोग जिसका प्रयोग करते हो। आज से १५ वर्ष पूर्व सविधान बनाते समय देश के बहुमत ने हिन्दी का ऐसा माध्यम पाया था।

आज परिवर्तन का सधिकाल है। हिन्दी को ले कर देश के विभिन्न भागो मे काफी तनावपूर्ण स्थिति कायम हो गयी, उसे हमारे नेताओ ने सभालने की कोशिश की। यहाँ हिन्दी भाषा के बजाय हिन्दी को अनुवाद-माध्यम के रूप में रख कर हम विचार करेंगे।

जैसे-जैसे आज हमारे जीवन की परिधि व्यापक होती जा रही है और हमारा जीवन अतर्राष्ट्रीय होता जा रहा है, वैसे-वैसे आदान प्रदान व समझने-जानने की ज़रूरत बढती जा रही है। और इसके लिए अनुवाद ही (लिखित या मौखिक रूप मे) एकमात्र सहायक बन सकता है। इसे ज़रा और गहराई से सोचें तो मूल भाषा मे लिखी वस्तु भी अनुवाद है—अनुभूति और कल्पना को शब्दो के माध्यम मे परिवर्तित करने के लिए उसे भाषा के माध्यम मे अनूदित किया जाता है। "नये पुराने झरोखे" पुस्तक मे अनुवाद की समस्या पर विचार करते हुए डा हरिवशराय 'बच्चन' ने लिखा है

"इसको मैं एक तरह की उलटबासी मे रखना चाहता हूँ कि प्रत्येक मौलिक रचना अनुवाद होती है। अनुभूतियो, भावो विचारो का अनुवाद शब्दो मे, जबकि अनुवादक शब्दो के आवरण को भेद कर सूक्ष्म भावनाओ के स्तर पर पहुँचता है और वहाँ से अपनी भाषा मे अभिव्यक्त होने का प्रयत्न करता है तब अनुवाद मौलिक लगता है। यह गिरा-अर्थ, जल-वीचि को अलग करना है, पर अनुवाद को सरल काम किसने समझ रखा है ?"

सफल अनुवाद करने का विवेचन करते हुए डा 'बच्चन' आगे लिखते हैं, "सफल अनुवादक के लिए यह आवश्यक है कि वह जिस भाषा से अनुवाद करे और जिस भाषा मे करे, दोनो पर उसका समान अधिकार हो। साहित्यिक कृति के ग्रथो के लिए यह और भी आवश्यक है कि उसके साथ अनुवादक का रागात्मक सबध हो।"

डा. बच्चन के ये विचार केवल विचार ही नहीं, उन्होंने इन विचारों को कार्य रूप मे भी परिणत किया है। और इसकी सफलता का प्रमाण शेक्सपियर के नाटको—"मैकबेथ" और "ऑथेलो" के उनके अनुवाद है। पढने पर लगता है कि यह अनुवाद नहीं मूल है। फिट्ज़ेराल्ड द्वारा उमर खैयाम की रुबाइयो का अनुवाद मूल से कही अधिक सुन्दर बन पड़ा है। टैगोर की रचना 'चोखेर बाली' का श्री कृष्ण कृपलानी द्वारा किया गया अंग्रेज़ी अनुवाद "बिनोदिनी", सफलतम अनुवादो मे से एक है। इसका कारण क्या है ? कारण यह है कि अनुवादक ने मूल लेखक की बात को समझने के लिए उसके संवेदनात्मक स्तर के साथ-साथ अपने को उठाया है, तादात्म्य स्थापित किया है और तब उसे दूसरी भाषा के परिधान से सवारा है।

यह सारे उदाहरण अंग्रेज़ी में किए गए अनुवादो के हैं।—यहाँ अब सवाल किया जा सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र के प्रमुख अनुवाद-माध्यमों में जब अंग्रेज़ी भाषा का अपना प्रमुख स्थान है तो उसे ही हम क्यों न अपनायें —हिन्दी को अपनाने की क्या आवश्यकता है ? क्या हिन्दी इस योग्य है ? या योग्यता प्राप्त कर सकने की उसमे संभावना है ?

इसे तो हमे मानना ही होगा कि पिछले डेढ सौ सालों से अंग्रेज़ी भाषा का हमारे देश के जीवन के साथ घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। हमने केवल यह भाषा ही नहीं सीखी हमारे बीच कुछ ऐसे मुविज्ञ विद्वान भी हुए है जिन्हें पूरे ब्रिटिश साम्राज मे अंग्रेज़ी का सबसे अच्छा वक्ता और लेखक माना गया—वे थे स्वर्गीय श्रीनिवास शास्त्री। परन्तु पूरे भारत की वर्तमान पीढी की ओर अगर हम दृष्टिपात करते हैं, विशेष कर स्वाधीनता प्राप्ति के बाद की पीढी की ओर, तो हमे ऐसे लोग उँगलियों पर गिनने को मिलेंगे जो शुद्ध और परिष्कृत अंग्रेज़ी बोलते या लिखते हो।

दूसरे अंग्रेज़ी भाषा हमारे देश मे एक ऐतिहासिक घटनाचक्र के परिणामस्वरूप आई है। उसका हमारे जीवन, संस्कृति और हमारी माटी के साथ सीधा सम्बन्ध नहीं है। अंग्रेज़ी व्यावहारिक भाषा है और उसके द्वारा दुनिया के क़रीब आधे से अधिक भाग मे व्यक्ति अपना काम बडी आसानी से कर सकता है। परन्तु जहाँ एक भारतीय कृति का भारत की दूसरी भाषा मे अनुवाद करने का प्रश्न उपस्थित होता है, वहाँ अंग्रेज़ी के माध्यम से अनुवाद करना हास्यास्पद लगता है। क्योंकि जन-जीवन को दर्शानेवाले हमारे संस्कारो का वर्णन उनसे सम्बन्धित वाक्याशो और अध्यायो को अंग्रेज़ी मे

प्रस्तुत करना कठिन है और फिर उस अंग्रेजी अनुवाद से दूसरी भारतीय भाषा मे अनुवाद करना दूसरी बात है। ऐसे अनुवादो मे मूल पाठ और अनुवाद मे बहुत अंतर हो जाता है। उदाहरण के लिये एक ही अर्थ को दर्शाने वाले तीन भाषाओ के वाक्य हैं :—

"ఆ మాట విని వాని గుండె జల్లు మన్నది."

"The news came as a bolt from the blue to him"

"यह समाचार सुन कर तो जैसे उस पर गाज गिर पडी।"

अब इन्ही तीनो वाक्यो को देखिये—यह मुहावरेदार मुक्त—अनुवाद के उदाहरण हैं। पर इनका ही यदि शाब्दिक अनुवाद किया जाये तो वैसे ही होगा जैसा स्कूल मे पढते समय एक सहपाठी ने दूसरे से कहा था—

"My heart became garden garden on seeing you (तुम्हें देख कर मेरा दिल बाग-बाग हो गया) या,

"What goes of his father if I go across the play ground"

(अगर मैं खेल के मैदान से जाता हूँ तो उसके बाप का क्या जाता है ?)

अब रूसी से अनूदित अंग्रेजी वाक्यो और उससे किये हिन्दी अनुवाद का नमूना प्रस्तुत करती हूँ —

रूसी से अनूदित —"War clouds are hanging in the sky"

हिन्दी अनुवाद —"युद्ध के बादल आसमान मे लटक रहे हैं।"

रूसी से अनूदित —"Hundreds of steel plants have grown after the revolution"

हिन्दी अनुवाद —"क्रांति के बाद सैकडो इस्पाती पेड उग आये हैं।"

इसी प्रकार अंग्रेजी मुहावरे "Out of sight Out of mind" का एक ने चीनी भाषा मे अनुवाद किया। अंग्रेजी जानने वाले साथी ने उस चीनी अनुवाद को अंग्रेजी मे समझने की कोशिश की तो उसका रूप इस प्रकार था :—

मूल अंग्रेजी—1. Out of sight, 2. Out of mind

चीनी मे अनूदित रूप का अंग्रेजी मे अर्थ :—1. Invisible, 2. Idiot

ये हैं भौंडे व बेतुके अनुवादो के नमूने। उदाहरण देने बैठूं तो अच्छी खासी लिस्ट तैयार हो जायेगी। लेकिन असली बात जो कहने की है वह यह कि अनुवाद-माध्यम यदि दो भाषाओ की सांस्कृतिक और रागात्मक बातो, विशेषताओ के निकटतम हो तो अधिक अच्छा रहता है। अन्यथा सीधी मूल भाषा से ही अनुवाद करना सर्वोत्तम है। (वर्ना चीनी-अंग्रेजी अनुवाद का मजा आता है) परन्तु यह हमेशा सभव नही होता। उदाहरण के लिए मलयालम से आसामी भाषा मे या कन्नड से काश्मीरी मे अनुवाद हो तो हमे अनुवाद-माध्यम की आवश्यकता अवश्य पडती है। तब हमे ऐसे कई अनुवादक मिल जायेंगे जो कन्नड या मलयालम मे हिन्दी और हिन्दी से काश्मीरी या आसामी मे अनुवाद कर सकेंगे। ऐसी समस्या पिछले दस वर्षों मे साहित्य अकादमी, सदर्न लेंग्वेजेज बुक ट्रस्ट और नेशनल बुक ट्रस्ट के सामने आती रही हैं। अधिकाश अवसरो पर अंग्रेजी के माध्यम से अनुवाद किया गया और फिर बाद मे टीकाएँ हुई कि "मूल और अनुवाद मे बहुत अन्तर है, बात कुछ बनी नही।"

सोवियत सघ मे अंग्रेजी के माध्यम से और दूसरे माध्यमो मे भी अनुवाद कार्य फैक्टरी के काम की तरह बडे भारी पैमाने पर होता है। उसके कई लाभ भी हैं—अनेक अनुवादको को नौकरी मिलती है, दूसरे जल्दी से जल्दी, अधिक से अधिक लोगो मे बात, सिद्धान्त या पुस्तको के सदेशो का प्रसार होता है। परन्तु इसके दोष भी है। सख्या मे भले ही अधिक अनुवाद होते हैं, परन्तु स्तर काफी नीचा रहता है। दूसरे जब अनुवाद अंग्रेजी या अन्य किसी माध्यम मे होता है और "मक्खिका के स्थान पर मक्षिका" वाली नीति, और (रूस मे रूसियो द्वारा तैयार किए गये) शब्द कोषो के आधार पर जब मूल रूसी पाठ और नये अनुवाद को मिलाया जाता है तो कई बार बहुत अन्तर मिलता है। इसका परिणाम यह होता है कि पश्चिमी देशो के अनुवादो मे जहाँ जीवन्त भाषा मिलती है, वहाँ सोवियत सघीय अनुवादो मे साधारणतया "जीवित भाषा" का सवाल ही नही उठता। हमारे साथ काम करने वाले २०–२५ अनुवादको मे केवल एक अनुवादिका ऐसी थी कि जिसका उर्दू अनुवाद पढने पर लगता था कि किसी उर्दू भाषी की मौलिक रचना हो।—इसे नियम के रूप मे नही बल्कि

अपवाद के रूप मे हम ग्रहण कर सकते हैं। यहाँ एक बात और कह दूँ कि जितने स्वतत्र रूप से किये गये अनुवाद अच्छे स्तर के होते है, उतने सामूहिक या सरकारी तौर पर कराये गये अनुवाद नही होते।

अब यदि हम अपने देश की ओर दृष्टिपात करें तो हम पाते है कि आजका हमारा जीवन इतना व्यापक और अन्तर्राष्ट्रीय होता जा रहा है कि बिना अनुवाद और अनुवादको के एक पल को भी हमारा काम नहीं चल सकता। आज हमे न केवल साहित्य के क्षेत्र मे बल्कि विज्ञान, चिकित्सा, तकनीक आदि अनेक क्षेत्रो मे अनुवादो की आवश्यकता है। आज हमे चाहिए—

(१) साहित्यिक अनुवाद—(क) गद्य (ख) पद्य
(२) तकनीकी अनुवाद
(३) प्रसार साहित्य का अनुवाद

इसके लिए, भाषा को तीन स्तरीय अनुवादो के योग्य बनाना होगा। इसके लिए आवश्यकता है—शब्दकोशो की, पारस्परिक सहयोग और सच्चे प्रयत्न की। आज की इस चर्चा के समय, मै केवल साहित्यिक आनुवाद की ही बात ले रही हूँ, अत उसी के बारे मे कहती हूँ।

जैसा कि मैं पहले कह चुकी हूँ, भारतीय जीवन को दर्शाने वाले हमारे विविध भारतीय साहित्यो को जब हम भारत की अन्य भाषाओ मे अनूदित करना चाहते हैं तो हमे अंग्रेजी के बजाय हिन्दी अधिक उपयोगी और अनुकूल मालूम पडती है। आज की हिन्दी या खडी बोली, सदियो से चले आये सास्कृतिक समन्वय के रूप मे ढलती आयी है। इसने गगा और जमुना की तरह अनेक समूहों से भावाभिव्यक्तियाँ ग्रहण की हैं। आज भारतीय जीवन के महत्वपूर्ण चौराहे पर खडी हिन्दी को भारत की सब भाषाओ के साथ हाथ मिला कर चलना होगा। अनेक भाषाओं के आदान-प्रदान के कारण हिन्दी मे और अन्य भाषाओ मे भी कई नये-नये प्रयोग आएँगे—और यह अवश्यम्भावी है। तब धीरे-धीरे भारतीय हिन्दी—(केवल उत्तर भारत की, हिन्दी भाषियो की हिन्दी ही नही) अखिल भारतीय हिन्दी उद्भूत होती जाएगी और एक भाषा म कही गयी बात को दूसरे भाषिया तक पहुँचाने मे वह समर्थ होगी। इसका निर्माण, हम सबको मिल कर करना होगा। यह हमारी, हम सबकी अपनी चीज होगी, किसी की लादी हुई नही। पर यह आज की हिन्दी का ही परिमार्जित और सम्पन्न रूप होगा। अत आज यदि अनुवाद-माध्यम के रूप मे हिन्दी कुछ कमजोर भले ही लगती हो, पर उसे

सहारा देते हुए बढाते जाना हमारी भी जिम्मेदारी है। प्रादेशिक प्रयोगो, पद्धतियो, रीतिरिवाज़ो को दर्शाने वाले शब्द या शब्द-समूह आज हिन्दी में यदि नहीं हैं तो उन्हे हमे गढना होगा। कुछ समय के बाद यह कठिनाई दूर हो जाएगी—नया शब्द चालू हो जाएगा। ऐसे ही अनेकानेक स्थलों पर योग देने से अनुवाद-माध्यम को हम सशक्त बना सकेंगे।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतीय साहित्य को देश के कोने-कोने मे फैलाने के लिए हिन्दी को अनुवाद-माध्यम के रूप मे ले कर समृद्ध बनाना होगा।

परन्तु इसके साथ प्रादेशिक स्तर पर भी और देश के सम्पूर्ण जीवन मे भी अधिक आदान-प्रदान की आवश्यकता है। यदि अहिन्दी रचना का हिन्दी मे अनुवाद करते समय और इसी प्रकार हिन्दी रचना को हिन्दीतर भाषा मे अनुवाद करते समय, प्रकाशन से पूर्व अनुवाद के पाठ को, मूल लेखक या उस भाषा के सुविज्ञ विद्वान् के साथ मिल-बैठ कर, ठीक किया जाए तो बहुत लाभकर होगा। इससे अनेक छोटी छोटी पर बेहूदी भूलो को बचाया जा सकता है। ऐसे ही अनेक सम्मिलित प्रयास, विभिन्न क्षेत्रो के लोगो को समीप लाएँगे और हम समन्वित भारतीय जीवन का निर्माण कर सकेंगे। हालांकि हमारी सस्कृति और दर्शन एक है पर हमारी छोटे-छोटे दायरो वाली रीति-रिवाज़ो की परम्परा ने हमे बिखरे मोतियो-सा कर दिया है। सम्मिलित प्रयास और आपसी सम्बन्ध ही इन मोतियो को एक सूत्र मे बाँध सकते हैं और तभी हमे असली भारतीय साहित्य के दर्शन होगे।

अत मे मैं यही कहना चाहती हूँ कि, माना मूल पाठ पढना सर्वोत्तम है, या फिर मूल का सीधा अनुवाद, परन्तु आज की स्थिति मे भारतीय भाषाओ का अनुवाद करने के लिए निकटतम माध्यम—हिन्दी की अत्यन्त आवश्यकता है। ठीक वैसे ही जैसे यूरोपीय भाषाओ को अग्रेज़ी, फ्रांसीसी, जर्मन और रूसी के माध्यम से व्यक्त किया जा रहा है। भारत मे पिछले कुछ वर्षों से आकाशवाणी ने अपने अखिल भारतीय नाटको आदि के प्रसार के लिए हिन्दी अनुवाद को ही "मास्टर-स्क्रिप्ट' मान कर, काम करना शुरू किया है और यह प्रयास प्राय सफल भी रह रहा है।

अनुवाद के लिए भाषा को हमे सम्पन्न, लचीला और सब ओर से ग्रहण कर सकने वाला बनाना होगा। जो कट्टरपथी हैं उन्हें इस मे स्थान नहीं मिलना चाहिए। आज की समस्या को मिल कर और भाईचारे के साथ

जितनी अच्छी तरह हम सुलझा सकते है उतना कट्टरपथी ढंग से, अकड़, हुकूमत या दादागिरी से हल नही कर सकते। इसके साथ ही आज का इकतरफा आदान—दुतरफा आदान-प्रदान होना चाहिए।

इसके साथ ही साथ अनुवादकों पर बडी जिम्मेदारी है—ईमानदारी और सच्चाई की। आज अनुवादक, जल्दी ही यश और पैसा कमाने के उद्देश्य से चाहे जैसी लीपा-पोती करके एक भाषा की कृति को दूसरी भाषा मे शब्दश उतार दे तो इससे बढ कर भाषा और साहित्य के प्रति गद्दारी दूसरी नही हो सकती।

हिन्दी को अनुवाद-माध्यम मान कर उसे योग्य और सम्पन्न बनाना हम सबका कर्तव्य है। उसके द्वारा भारत-भारती का साहित्य—भडार समृद्ध कर जन-मन के लिए उसे सहज, सुलभ करना भी हमारा कर्तव्य बन जाता है।

२. तेलुगु साहित्य

आन्ध्र रंगमंच

श्री राममूर्ति रेणु

आन्ध्र, आर्यों की एक प्राचीन जाति है जिसका उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण आदि वैदिक ग्रथो और पुराणो मे मिलता है। भव्य प्रकृति से नयनाभिराम उनकी भूमि ने उन्हे विश्व के सभी सत्य, सुन्दर व मगलमय तत्वो के प्रति प्रेरित किया। उन तत्वो की गहराई मे पैठ कर, उनके रहस्यो का अन्वेषण तथा अनावरण करने मे उनकी समस्त शक्तियाँ सतत क्रियशील रही। परपरा के अनुसार, आन्ध्र मे विकसित रगमच के दर्शन, हमे ईसा की १२ वी शती के आसपास होते है। उस समय, कहा जाता है, कूचिपूडि कलाकारो के यक्षगान-प्रदर्शन प्रचुर मात्रा मे होते थे। एक दन्तकथा के अनुसार तेलुगु के प्रसिद्ध कवि व वश्यवाक् वेमुलवाड भीमकवि ने, अपने प्रति अपराध करने वाले गगवश के किसी कलिंग नरेश को शाप दे कर, राज्यच्युत कर दिया था। उस राजा को, खोया हुआ राज्य पुन प्राप्त करने मे, कूचिपूडि कलाकारो की एक नाटक-मण्डली से सहायता मिली थी। इसी प्रकार दूसरे किसी क्रूर सामन्त 'सम्मेट गुरवराजु' के अत्याचारी शासन का, उसके अधीश्वर के समक्ष, सफल प्रदर्शन करके, उन्ही कलाकारो ने उस आततायी को पदच्युत करा दिया था। इन तथा ऐसी ही कुछ दूसरी दन्तकथाओ से यह स्पष्ट हो जाता है कि आन्ध्र मे लोकतत्र का प्रचार कई शताब्दियो पूर्व था, और यह विषय तो और भी चकित कर देने वाला है, कि उस जमाने मे नाटककला, मात्र मनोरजन का विषय न रही, अपितु लोकरुचि का परिष्कार एव विकास करने का जबर्दस्त साधन भी।

इन दन्तकथाओ की सत्यता की पुष्टि कतिपय साहित्यिक रचनाओ से भी हो जाती है। ईसा की बारहवी शती के प्रसिद्ध वीरशैव कवि पाल्कुरिकि सोमनाथ ने अपने 'पण्डिताराध्य चरित्र' नामक ग्रन्थ मे लिखा है, कि प्रतिवर्ष शिवरात्रि के अवसर पर श्रीशैल क्षेत्र मे तरह-तरह के नृत्यगीत गाये जाते थे,

यठपुतलियों और चमड़े की पुतलियों के द्वारा जनता के मनोरंजन के लिए नाटक दिखाये जाते थे। 'तुम्मेदपदमुलु' दरूवुलु, 'गोब्बिपदमुलु', चन्दमामपदमुलु इत्यादि दर्जनों नाट्यगीतों का उल्लेख सोमनाथ ने किया है। ये सभी गीत नृत्य के साथ गाये जाते थे। श्रीशैल क्षेत्र में आन्ध्र, तमिल, कन्नड, तथा महाराष्ट्र, इन चारों प्रान्तों के हजारों यात्री एकत्रित होते थे। ये लोग अपने अपने प्रदेशों में प्रचलित नाट्य-पद्धतियों में शिवलीलाओं को प्रदर्शित करके भगवान कामारि को प्रसन्न करते थे। और इस प्रकार विभिन्न प्रादेशिक ललित-कलाओं का एक अपूर्व संगम बन जाता था वह महाक्षेत्र। चमड़े की पुतलियों की नाटक-कला संभवतः महाराष्ट्र भाषाभाषियों से तेलुगु जनता ने ले ली होगी। कारण, उसके प्रदर्शक लोग कथावाचन के समय कहीं-कहीं प्राचीन मराठी के शब्द भी प्रयुक्त करते रहते हैं। इसी प्रकार तेलुगुवालों ने प्रचलित 'वीथी-भागवत' और कन्नडप्रदेश के 'बयलाटा' ने भी एक दूसरे को प्रभावित किया होगा।

कला और संस्कृति के क्षेत्र में, इस प्रकार के आदान प्रदान के प्रधान केन्द्र रहे थे, उस समय के वे पवित्र क्षेत्र, जहाँ पहुँच कर लोग अपने प्रादेशिक व भाषाविषयक सारे भेदभाव भूल कर, भारतीयता तथा भाईचारे के एक सूत्र में बँध जाते थे। एक ही परिवार की भाँति अपने परमपिता के सम्मुख नतमस्तक होते थे।

पालकुरिकि सोमनाथ ने अपना विराट शैव साहित्य, जिस छन्द में लिखा था, वह 'द्विपदी' छन्द नाट्यानुकूल है। देशी छन्द है। उसे करताल, मँजीरे तथा डफ ढोलक के साथ अच्छी तरह नाचते हुए गाया जा सकता है। और यही द्विपदी' छन्द पीछे जा कर तेलुगु नाटक का एक महत्त्वपूर्ण-विधान 'यक्षगान' का सर्वस्व बना। सोमनाथ के समय (१२वीं शताब्दी) तक ये दर्जनों प्रकार के नाट्यगीत तथा लोकनाटक प्रदर्शन काफी विकास को प्राप्त कर चुके थे। इससे यह अनुमान सहज ही पुष्ट हो जाता है कि उन कलाओं के पीछे शतियों की स्वस्थ परम्परा थी।

सोमनाथ के वीरशैव साहित्य के बाद तेलुगु के महाकवि श्रीनाथ भट्ट की कृतियाँ भी, तेलुगु रंगमंच की प्राचीनता पर प्रकाश डालती हैं। अपने 'भीम खण्ड' नामक एक प्रसिद्ध ग्रन्थ में उन्होंने लिखा है कि, उन दिनों देश में यक्षगान प्रदर्शनों का खूब प्रचलन था। भगवान 'दक्षाराम भीमेश्वर' के मेलों में वेश्याएँ 'पार्वती' आदि की भूमिकाएँ धारण कर शिवलीला का प्रदर्शन रात

भर करती थी, और दूसरे दिन प्रात उसी परिधान मे बाजारो मे घूम कर अपने नाट्य प्रदर्शन द्वारा सारे जगत् को शृगार के समुद्र मे डुबो लेती थी।

"सानि ईशानियै महोत्सवमु नन्दु
वेल नव चन्द्रकान्तपु गिन्नेपूनि
वीथि-भिक्षाटन मोनर्चु वेल जेयु
मरूलु नृत्यम्बु जगमुल मरूलु कोलुपु।"

अर्थात्—सानि यानी वेश्या ईशानी (पार्वती) बन कर मेले मे, हाथ मे चन्द्रकान्त पत्थर की बनी कटोरी लिए भीख माँगते समय जो शृगार नृत्य करती है, वह सारे विश्वो को मोहित कर डालता है।

इन्ही श्रीनाथ के समसामयिक, एक दूसरे कवि विनुकोण्ड वल्लभामात्य की कृति 'क्रीडाभिरामम्' तेलुगु साहित्य का प्रथम वीथी-नाटक है। सस्कृत रीतिग्रन्थ दशरूपक मे वीथी के जो लक्षण बताये गये हैं प्राय वे सभी इसमे मिलते हैं। इस नाटक की यह विशेषता है कि सस्कृत के अधिकाश नाटको की तरह इसका इतिवृत्त महाभारत, रामायण अथवा किसी अन्य धर्मग्रन्थ से नही लिया गया है, अपितु इसमे कवि न अपने समय के जन जीवन काकतीय नरेशो की राजधानी 'एकशिलानगर' या ओरुगल्लु का एक सजीव चित्रपट ही प्रस्तुत किया है। एक जगह कवि ने एक 'जक्कुल पुरध्रि' यानी 'यक्षगान' का वर्णन किया है जो कि राजधानी के चतुष्पथ मे, 'कामवल्ली महादेवी' की कथा का अभिनय सहित गायन कर रही थी। दर्शको के चित्त चुराये जाती थी।

महाकवि श्रीनाथ की एक और कृति 'पलनाटि वीरचरित्रमु' है जो कि पृथ्वीराजरासो और आल्हाखण्ड की तरह उत्तम वीर काव्य है। वह द्विपदी छन्दो मे निर्मित है, और उसका प्रचार 'पलनाडु' इलाके मे आज भी पाया जाता है। इस वीरगाथा की विशेषता यह है कि 'पिच्चिकुन्ट' नामक एक खास जाति के कथक, हाथो मे तलवार और पन्ब' तथा 'तित्ति' नामक दो बाजे लिए, भावानुरूप अभिनय करते हुए प्रदर्शन करते हैं, और जनता तल्लीन हो रसास्वादन करती है। भारतीय नाट्यकला के बीज रूप जिन अङ्गो व लक्षणो को आचाय भरत मुनि न गिनाया है, वे इस वीरगीत मे गोचर होते हैं।

यहाँ एक और विषय भी उल्लेखनीय है। तेलुगु रगमच मे जैसा कि ऊपर कह चुका हूँ, यक्षगानो का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। 'यक्ष' शब्द का वतमान तेलुगु रूप 'जक्कु' है, जो कि आन्ध्र के एक निचले वर्ग का नाम है।

ये लोग आज भी नाच-गान आदि के द्वारा गँवई-गाँवो की जनता का मनोरजन करते रहते हैं। जब कभी 'यक्ष गानो' तथा 'यक्षो' का विचार मन मे उठता है, तो मेरे सम्मुख अजन्ता के सुन्दर कलामण्डपों का वह भित्तिचित्र खिच जाता है, जिसमे कई 'यक्ष' आकाश मे तरह-तरह के वाद्ययत्र तथा मजीरे लिए गाते उड रहे हैं। अजन्ता-कलामण्डपो का निर्माण-काल कम से कम १२, १३ शताब्दी पुराना है। तो क्यो न हम मान लें कि इन 'यक्षगानो' का प्रचलन भी ईसा की छठी-सातवी सदी के आस-पास रहा होगा? आखिर *साहित्य की तरह शिल्प, चित्र व सगीत भी जीवन की अभिव्यक्ति के माध्यम* ही तो हैं!

इस सारी विवेचना से सहज ही ज्ञात होता है कि तेलुगु रगमच का इतिहास काफी पुराना है। प्राचीन तेलुगु मच के चार प्रधान रूप लक्षित हैं— कठपुतली नाच, चर्मपुत्तलिका नृत्य, यक्षगान और 'वीथी-भागवतमु'। इनमे कठपुतली नृत्य का आजकल, एक प्रकार से अन्तर्धान हो चला है। चमडे की पुतलियो के नाटक भी जिन्हे 'तोलुबोम्मलाटा' कहते हैं, किन्ही सुदूर कोनो मे अपनी अन्तिम साँस ले रहे हैं। शेष दानो नाटक पद्धतियो को भी वर्तमान 'स्टेज ड्रामा' ने 'दकियानूसी' घोषित कर डाला है, सभ्रात एव शिक्षित जन समाज की दृष्टि मे काफी गिरा दिया है। आज के दिन भारत की सास्कृतिक देन चमडे की पुतलियो का नाटक सुदूर प्राच्य मे हिन्देशिया के जावा-बालि द्वीपो मे राष्ट्रीय-रगमच के सम्मानित आसन पर विराजमान है— 'वोयाग' खेल के नाम से। और मातृभूमि भारत ने उसे उठा कर फेंक दिया है रद्दी की टोकरी मे।

भारतीय आचार्यों ने सगीत की बडी व्यापक परिभाषा दी है—

नृत्य गीत तथा वाद्य त्रय सगीतमुच्यते।

नृत्य, गीत और वाद्य (बाजा) इन तीनो का समाहार सगीत है। *और तेलुगु का यक्षगान साहित्य-सगीत प्रधान है।* द्विपदी, पद, दरूवु इत्यादि का नृत्यपूर्वक गायन उसमे अपेक्षित है। इन यक्षगानो का प्रदर्शन, जहाँ तक हमे पता लगता है, विशेष कर राजा महाराजाओ के दरबारो मे हुआ करता *था। अद्यावधि उपलब्ध यक्षगानो मे सब से पुराना ग्रन्थ "सुग्रीव विजयमु" है,* जिसे विजयनगर सम्राट (ईसा की १३ वी शती) के आठ प्रसिद्ध दरबारी कवियो मे एक कन्दुकूरि रुद्र कवि ने रचा था। कहा जाता है कि उसका अभिनय राजमहलो मे होता था। विजयनगर साम्राज्य के विघटन के बाद

सुदूर दक्षिण मे मदुरा-तजावूरु, के तेलुगु नायक राजाओ ने और बद को महाराष्ट्र के शासको ने उस साहित्य की अद्भूत श्रीवृद्धि की। इस दिशा मे तजावूरु के विजयराघव नायक तथा महाराष्ट्र नृपति शाहजी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये दोनो अपने समय के अच्छे कवि तथा कवि-पोषक थे। दोनो ने स्वय कई यक्षगान नाटक लिखे है, और अपने आश्रित कवियो से अनेक यक्षगान लिखवाये। इनमे भी पूर्ववर्ती राजा विजयराघव नायक ने तेलुगु रगमच का जैसा मान बढाया, वह एक अद्भुत एव अद्वितीय ऐतिहासिक तथ्य बन गया है। उन्होंने धीरे धीरे प्राचीन यक्षगान मे आवश्यक परिवर्तन करके उसे सर्वांग सुन्दर रूप दिया। अपने पिता रघुनाथ नायक की जीवनी को ले कर एव सुन्दर यक्षगान लिखा। कहते हैं कि 'विजयराघव-नायक' स्वय अपने दरबार की विदुषी वैश्याओ के साथ-साथ रगमच पर जाते थे, नाटको की प्रधान भूमिकाएँ धारण करते थे। इस प्रकार उन्होने रगमच को बडा ही गौरवपूर्ण स्थान प्रदान किया। रघुनाथाभ्युदय, कालीय-मर्दन, प्रह्लाद चरित्र, पूतनाहरण, विप्रनारायण चरित्र आदि दर्जनो नाटक इस राजा ने (ई १७ वी शती मे) लिखे। इन के दरबारी कवियो मे कोनेटि दीक्षित, पुरुषोत्तम दीक्षित, वेंकटपति सोमयाजि आदि कवियो ने भी कई यक्षगान लिखे हैं। विजयराघव नायक ही की तरह बाद की शताब्दी मे महाराष्ट्र शासक शाहजी ने यक्षगान साहित्य मे चार चाँद लगाये। तजावूरु के 'सरस्वती महल पुस्तकालय' की सैकडो पाण्डुलिपियाँ आज भी इन दोनो शासको की रगमचीय सेवाओ की मौन-मुखर प्रशसा कर रही हैं।

एक ओर राज दरबारो तथा प्रतिष्ठित समाजो मे यक्षगान नाटक लोकप्रियता प्राप्त कर रहे थे, तो दूसरी ओर समाज की साधारण अनपढ, वर्ग की जनता का मनोरजन 'वीथी भागवत' करने लगे। इन्हे हम यक्षगान-नाटकों के असस्कृत रूप कह सकते है। ये भागवत इस लिए कहलाए, कि इनमे महाभारत भागवत-रामायण तथा शिवलीलाओ आदि के प्रसग रहते थे। इन्हे 'यानादुलु', 'जगालु', चिंदुमादिगलु, जक्कुलवारू, इत्यादि विभिन्न वर्गों के लोग प्रदर्शित करते हैं। इनका रगमच बडा ही सरल, साधारण होता है। गाँव के किसी चौराहे पर चार लम्बे बाँस गाड कर नारियल के पत्तो का पण्डाल तैयार करते हैं। उसका अगला हिस्सा एक सफ़ेद चादर (परदा) से ढँका रहता है। पात्रो के प्रवेश के पूर्व वह गिराया जाता है, उसके पीछे खडे हो कर प्रत्येक पात्र गाता हुआ अपना परिचय सुना कर, फिर परदा हटा

कर नृत्य करता हुआ बाहर आता है। एरंडी का तेल या मिट्टी के तेल की दो मसालें दोनो तरफ़ लिये मशालची खडे रहते है। नाटक रात को ९-१० बजे के करीब प्रारम्भ हो कर भोर तक चलता है। इन नाटक मण्डलियों के लोग गरीब होते हैं। १०-१५ रुपया या ४०-५० सेर अनाज मिलने से ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। खाना तो गाँव के सपन्न गृहस्थों के यहाँ खा लेते है। इनकी आवश्यकताएँ बस इतनी ही हैं। आज के जमाने मे ये वीथी भागवत ही यत्र-तत्र गँवई गाँवो मे दिखाई जाती हैं। तजावूर, मदुरा आदि राज्यो के पतन के साथ पुरानी यक्षगान परम्परा तिरोहित हो गयी।

दक्षिण भारत मे, विशेष कर आन्ध्र और तमिल्नाडु मे सदाचार-सपन्न एव अध्ययनशील कुछ ब्राह्मण परिवारो ने तेलुगु रगमच को खूब चमकाया है। आन्ध्र के कृष्णा ज़िले के कूचिपूडि नामक गाँव के ब्राह्मण कलाकार, और तजावूर से बारह मील दूर 'मेलट्टूर' गाँव के तेलुगु ब्राह्मण कलाकारो ने कई यक्षगान नाटक स्वय लिखे हैं। ये लोग उन नाटको का अभिनय करते आ रहे हैं।

इन प्रदर्शनो मे आगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्विक अभिनयों का परिष्कृत रूप बहुत समय तक विद्यमान था। किन्तु इधर आधुनिक 'स्टेज-ड्रामा' ने आ कर उनकी परपरागत मान्यताओ पर प्रहार किया है। इन दोनो मे कूचिपूडि कलाकारों का इतिहास अधिक पुराना है। कहा जाता है कि तेलुगु नायक शासको के समय मे इनके कुछ परिवार जा कर दक्षिण मे बस गये थे। और उन्ही के वशज आज तक चले आ रहे हैं। मेलट्टूर के ब्राह्मण परिवारो मे 'भागवतुल' नामक एकाध परिवार हैं जो कि कूचिपूडि मे बहुत पहले ही से रहते आये है। मेलट्टूर को तो हम कूचिपूडि हो की शाखा कह सकते हैं। प्रह्लाद चरित्र, भामाकलापमु, ऊषा परिणय, शशिरेखा परिणय, रामनाटक आदि दोनो जगह प्रदर्शित किये जाते हैं। अन्तर सिर्फ़ इतना है कि कूचिपूडि के ग़रीब कलाकार गाँव से बाहर जा कर भी नाटक खेलते हैं, जब कि मेलट्टूर के सम्पन्न 'मीराशीदार' उन नाटको का प्रदर्शन अपने गाँव मे ही करते है। और वह भी गाँव के भगवान श्री वरदराज स्वामी के वार्षिक उत्सवों में भगवान् के मन्दिर के सामने तीन दिन के लिए तीन नाटक प्रदर्शित करते हैं। कूचिपूडि नाट्यकला के आदि प्रवतक प्रात स्मरणीय सिद्धेंद्रयोगी माने जाते हैं, जिनका 'भामाकलापमु' या 'पारिजात कथा' भारतीय नाट्य शास्त्र का महोज्ज्वल रत्न है। उन महात्मा के काल तथा जीवनी का प्रामा-

णिक विवरण अद्यावधि उपलब्ध नही हुआ। मेलट्टूर मे स्व श्री वेंकटराम शास्त्री जी के लिखे नाटक ही खेले जाते हैं। ये वेंकटराम शास्त्री कर्णाटक सगीत के महान् आचार्य, त्यागराज स्वामी के समकालीन माने जाते हैं। आज कूचिपूडि नाट्य एव नाटक पद्धति पर, आधुनिक रगमचीय नाटक तथा सिनेमा सगीत का अहितकर प्रभाव लक्षित होने लगा है। उसका परिष्कार एव परिमार्जन करके यथासभव उसे फिर से परम्परागत मान्यताओ के अनुरूप ढालना जरूरी है। तभी हमे अपनी भारतीय स्वस्थ नाटक परम्परा का थोडा-सा आभास मिल सकेगा। इस दिशा मे आकाशवाणी तथा तेलुगु साहित्य अकादमी की ओर से जो काम हो रहा है वह स्तुत्य है।

इस प्रसग मे एक दूसरे तेलुगु सन्त कवि स्वामी नारायणतीर्थ का नाम सादर लिया जाना चाहिए। उन्होने कृष्णलीला तरगिणी के नाम से सस्कृत भाषा मे एक सफल यक्षगान-रूपक रचा, जो कि साहित्यिक एव अभिनय कला की दृष्टि से अनुपम है। उसम सुन्दर गीतो, चूर्णिकाओ, दरूवुओ (नाट्यगीत) श्लोको और सवाद गीतो मे भगवान् कृष्णचन्द्र के बाल्यकाल से ले कर रुक्मिणी परिणय तक की पूरी कहानी प्रस्तुत की गयी है। सफल अभिनेयता इस रचना का खास गुण है। भरतनाट्यम के सभी अगो व करणो के प्रदर्शन के लिए उससे बढ कर उत्तम लक्ष्यो की प्राप्ति अन्य किसी सस्कृत यक्षगान मे सभवत नही होती। यक्ष-पत्नियो का स्तवन और रासमण्डल के प्रसग, इस विचार से सर्वोतम स्थल हैं। भगवान् कृष्णचन्द्र के श्रृगार पूर्ण जीवन का वैसा पवित्र, अश्लीलता से दूर एव सरस प्रतिपादन समूचे सस्कृत साहित्य मे कठिनता से प्राप्त होता है। पूरी रचना का रगमच पर प्रदर्शन, कहते हैं, कि सात दिनो मे समाप्त हो जाता था। आज तो उसके कतिपय नाट्य गीतो का ही अभिनय कूचिपूडि के कलाकार प्रस्तुत करते हैं।

इस अनुपम यक्षगान पर आधारित दो सुन्दर रूपकों का सफल प्रसारण आकाशवाणी की ओर से हो चुका है। इससे सिद्ध होता है कि दो ढाई शताब्दी पूर्व आन्ध्र प्रदेश के सामाजिक सस्कृत नाटको का खूब आनन्द उठा लेते थे।

देशी नरेशो के तिरोधान एव अग्रेजी शासन के प्रवेश से भारतीय कला-जीवन अन्धकारमय हो गया। पश्चिमी सस्कृति के साकर्य ने प्राचीन रगमच को बदरग बना दिया। आधुनिक तेलुगु मच का श्रीगणेश भी अन्य भारतीय प्रादेशिक रगमचो की तरह इधर १९ वीं शती के अन्तिम चरण मे हुआ।

नाटक कला के इस नये आन्दोलन को प्रेरणा मिली थी सबसे पहले, सन् १८७५ मे मद्रास मे प्रदर्शित "दी ओरिजिनल पारसी विक्टोरिया थियेट्रिकल ट्रूप" के खेलो से। इस ट्रूप के नायक थे पटेल एम. ए। उस कम्पनी के खेलो मे प्रभावित हो कर कुछ उत्साही नवयुवको की एक मण्डली ने मद्रास मे 'दी ओरिएण्टल-ड्रेमेटिक कम्पनी' स्थापित की थी सन् १८७६ मे। उसके सरदार थे स्व. गोमठम् श्रीनिवासाचार्य जो कि एक साथ सफल अभिनेता और नाटककार थे। इस कम्पनी ने अपना कार्य संस्कृत तथा अंग्रेजी नाटको के प्रदर्शनो के साथ शुरू किया था और धीरे-धीरे तेलुगु नाटक खेले जाने लगे। इसके संस्थापक श्रीनिवासाचार्य की अभिनय कला से उस समय के मद्रास गवर्नर "ड्यूक आफ बकिंघम्" इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होने "इण्डियन-गैरिक" कह कर श्रीनिवासाचार्य का अभिनन्दन किया था। श्री आचारी के प्रवेश के साथ-साथ दक्षिणभारत के नाटक-क्षेत्र का अवसाद समाप्त हो गया और वह एक स्वस्थ व निश्चित रूप धारण करने लगा। ठीक उन्ही दिनो, आन्ध्र के प्रधान नगरो मे कला प्रेमी युवको की कई एक नाटक मण्डलियाँ स्थापित होने लगी। गुण्टूर की "फर्स्ट" और सकन्ड कम्पनियाँ, 'विजयनगर की 'जगन्नाथ विलासिनी सभा,' राजमहेन्द्री की 'गुप्तेश्वरराव कपनी', बेजवाडा की 'मैल्वरम् कपनी' प्रमुख थी। तेलुगु के सफल हास्य नाटक "कन्याशुल्कमु" के रचयिता स्व आचार्य गुरजाड अप्पाराव और श्रीनिवासाचार्य का सीधा सबध, विजयनगरम् की सभा के साथ प्रारम्भ हुआ। आधुनिक तेलुगु रगमच के अत्यन्त सफल अभिनेता स्व श्रीहरि प्रसादराव ने जिन्हे कि तेलुगु रगमच का पिता कहा जाता है, गुटूर की 'फर्स्ट ड्रेमेटिक कपनी' स्थापित करके, नाटक कला की बडी सेवा की थी। वह तेलुगु रगमच के उत्थान तथा विकास का जमाना था। सफल अभिनेताओ की आकाक्षाओ को पूर्ण करने के लिए, स्व डी कृष्णमाचारी जैसे उत्तम नाटककार भी बाहर आये थे। कृष्णमाचारी ने एक के बाद एक "चित्रनलीयमु", 'विपाद सारगधर', 'प्रह्लाद नाटकमु" आदि कृतियाँ रच डाली, जिन्होंने नाटक जगत मे युगान्तर कर दिया था। अनुपम काव्य सौन्दर्य, भाव गाभीर्य, पूर्ण कलात्मकता, सुरुचिपूर्ण हास्य के हलके छीटे, भाषा की स्वच्छ, स्फीत प्राजल धारा आदि उत्तम गुणो से युक्त इन रचनाओ ने साहित्य-जगत मे धूम मचा दी। इन नाटको के लेखक को आन्ध्र-नाटक-पितामह के अमर पद पर बिठाया गया। श्री हरिप्रसादराव मे छिपे हुए कलाकार ने उन अमूल्य कृतियो को परख लिया। उन्होने आशातीत सफलता के साथ उन्हे रगमच पर प्रदर्शित किया।

एक बार स्वय लेखक अर्थात् श्री कृष्णमाचारी "राजा नल" की भूमिका मे श्री प्रसादराव का अभिनय देख कर इतने मुग्ध व गद्गद् हो उठे थे कि थियेटर मे खडे हो कर आनन्द के आँसू गिराते हुए बोले आज मेरी नाटक रचना सफल हुई। मैं धन्य हो गया हूँ। और यह सारा श्रेय 'नटराज' श्री हरिप्रसादराव को है।

श्री हरिप्रसादराव जन्मजात कलाकार थे। राजाओ की-सी गभीर और प्रभावशाली आकृति, सामाजिको पर जादू डालने वाली मीठी वाणी, उत्तम सवाद पटुता, लोगो को चकित बनाने वाली मौलिकता व प्रत्युत्पन्नमतित्व। प्रधान नायिका की भूमिका मे स्व श्री कोपल्ले हनुमतराव को ले कर, जब वे रगमच पर जाते थे, दर्शकमण्डली अपना अहोभाग्य मानती थी। चारो ओर से साधुवाद की बौछार होने लगती। श्री प्रसादराव को स्टेज पर देखने का सौभाग्य प्राप्त करने वाले एकाध बूढे कला मर्मज्ञो का कहना है कि आज तक प्रसादराव जैसा अभिनय उनके देखने नही आया। श्री प्रसादराव ने सन् १९०५ मे अपनी मण्डली के साथ मद्रास मे कई नाटक खेले थे, जिनकी प्रशसा से मद्रास के प्रमुख दैनिक 'हिन्दू" के पन्ने भरे पडे हैं। श्री प्रसादराव के बाद तेलुगु रगमच के प्रतिष्ठित कतिपय कलाकारो के नाम इस प्रकार है—स्व० श्री बल्लारि राघव, नेल्लूर के श्रीनिवासन तथा नगराजराव। ब्रह्मजोस्युल सुब्बाराव, यडवल्लि सूर्यनारायण, कपिलवायि रामनाथशास्त्री, पिल्ललमर्रि सुन्दररामय्या, सजीवराव, निडुमुक्कल सुब्बाराव, बेल्लम कोण्डा सुब्बाराव, डी वी सुब्बाराव, माधवपेद्दि वेंकटरामय्या, अद्दकि श्रीराममूर्ति तथा पद्मश्री स्थानम् नरसिंहराव।

यह हुई अभिनेताओं की बात।

इसी प्रकार रगमच के एक प्रधान स्तभ नाटक-रचना मे भी आन्ध्र ने हरिप्रसादोत्तर युग मे काफी प्रगति की है। उस समय के सफल नाटककारो मे सर्वश्री पानुगटि लक्ष्मीनरसिंहम् पन्तुलु, वन्दुकूरि वीरेशलिंगम् पन्तुलु, वेद वेंकटरायशास्त्री, वड्डादि सुब्बारायुडु, बलिजेपल्लि लक्ष्मीकान्त कवि, तिरुपति वेंकटकवुलु, चिलकमूर्ति, डी गोपालाचारी, के बाल सरस्वती, श्रीपादकृष्णमूर्ति, के नारामण राव, मल्लादि अच्युतराम शास्त्री आदि ने अपनी सुन्दर कृतियो से तेलुगु रगमच की श्रीवृद्धि की है। कालिदास के शाकुन्तल-नाटक के रूपान्तर, प्रतापरुद्रीयमु, राधाकृष्ण, सत्य हरिश्चन्द्रीयमु, पाण्डव उद्योग विजयमुलु, गयोपाख्यानमु, रामदास, भक्त तुकाराम, वर-विक्रयमु, बोब्बिलियुद्दमु, सक्कुबायि, वेणी सहारमु, तुलाभारमु इत्यादि नाटक आज भी

नाटक प्रेमियो को बरबस आकृष्ट कर लेते हैं। इनमे से कुछ पौराणिक नाटक हैं तो कुछ ऐतिहासिक, और अन्य, सामाजिक समस्याओ पर आधारित। इन नाटको मे पद्यो (छन्दो) की भरमार रहती थी। ये पद्य कई रागो मे गाये जाते थे, जिनसे कि आजकल का दर्शक शीघ्र ही ऊब उठता है। सभवत इसके लिए उत्तरदायी प्राचीन यक्षगान-परम्परा की शिथिल स्मृतियाँ और आन्ध्रो का सगीत प्रेम है। यह भी हो सकता है कि पारसी या मराठी "थियेट्रिकल" कपनियो से वे प्रभावित रहे हो। साँप के काट खाने पर हरिश्चन्द्र के पुत्र मरणासन्न रोहिताश्व को विभिन्न रागो मे अपनी वेदना व्यक्त करते हुए देख कर आज का दर्शक बरदाश्त न कर सकेगा। इसी प्रकार युद्ध भूमि मे खडे हो कर अर्जुन और कर्ण का एक दूसरे की भर्त्सना व अवज्ञा लम्बे-लम्बे समासों वाले सगीतमय पद्यो मे बडे धैर्य के साथ करते रहना भी कम अस्वाभाविक और उपहासास्पद नहीं होगा। औचित्य से कोसो दूर, निरर्थक सगीत के साथ-साथ लबे स्वगत-भाषण भी, नाटक को बोझिल बनाते थे। उसकी गति और दर्शको की उत्कठा पर पानी फिर जाता था। नाटक-रचना सम्बन्धी यह प्रणाली बीस वर्ष तक अविच्छिन्न चली आयी। सन् १९४० के आसपास जा कर गद्य-नाटकों का महत्त्व लोग समझने लगे। पढे-लिखे समाज मे उन्हे समादर मिलने लगा। साथ ही रगमचीय दृष्टिकोण तथा प्रसाधन सबधी मान्यताओ मे भी परिवर्तन लक्षित हुआ। प्रारभिक दशा के रगबिरगे परदो का स्थान दृश्य लेने लगे। नाटक प्रदर्शन मे अधिक वास्तविकता तथा सजीवता पैदा करने की ओर कलाकारो का ध्यान गया। पुराने सात या पाँच अको वाले नाटको को हटा कर, तीन अक वाले अथवा एकाकी विकसित होने लगे। पश्चिमी नाटक साहित्य का पठन-पाठन, कालेजो तथा विश्वविद्यालयो का वातावरण, समाज की बदलती हुई समस्याएँ तथा मान्यताएँ इन सबने मिल कर नाटक रचना मे आमूल परिवर्तन कर दिया। मनोवैज्ञानिक, समस्या मूलक, रूपात्मक तथा बुद्धि प्रधान विषयो पर नाटक लिखे जाने लगे। साहित्यिकता से बढ कर नाटक की अभिनेयता को मान्यता मिलने लगी। साथ ही रेडियो ने इस क्षेत्र मे भी अपनी अमिट छाप छोडी है। रेडियो नाटको की एक सर्वथा अलग तकनीक चल पडी। जीवन के अन्यान्य क्षेत्रो की तरह रगमच की दिशा मे भी नित्य नूतन प्रयोग होने लगे। रगमच आज सभी दृष्टियो से जन-जीवन का प्रतिनिधित्व कर रहा है।

आजकल के नवीनतम विचारो के प्रतिनिधि लेखकों मे सर्वश्री विश्वनाथ सत्यनारायण, आचार्य आत्रेय, के गोपालराव, जस्टिस राजमन्नार,

डी वी. कृष्ण शास्त्री, एस रामराव, एन नरसिंह शास्त्री, आचार्य शिवशंकर-स्वामी, एन वेंकटेश्वरराव, भमिडिपाटि कामेश्वरराव (सफल हास्य नाटककार), वी. वी सोमयाजुलु, सी नारायण रेड्डी आदि कितने ही लोग अपनी सुन्दर रचनाओ द्वारा तेलुगु साहित्य का भण्डार भर रहे हैं।

इस प्रसग मे कतिपय साहित्यिक एव कला सम्बन्धी प्रतिनिधि सस्थाओ का स्मरण करना आवश्यक हो जाता है। आन्ध्र नाटक कला परिषद् एलूर, आन्ध्र ससद् गुण्टूर, आदि सस्थाएँ नाटक कला की श्रीवृद्धि मे बराबर योगदान देती आ रही है। और इधर आन्ध्र प्रदेश मे सगीत नाटक अकादमी की स्थापना हुई जो कि तेलुगु रगमच की सर्वतोमुखी उन्नति के लिए प्रयत्नशील है।

इस सक्षिप्त विवरण के बाद अब बात रह जाती है नाट्यशालाओ या थियेटरो की। ढाई-तीन शताब्दी पूर्व तजाऊर मे नायक राजाओं ने अपने-अपने राजमहलो मे 'सगीत महल' के नाम से एक सुन्दर भवन निर्मित किया था जो कि आज भी अपने निर्माताओ की कलाप्रियता, वास्तु तथा ध्वनि-प्रयोग सम्बन्धी प्रतिभा का परिचय कराता है। उसमे गायन आदि कार्यक्रमो के साथ-साथ यक्षगान प्रदर्शन भी होते थे। नाटक महल, तथा सगीत महल के इन पक्के भवनो के अतिरिक्त खुले मैदान मे भी वीथी नाटक या 'वीथी भागवत' के प्रदर्शन होते थे। उस लोकमच का परिचय ऊपर दिया जा चुका है।

इधर हाल ही मे, आन्ध्र प्रदेश के प्रसिद्ध बौद्ध-यात्रास्थल नागार्जुन-कोण्डा मे जो खुदाई पुरातत्व विभाग की ओर से हुई, उसमे अन्यान्य विस्मय-जनक तथ्यो तथा खण्डहरो के साथ-साथ उस ज़माने के, अर्थात् आज से १८०० वर्ष पूर्व के रगमच पर प्रकाश डालने वाला एक अद्भुत निर्माण बाहर आया है। वह उस युग का एक खुला रगमच है। आजकल का स्टेडियम जैसा उसका नमूना है। बीच मे एक विशाल रगमच है, जिसके चारो ओर सीढीनुमा आसन-पक्तियाँ आजकल की गैलरी जैसी ४०-५० फीट ऊँचाई तक ऊपर को चली गयी हैं। उन पर सैकडो दर्शक सुविधापूर्वक बैठ सकते थे। किन्तु सबसे आश्चर्यजनक, तथा आज के ध्वनि विशेषज्ञो को चक्कर मे डालने वाली बात यह है कि, उन आसन-पक्तियो मे सबमे निचली पक्ति मे रगमच के बिलकुल निकट बैठा हुआ व्यक्ति, मच पर खडे हो कर बोलने वाले आदमी की आवाज जितनी स्पष्टता से सुन लेता है, उतनी ही सुगमता और स्पष्टता

के साथ, सत्र से ऊँची कतार में, सबसे दूर बैठा हुआ दर्शक भी सुन पाता है। पुरातत्व का यह प्रबल एवं अकाट्य प्रमाण इस विषय का साक्षी है कि आन्ध्र में नाटक कला और रगमच का पूर्ण विकास आज से लगभग दो सहस्र वर्ष पूर्व ही हो चुका था ! जहाँ ऐसे सुन्दर व व्यवस्थित रगमच का निर्माण इतने वर्ष पूर्व हुआ हो, वहाँ उतने ही विकसित व परिष्कृत रूप मे नाटक और नाटक मण्डलियाँ अवश्य रही होगी। इसमे शका करने की तनिक भी गुजाइश नही रह जाती।

यह तो हुई सैकडो वर्ष पूर्व की बात ! और इधर बीसवी शती मे भी, विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शताब्दी-समारोह के परिणाम स्वरूप देश के अन्यान्य प्रान्तो की तरह आन्ध्र में भी आधुनिक ढग के नाट्य गृह बनने लगे हैं। हैदराबाद नगर का विशाल और सर्वांगसुन्दर नाट्य-गृह रवीन्द्र भारती का आविर्भाव आन्ध्र रगमच के इतिहास की एक अविस्मरणीय घटना है। इसके निर्माण का श्रेय डा बी गोपालरेड्डी को है। आज हम देख रहे है कि प्राय प्रतिदिन वहाँ कोई न कोई सास्कृतिक कार्यक्रम बराबर चलता रहता है और उसका पूरा-पूरा उपयोग किया जा रहा है। इस प्रकार कई वर्षों पुरानी कठिन समस्या का, आदर्श नाटक-गृहो के अभाव का, हल होने लगा है। इस प्रकार दूसरे प्रादेशिक रगमचो के साथ-साथ तेलुगु रगमच भी विकास की ओर बढता जा रहा है और उसके आगे भविष्य स्पष्ट गोचर हो रहा है।

आन्ध्र शतक वाङ्मय

मु भ इ. शर्मा 'ईश'

सातवाहनो की राजभाषा प्राकृत थी, प्रसिद्ध आन्ध्र राजा 'हाल' की 'सप्तशती' के आधार पर कुछ भाषा-शास्त्री इस निष्कर्ष पर पहुँच है कि आन्ध्र राजाओ की भाषा प्राकृत थी। 'कवित्ववेदी' का कहना है कि आन्ध्रो की आदिम भाषा पैशाचिक प्राकृत रही होगी। जो कुछ भी हो, ईस्वी सन् की आठवी सदी तक तेलुगु मे प्राकृत शब्दो की सख्या अधिक हो गयी। इसलिए वह गीर्वाण वाणी की पुत्री बनी। पडितगण तत्सम शब्दो से पूर्ण भाषा को 'आन्ध्र' तथा देशज शब्दो से युक्त भाषा को 'तेलुगु' कहने लगे।

सातवाहनो के पश्चात् आन्ध्र साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया। छोटे-छोटे भूभाग पर अनेक राजा राज्य करने लगे। ये राजा किसी न किसी रूप मे अंग्रेजो के भारत मे प्रवेश होने तक राज्य करते रहे। उन राज वशो मे पल्लव, राष्ट्रकूट, चोल, चालुक्य, काकतीय, रेड्डी, नायक, रायलवश मुख्य हैं। वैदिक काल से ले कर पुराणो की रचना तक तथा पौराणिक काल से ले कर दसवी शती तक सस्कृत वाड्मय मे हमे अनेक प्रकार के स्तोत्र मिलते हैं। इन स्तोत्रो तथा विविध प्रकार के मत्रो के जप तथा पाठ की सख्या शत, सहस्र अथवा लक्ष निर्धारित की गयी। शिशुपाल के वध के प्रसग मे श्रीकृष्ण शिशुपाल के दुष्कर्मो और दुर्नीति के विषय मे कहते है कि इसकी माता की प्रार्थना के अनुसार मैंने इसके शत अपराधो को क्षमा कर दिया है[1]। शतरुद्रीय आदि शब्द वेदो मे पाये जाते हैं। सस्कृत-वाड्मय की यही सख्या नियम शतक वाड्मय का आधार बना। लेकिन सस्कृत मे शतक-रचना की ओर बहुत कम कवियो ने ध्यान दिया। केवल भर्तृहरि का 'शतक-

१ "शृण्वन्तु मे महीपाला येनैतत् क्षमित मया।
अपराधशत क्षाम्य मातुरस्यैव याचने।"
(महाभारत, सभापर्व, अध्याय ४५—श्लोक २३)

नय', 'अमरुशतक', 'मूकपचाशती', कुट्टिकवि का 'महिषशतक' आदि ही प्राचीन सस्कृत वाड्मय में उपलब्ध होते हैं ।

प्राकृत-रचनाओं के आधार पर अनेक शतकों की रचना हुई । प्राकृत-भाषा के शतको मे जो नाम-दशक, अवतार-दशक आदि दशकों के विभाग तथा भावों के परिवर्तन पाये जाते हैं उन्हे आन्ध्र-शतकों मे भी देखे जा सकते हैं। स्व पडित वगूरी सुब्बाराव पतुलु ने अपने शतक कवियो के चरित्र मे सूचित किया है कि *प्राकृत भाषा म 'अवदान शतक', 'कर्म शतक', 'दिव्याव-दान शतक* आदि पन्द्रह शतक हैं जो बौद्ध तथा जैन धर्मों के सिद्धान्तो से प्रभावित हैं। कुछ आलोचको का विश्वास है कि बौद्ध तथा जैन वाड्मय प्राकृत मे उपलब्ध हैं, उसमे शतक भी मिलते हैं। शतको की यह परम्परा शैवों ने आन्ध्र मे प्रारम्भ की । इसलिए आन्ध्र-वाड्मय के प्रारंभिक शतक शैव धर्म को प्रतिपादित करने वाले हैं। पहले इन शतकों का लक्ष्य भक्ति था, परन्तु कालक्रम से उनकी वस्तु शृगार, नीति तथा दर्शन प्रधान बन गयी । शतक-रचना के द्वारा कवि अपने इष्टदेव को सतुष्ट करके कार्य-सिद्धि प्राप्त करते थे । सातवी सदी ईस्वी के मयूर कवि ने 'सूर्यशतक' की रचना करके कुष्ठ से मुक्ति पायी थी। १८ वी सदी के गोगुलपाटि कूर्मनाथ कवि ने 'सिंहाद्रिनारसिंह शतक' की रचना करके आश्रयदाता के शत्रुओ को भगाया था । इस शतक के द्वारा कवि ने सिंहाचल क्षेत्र के गौरव तथा अपनी कविता की सार्थकता प्रकट की थी ।

किसी उत्कृष्ट काव्य-रचना से पहले अभ्यास के लिए या अपने जीवन मे किये गये पापो के पश्चाताप के रूप मे कवि जन प्राय शतक-रचना करते थे । अपने ग्राम मे प्रतिष्ठित किसी देवी-देवता की स्तुति शतक रूप में करके कवि अपनी कविता को सार्थक करते थे। इस तरह शतक-रचना के द्वारा आत्मानन्द की अपेक्षा पुरुषार्थ प्राप्त किया जाता था। चूँकि पुरुषार्थ का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है, इसलिए शतक रचना का प्रयोजन मोक्ष प्राप्ति था। धर्म, अर्थ और काम को प्राप्त करने के लिए प्रबन्ध रचना की जाती थी, लेकिन मोक्ष की प्राप्ति शतक-रचना के द्वारा हो सकती थी, ऐसा कवि गण मानते थे । इसलिए शतकों के द्वारा भक्ति, ज्ञान और वैराग्य आदि परमार्थों का बोध होने की सभावना होती थी और शतक वाड्मय आन्ध्र भारती के अपूर्व आभूषण के रूप मे स्वीकृत हुआ था । ये शतक पडित, पामर, बालक और बालिकाओ के पठनीय समझे जाते हैं।

आन्ध्र वाङमय मे शतक-रचना विधान के लिए एक विशिष्ट स्थान है। यद्यपि इसका आधार संस्कृत तथा प्राकृत साहित्य है, फिर भी अपने अलग अस्तित्व के कारण इसे आन्ध्र साहित्य मे अपूर्व आदर मिला। आन्ध्र शतक-रचना विधान ही एक स्वतन्त्र प्रक्रिया है।

शतक मुक्तक काव्य हैं, जो भगवान की स्तुति करने के लिए लिखे जाते है। साधारणतया शतक के पद्यों की सख्या सौ होती है। इसीलिए उनका यह नाम पडा। शतक के सभी पद्यो के अन्तिम पाद मे एक ही मकुट होता है। कवि अपने शतक मे भक्ति, पश्चात्ताप आदि भावो को अभिव्यक्त करता है। आन्ध्र वाङमय के जितने शतक मिलते हैं उन सब के विषय को ध्यान से देखने पर दृष्टिगोचर होता है कि कतिपय शतक नीति का प्रतिपादन करते है तो कुछ शतक कथाओ से सम्बन्धित हैं। इस वाङमय के अन्तर्गत एक हजार शतको का पता अब तक चला है लेकिन प्रकाश मे आये हुए शतकों की सख्या केवल ६०० तक ही सीमित है। इन सब शतको को पाँच वर्गों म विभाजित कर सकते हैं, नीति, भक्ति, व्याजस्तुति, तत्व और सामाजिक। यह विभाजन कथ्य वस्तु के आधार पर किया गया है। पुन हर एक शतक की कथा वस्तु को दृष्टि मे रख कर उसका विभाजन सात भागो म कर सकते है —

"(१) आदि दशक (२) अवतार दशक (३) दिव्य रूप दशक (४) नाम दशक (५) कृष्णावतार दशक (६) ज्ञान विंशति तथा (७) मोक्ष विंशति। इस प्रकार शतक का विभाजन करने का आशय यह है कि इस काव्य का प्रारम्भ भगवान के अवतारो के वर्णन से प्रारम्भ होता है और उसका अन्त मोक्ष-प्राप्ति की अपेक्षा के साथ किया जाता है'[१]।'

किसी भी शतक के लिए मुकुट' का होना अनिवार्य है जिसका आधार 'यति' और 'प्रास' है। सभी पद्यो का मुकुट' एक ही होने के कारण शतक के सभी पद्य एक छन्द म लिखे जाते है। अब तक प्रकाशित शतका के छन्द-विधान को देखने पर विदित होता है कि कि नीतिशतक 'कद छन्द मे, भक्ति-शतक संस्कृत-वृत्तो मे और शृंगार हास्य शतक सीस छन्द मे लिखे गये है।

प्राप्त शतको मे शृंगार और भक्ति शतक ही सब से अधिक है। इसका कारण यह है कि नव विध भक्तियो मे शृंगार का भी स्थान है,

---

१ स्व काशीनाथुनि नागेश्वरराव पतलु की पीढी का 'शतक कवुल चरित्रमु'

शेष शतकों मे से कुछ 'वेमना', 'आत्मलिंग,' 'अप्पालयोगी' आदि के शतक हैं जो दार्शनिक सिद्धान्तों से ओतप्रोत हैं। सन्यासियो मे इनका अधिक प्रचार है, क्योंकि अद्वैत-मत का प्रचार करने में ये अति समर्थ होते हैं। बचे हुए शतक नीति तथा हास्य से सम्बन्धित हैं। नीतिशतकों में 'राजनीति,' 'सेवकनीति', 'लोकनीति' और 'बालक-बालिका नीति' से संबधित पद्य रहते हैं। यहाँ कतिपय उदाहरण देना उचित होगा।

राजनीति — "मन्त्रियुक्त राज्य
तन से भला बनता।
मन्त्री न हो तो 'सुमति'।
कील्हीन यन्त्र न चलता[1] ॥"

लोक नीति —"जड का कीट नाशक वृक्ष का
घुन का कीट भी नाशक उसका।
कुजन करता नाश सज्जन का
विश्वदाभिराम सुन रे 'वेमा'[2] ॥"

बालक-बालिका नीति —"बुरा हो यदि पुत्र तो
दोष लगता पिता पर।
माता-पिता की कीर्ति को
बचा देता है 'कुमार'[3] ॥"

इन शतकों में से कुछ शतक संस्कृत के अनुसरण पर लिखे गये हैं। उदाहरण के लिए 'बद्देना' के 'सुमति शतक' को ले सकते हैं। कहा जाता है कि वह काकतीय प्रभु प्रताप रुद्र के संस्कृत 'नीतिसार' का अनुकरण है।

संस्कृत-भाषा मे जो शतक रचना हुई वह शृंगार रस के उद्दीपन विभाव के लिए थी, लेकिन इसके विपरीत आन्ध्र की शतक-रचना भक्ति भाव से ओतप्रोत है। कुछ संस्कृत शतकों का अनुवाद आन्ध्र कवियो ने अपनी भाषा मे किया है। भर्तृहरि के शतक त्रय का अनुवाद तेलुगु में करने वाले कवि एनुगु लक्ष्मण कवि, पुष्पगिरि तिम्मना, एलकूचि बालसरस्वती आदि थे। लेकिन लक्ष्मण कवि के अनुवाद का ही अधिक प्रचलन है[4]।

---

१ लेखक की पुस्तक 'सुमति शती' से उद्धृत। २ लेखक की पुस्तक 'वेमन शती' मे उद्धृत। ३ लेखक की पुस्तक 'कुमार शती' से उद्धृत। ४ "तेलुगु का शतक साहित्य"—श्री पि विजयराघव रेड्डी जी का निबन्ध ("दक्षिण भारत"—जुलाई, १९५९ मे प्रकाशित)।

'अमरु शतक' का अनुवाद अभी हाल ही मे गुटूर के त्रिश्चियन आर्ट्स कालेज मे सम्कृत-तेलुगु के अध्यापक श्री अवकीराजु वेंकटेश्वर शर्मा जी ने और 'मूक पचाशती' का अनुवाद तेलगाना के प्रख्यात कवि पडित मुदिगोड वीर भद्रमूर्ति जी ने बहुत सफलता से किया है। 'नृसिह शतक', 'रामकर्णामृत', 'कृष्णकर्णामृत', 'मुकुदमाला', 'महिम्न शतक', 'सूर्य शतक' आदि काव्यो का भी आन्ध्र मे अनुवाद होने के कारण आन्ध्र शतक वाड्मय की वृद्धि हुई है।

सतोष का विषय है कि कुछ आन्ध्र कवियो ने गीर्वाण वाणी मे शतक रचना की। आन्ध्र के प्रसिद्ध पडित, बहुभाषा काविद, 'हरिकथा पितामह' स्व आदिभट्ट नारायणदास जी ने 'काशी शतक' की रचना सन् १९१४ ई मे की थी जिसमे काशी का वर्णन बडी निपुणता से किया गया गया है। कहीं-कहीं हास्य के छीटे स्व भारतेंदु हरिश्चन्द्र के काशी वर्णन का स्मरण कराते है। अभी थोडे ही महीने हुए, कृष्णा जिले के चिट्टि गूडूर की श्री नरसिह सस्कृत पाठशाला के सस्थापक तथा प्रधान आचार्य श्री एस टि जि वरदाचार्युलु एम ए तेलुगु के सात प्रसिद्ध तथा प्रचलित शतकों का अनुवाद सस्कृत मे किया है और उन सब को 'आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी' ने प्रकाशित करके आन्ध्रेतर सस्कृत पण्डितो के लिए आन्ध्र शतक वाड्मय सुलभ कर दिया है। वे है—(i) दाशरथी शतक, (ii) श्री काल हस्तीश्वर शतक, (iii) श्री कृष्ण शतक, (iv) श्री नारसिह शतक, (v) सुमति शतक, (vi) भास्कर शतक और (vii) वेमना शतक।

आन्ध्र शतक वाड्मय का परिचय आन्ध्रेतर भाषा भाषिओं का विशेषत उत्तर भारत के विद्वानो और विद्यार्थियो को कराने के उद्देश्य से इन पक्तियो के लेखक न 'सुमति शतक', कुमार शतक तथा वेमना शतक' का अनुवाद हिन्दी पद्यो म किया है। सुमति शतक तथा कुमार शतक सन् १९५९ ई म छप चुके हैं।

आन्ध्र साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन कई तरह से किया गया है। किसी लेखक न कवि को प्रधानता दे कर काल विभाजन किया है तो किसी ने कवि के आश्रयदाता राजा को प्राधान्य देकर। कुछ विद्वानो ने विचार-धारा के अनुसार भी काल विभाजन किया है। इन तीनो पद्धतियो मे तीसरी पद्धति ही मरी दृष्टि मे ठीक मालूम होती है। उसके अनुसार आन्ध्र साहित्य के इतिहास का काल विभाजन इस तरह कर सकते हैं —

(i) अज्ञात-युग (सन् २८ ई पू से ले कर सन् १००० ई तक)
(ii) पुराण-युग (सन् १००१ ई से ले कर सन् १३८० तक)
(iii) काव्य-प्रबन्ध-युग (सन् १३८१ ई से ले कर सन् १६५० तक)
(iv) शतक-गेय-युग (सन् १६५१ ई से ले कर सन् १८७५ ई तक)
(v) आधुनिक युग (सन् १८७६ ई से . . ..)

यह विभाजन सम्बन्धित काल की विशेष प्रवृत्ति के अनुसार किया गया है, इसलिए यह न समझना चाहिए कि किसी एक विशेष काल मे दूसरी तरह की रचना की ही नही गयी[1]।"

यद्यपि उपर्युक्त काल विभाजन के अनुसार शतक रचना का काल ईस्वी सन् की १७ वी सदी से ठहरता है, फिर भी आन्ध्र वाड्मय मे शतकों की रचना का प्रारम्भ ईसा की १२ वीं सदी से ही पाया जाता है। तब से ले कर आज तक शतकों की परम्परा चलती आ रही है। दक्षिण की दूसरी द्राविड भाषाओं की अपेक्षा आन्ध्र वाड्मय मे ही शतको की सख्या अधिक है।

आज तक तेलुगु शतकों मे से ६०० शतक ही प्राप्त हुए हैं। इनके अन्त साक्ष्य तथा कवि जीवनियों के बहि साक्ष्य के आधार पर शतकों का विकास निम्न प्रकार है।

सब शतकों म पाल्कुरिकि सोमनाथ (१२वी सदी) का 'वृषाधिशतक' प्राचीन है। इसमे तेलुगु मुहावरो के साथ आन्ध्र प्रजा की शिवभक्ति के स्वभाव का परिचय मिलता है। यथावाक्कुल अन्नमय्या (१३वी सदी) का 'सर्वेश्वर शतक' भी इसी कोटि का है जो बाद मे आने वाले शतक-कवियो के लिए आदर्श बन गया। चौदहवी सदी मे राविपाटि त्रिपुरातक ने 'अम्बिका-शतक' की रचना की। शतक के नाम से ही स्पष्ट होता है कि यह रचना भी शैव-सम्प्रदाय से सबधित है। १२वी और १५वीं सदियो के बीच मे जो शतक लिखे गये उनमे 'सुमति शतक' और 'भास्कर शतक' अत्यन्त मुख्य हैं।

" 'सुमति शतक' नीति की निधि है। इसके पद्य अकारादि क्रम से रखे गये हैं। इसकी भाषा व शैली मृदु मधुर है। इसमे लोकानुभव, बधु मित्र, राजा, मन्त्री, रसिक जन आदि के सबध म बहुत-सी बातें कही गयी हैं। इस शतक को छोटे और बडे सभी लोग बडे चाव से पढते हैं। इसका पठन-पाठन

१ 'आन्ध्र वाड्मय की एक झाँकी"—१९५९ मार्च के "दक्षिण भारत" मे प्रकाशित मेरा निबन्ध।

आन्ध्र प्रान्त में करीब ६०० सौ वर्ष से होता आ रहा है। इस शतक कर्ता के और उसके काल के संबंध में इतने मतभेद हैं कि अब तक निश्चित रूप से कोई पंडित नहीं कह सकता कि इसके लेखक कौन थे। इस ओर अब तक जो शोध-कार्य हुआ उसका फल यह निकला कि सुमति शतक के कवि बद्देभूपति (बद्देना) थे जो ईसा की १२वीं शताब्दी में विद्यमान थे[1]।"

'भास्कर शतक' के कर्ता के नाम, धाम और काल के संबंध में अनेक मतभेद हैं। आन्ध्र शतक-वाङ्मय के विषय में विशेष श्रद्धा रख कर अपने अथक शोध-कार्य के द्वारा 'वेमना' आदि के शतकों को प्रकाश में लाने वाले प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् श्री सी पी ब्राउन ने मारन वेंकय्या को इस शतक का कर्ता माना जो संभवत १५वीं सदी में वर्तमान थे। स्व० श्री वगूरि सुब्बाराव पंतुलु जी ने इस कवि का नाम जनश्रुतियों के आधार पर मारय कवि माना। चाहे जो हो, इस शतक का प्रचार प्राचीन काल से होता आ रहा है। भर्तृहरि के नीतिशतक की भाँति भास्कर शतक भी सुभाषितों की खान है।

१६वीं सदी में वैष्णवमत का अधिक प्रचार हो रहा था, उस धर्म के प्रचार के लिए जो शतक लिखे गये वे अगणित हैं। भक्ति-शतकों के अतिरिक्त हास्य और निन्दा शतकों की प्रधानता भी इस शताब्दी के अन्तिम पाद में तथा १७वीं सदी के प्रथम पाद में पायी जाती है। इन शताब्दियों में लिखे गये 'रघुवीर शतक', 'देवकीनंदन शतक' 'मधुसूदन शतक', 'बालगोपाल शतक' आदि वैष्णव मत-प्रचार से संबंधित हैं, 'वेणुगोपाल शतक', 'चन्द्रशेखर शतक', 'कुक्कुटेश्वरशतक', 'रामलिंग शतक' और 'कविचौडप्प शतक' निन्दा और हास्य प्रधान हैं जो उसी काल के थे। शतक-रचना विधान में पराकाष्ठा को प्राप्त शतक महाकवि धूर्जटि का श्रीकाल हस्तीश्वर शतक' है जिसमें भक्ति मूर्तिवत हो गयी है। यौवन में किये गये दोषों के लिए पश्चिमे-वयसि अपने इष्टदेव से क्षमा याचना किये जाने वाले शतकों के लिए यह उत्तम उदाहरण है। इसका एक पद सुनिए —

> कायलगासे वधूनखाग्रमुलचे गायबु, वक्षोजमुल
> रायन् रापडे रोम्मु, मन्मथ विहार क्लेश विभ्रांतिचे
> बायवायेनु वट्टु कट्टेदल, चेप्पन् रोत, ससारमे
> जेयजाल, विरक्तु जेयगदवे, श्रीकाल हस्तीश्वरा ॥"

---

१ लेखक की पुस्तक 'सुमतिशतीं' से उद्धृत (दे परिचय)

"हे श्री काल्हस्तीश्वर, वधू नखाग्रों से मेरा शरीर घायल हुआ है, वक्षोजों के रगडने से मेरी छाती घिस गयी है, कामदेव की क्रीडाओं से भ्रांति में अपने जीवन का दुरुपयोग करता रहा; अपनी दशा कह नहीं सकता। गृहस्थ-जीवन अब नहीं बिताया जाता। (इन सांसारिक प्रलोभनों से) मुझे विरक्त बनाओ न[1] ?"

१७वी सदी मे शतक-रचना की अत्यन्त वृद्धि हुई। कूचिमंचि तिम्म-कवि का 'कुक्कुटेश्वर शतक', कासुल पुरुषोत्तम कवि का 'आन्ध्रनायक शतक', मद्रादि के 'भक्त रामदास'-कंचर्ल गोपन्ना-का 'दाशरथी शतक', अडिदमु सूर-कवि का 'रामलिंगेश शतक' आदि इस शताब्दी के भक्ति शतक हैं। भर्तृहरि के सुभाषितों का तेलुगु में अनुवाद करने वाले एलकूचि बाल्सरस्वती आदि कवि भी इसी युग में उत्पन्न हुए। भक्तिशतकों में ये दोनों शतक—श्रीकाल-हस्तीश्वर शतक और दाशरथी शतक श्रेष्ठ हैं। 'दाशरथी शतक', 'दाशरथी करुणापयोनिधि' के मुकुट से सुशोभित हैं। कवि ने आत्मवेदना को इस शतक-रचना में उंडेल दिया है। इसमें ज्ञान और वैराग्य की धाराएँ भक्ति धारा में मिलती हैं। इस शतक को 'भावगीत' कहें तो अयुक्ति नहीं है। उदाहरण के लिए एक पद्य की ओर आपकी दृष्टि को आकर्षित कराना चाहता हूँ —

"मुप्पुन काल किंकरुलु मुगिट वच्चिनवेल रोगमुल
देप्परमैनचो गफमु कुत्तुक निंडिनवेल' बांधवु
ल्दप्पिन वेल मीस्मरण गल्गुनो गल्गदो नाटिकिप्पुडे
तप्पक जेतु मी भजन दाशरथी करुणापयोनिधी ॥'

"हे दाशरथे, करुणा के वारिधे, जब मृत्यु आसन्न होगी, यम भट आ धमकेंगे, रोगों का सन्निपात होगा, कफ गले मे अटकेगा और भाई-बंधु आशा छोड कर चले जाएँगे, मालूम नहीं तब तुम्हारा स्मरण होगा या नहीं, इसलिए, अभी से नियम के अनुसार तुम्हारा भजन करूँगा।'

क्या यह पद्य कुलशेखर आल्वार की 'मुकुंदमाला' के निम्नांकित श्लोक की ओर हमारे ध्यान को आकर्षित नहीं करता ?

"कृष्ण त्वदीय पदपंकज पंजरान्तम
अद्यैव मे विशतु मानसराज हंसः।
प्राण प्रयाण समये कफवात पित्तैः
कण्ठावरोधन विधौ स्मरणं कुतस्ते ?"

---

१ श्री पी विजयराघवरेड्डी जी के निबन्ध के आधार पर।

पेद्दापुर सस्थान के अधीश्वर श्री बलभद्र जगपतिराजू तथा रामजगपति राजू केवल राजा ही नहीं थे, कवीश्वर भी थे। उन्होंने क्रम से 'राम' और 'भद्राद्रिराम' शतकों की रचना की थी। ताल्लपाक अन्नमाचार्य आदि भक्तों के शतक भी इसी काल मे रचे गये।

१८वी सदी मे मदिना सुभद्रम्यम्मा नामक कवमित्री ने पाँच या छह शतकों की, मडपाक पार्वतीश्वर शास्त्री ने ३४ शतकों की और अमला पुरपु सन्यासी नामक एक कुम्हार ने एक सौ शतकों की रचना की थी।

प मुब्बाराव पतुलु का कथन है कि १९वी सदी मे हजारो शतकों की रचना हुई थी। उनमे तीन सौ शतकों की पाडुलिपियाँ मिल चुकी हैं और तीन सौ शतक छप गये हैं। इस शताब्दी में शतक-कर्ताओ मे प्रमुख व्यक्ति योगी वेमना थे जिन्होंने 'विश्वदाभिराम विनुर वेमा' मुकुट से 'आटवेलदि' छन्द में हजारो पद्य लिखे।

वेमना के जीवन-काल के सम्बन्ध मे अनेक मतभेद हैं। श्री सी पी ब्राउन महाशय ने वेमना को ईसा की १७वी सदी का बताया है। 'शतक-वाङ्मय-सर्वस्व' भी ऐसा ही मानता है। श्री कैंपबेल ने वेमना को १६वीं सदी मे रखा है। प सुब्बाराव पतुलु आदि आलोचकों ने वेमना का काल १५वी सदी स्थिर किया है[1]। 'कविल वेदी' ने वेमना के समय को १७वी सदी माना है। विज्ञान सर्वस्वकारो ने उन्हे १९वी सदी का बताया है[2]। सबसे अर्वाचीन शोध होने के कारण मैंने इस पुस्तक के आधार पर वेमना को अपने युग के समीपवर्ती काल मे ठहराया है।

अपने पद्यो मे वेमना ने अपने समय के दुराचारो का खडन किया है, अधविश्वासो की हँसी उडायी है और गुरुघटाओ पर तीखे व्यग्य कसे हैं। यद्यपि कहीं-कहीं व्याकरण-सम्बन्धी त्रुटियाँ हैं, फिर भी उनकी कविता दार्शनिक है और कठिन से कठिन दार्शनिक सिद्धान्तो को उन्होने अपने छोटे छोटे पद्यो के द्वारा व्यक्त किया है। इनके पद्यो की भाषा सुलभ, मुहावरेदार, प्रवाहयुक्त और हृदय पर चोट करने वाली है। साथ ही मनोहर भी। वेमना की तुलना हम हिन्दी के कबीरदास से करते है।

---

१ दे० 'आन्ध्र-कवि-सप्तशती"—ले० बुलुसु वेंकटरमणय्या, पृ २६१

२ दे० "विज्ञान सवस्व' Vol–VI (विश्वसाहिति)–तेलुगु सारस्वत चरित्र (पृ ३८२), प्रकाशक –तेलुगु भाषा समिति।

"वेमना के पद्यों की शैली इतनी सुलभ है कि तेलुगु बोलने या समझने वाला छोटा बालक भी उनके पद्यों का भाव बिना किसी की सहायता के समझ जाता है। कम शब्दों में गंभीर भाव को भर देना वेमना की विशेषता है। वेमना के पद्यों को प्रमुख स्थान मिलने का कारण उनकी सूक्ष्म दृष्टि है। उन्होंने समय-समय पर जो पद्य कहे, उनकी संख्या ५००० से अधिक होगी, लेकिन आज तक केवल ३०० पद्य ही मिल सके हैं। जब जो भाव मन में आया तब उस भाव को किसी न किसी छन्द में वेमना ने व्यक्त कर दिया। अधिकांश पद्य 'आटवेलदि' छन्द में कहे गये हैं। इस कविता का मूल तत्व जानने वाले पंडितों में प्रथम पाश्चात्य विद्वान् ब्राउन थे, उन्होंने वेमना के पद्यों का अंग्रेजी में अनुवाद करके उनको प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया[1]।"

इसी शताब्दी के सैकड़ों शतक-लेखक हैं जिनमें से वड्डादि सुब्बाराय कवि (१८५४-१९३८) है जो 'वसुराय कवि' के नाम से प्रख्यात हुए। उन्होंने 'भक्त चिंतामणि', 'आर्तरक्षामणि' और 'नंदनंदन' शतकों की रचना की जिनमें से 'भक्तचिंतामणि' शतक के कुछ पद्य आन्ध्र के आबालवृद्ध अवश्य कंठस्थ करते है। एक उदाहरण—

> "तन देशबु स्वभाष नैजमतमा म प्राक्कुलाचारमुल्
> तन देहात्मल नेतेरगन सदा तानट्लु भाविंचि तद्–
> घनता व्याप्ति कि साधनबुलगुसत्कार्यंबुलन् सल्पगा–
> ननुवौ बुद्धि योसगु नी प्रजकु देवा भक्तचिंतामणी ॥"

हे भक्त चिंतामणे, अपने देश, भाषा मत, आचार, देह, आत्मा आदि जैसी कहते है वैसा आचरण करके उनकी श्रेष्ठता की व्याप्ति के लिए तथा आवश्यक सत्कार्य करने के लिए अपनी प्रजा को सद्बुद्धि दो।)

'कुमार शतक' के कवि फक्कि अप्पल नरसु इसी सदी के थे। बालकों को नीति-बोध कराने के लिए उन्होंने इस शतक की रचना १८६० ई में की थी। वे संस्कृत तथा आन्ध्र भाषा के बड़े पंडित थे। प्रमुख गेय कवि स्व० आदिभट्ट नारायणदास के 'काशीशतक' का परिचय ऊपर दिया जा चुका है। उनके अन्य शतक हैं—राम शतक, शिव शतक, मुकुंद शतक, मृत्युंजय शतक, सूर्यनारायण शतक आदि। आन्ध्र के प्रमुख कवि श्री विश्वनाथ सत्यनारायण जी ने 'विश्वेश्वर शतक' लिख कर शंकर की भक्ति का सांगोपांग विवेचन किया है। 'मा स्वामि' शीर्षक से यह शतक बहु प्रसिद्ध हुआ है। व्यावहारिक

१ लेखक की पुस्तक 'वेमनशती' से

भाषा मे डा० गिडुगुवेंकट सीतापति जी ने 'भारती' मुकुट से एक शतक रचना की है जो सर्वथा नवीन है।

बीसवीं सदी मे अनेक आधुनिक कवियों ने सैकड़ो शतको की रचना की है। अभी बहुत से उत्साही साहित्यिक व्यक्ति शतक रचना कर रहे हैं। मेरे मित्र 'विद्वान्' श्री मद्दल्लि आदिनारायण एम ए ने मल्लकोलट्टन स्थित, शिवगगा-क्षेत्र की अधिष्ठात्री तथा प्रस्तुत आन्ध्र शासन के स्वास्थ्य मत्री राजा श्री श्रीराजु शिवगमप्रसाद की कुलदेवी शिवगगा के स्तोत्र के रूप मे सन् १९४८ ई मे 'शिवगगा' शीर्षक मे एक शतक की रचना की। इस शतक के सभी पद्यो का मुकुट एक नही है, इसलिए शतक एक वृत्तात्मक भी नही हैं, फिर भी हरेक पद्य रस से भरा हुआ और ललित पदो से समन्वित है। इस शतक के पद्यो मे प्रयुक्त शब्दालकार और इसकी शैली पोतना की भागवत के पद्यो का स्मरण कराती है। कुछ पद्य प्राचीन भारतवर्ष की प्रशस्ति तथा प्रस्तुत भारत की दीनता को सूचित करते हैं। देवी भक्तो के लिए यह शतक बहुत प्रिय है। उदाहरण के लिए एक पद्य देखिए—

> नीवे तल्लिवि नेनु बिड्डन तल्ली नन्नु लालिंतुवो
> नीवे देविवि नेनु सेवकुड देवी नन्नु मन्निंतुवो
> नीवे सर्वमु नेनु त्वन्मयुड वाणी नन्नु लोगोदुवो
> रावे ग्रोयवे आत्म तत्रि कडु नार्द्रंबटये सर्वेश्वरी'[1]

(हे सर्वेश्वरी, तू ही माँ है, मैं पुत्र हूँ, क्या तू मेरा लालन पालन नही करेगी ? तू देवी है, मैं सेवक हूँ, क्या तू मुझे क्षमा नही करेगी ? तू सर्वस्व है, मे तुझ मे लीन हूँ, क्या तू मुझे अपने वश कर लेगी ? मेरी आत्मा की वीणा आर्द्र है, शीघ्र आ कर उसे वजा दे।)

ऊपर कहा गया है कि कुछ आन्ध्र कवियो ने सस्कृत मे शतक रचना की थी। इस शताब्दी मे सस्कृत भाषा मे मौलिक काव्य रचना करने वाले पडितो मे 'आपविद्याभूषण' श्री जटावल्लभुल पुरुषोत्तम जी, एम ए प्रमुख हैं जिन्होंने सन् १९५७ ई मे चित्रशतकम्' की रचना की। इस सतक के विषय मे आन्ध्र विश्वविद्यालय के नूक्लियर फिजिक्स विभाग के अध्यक्ष डा० स्वामी ज्ञानानद ने यह मत प्रकट किया है —

---

1 A review broadcast from the A I R , Vijayawada on 25 th June 1950

"...The work deals with topics of varied interast embodying therein many ennobling and inspiring ideas The style of the original as well as of the Telugu poetic rendering is extremely lucid and excellent .." इस शतक के विभाग दस दशको मे किये गये हैं—(i) गीर्वाणवाणी (ii) भारत विभूति, (iii) आर्षविद्या, (iv) अस्मदुत्तमर्ण, (v) वैराग्यम्, (vi) जीवित कला, (vii) कुटुम्बम्, (viii) समाज समीक्षा, (ix) ईश्वराराधानम्, (x) चित्रलोक'।

'मूक पचाशती' का तेलुगु मे अनुवाद करने वाले तेलगाना के प्रमुख कवि श्री मुदिगोड वीरभद्र मूर्ति जो ने एक शतक की मौलिक रचना की। वह है 'श्री गिरि मल्लिकार्जुन शतक'। इसकी शैली प्रसादयुक्त और मनोहर है। भद्राचलम् तालुका के रुद्रकोट ग्राम के निवासी श्री यामुजाल वेंकट शास्त्री जी ने बडी दीनता के साथ सन् १९६० ई मे 'चिन्मय शतक' की रचना की। पडितो ने इस शतक की भूरि-भूरि प्रशसा की है। सन् १९६१ ई मे मद्रास के श्री यामिजाल पद्मनाभ स्वामी जी ने मयूर के 'सूर्य शतक' का तेलुगु मे अनुवाद किया है।

अधुनातन शतक रचनाओ मे देश, काल तथा समाजगत परिस्थितियो का वर्णन पाया जाता है। उन मे शिष्ट हास्य का प्रयोग हुआ है। ऐसे शतको मे 'आन्ध्र ज्योति' के सपादक श्री नार्ल वेंकटेश्वरराव जी का एक शतक है जो 'वास्तवम्मु नार्लवारि माट' (नार्ल जी की बात सच्ची है) के मुकुट से लिखा गया है। सन् १९५१ ई मे कृष्णा ज़िला गुडिवाडा के निवासी श्री काकालि नरसिंहराव जी ने 'वत्सा' मुकुट से 'बाल प्रबोध' शीर्षक शतक की रचना की थी, जिसमे शताधिक पद्य हैं। दैव, देश, गुरु, बडो के प्रति गौरव, सत्य, शौच, सदाचार आदि गुणो का प्रचार बच्चो मे करने के लिए उन्होने यह शतक लिखा है। इसके पहले उन्होंने दो भक्ति शतको की रचना की थी—'श्रीहरि' शतक और 'भक्त सरक्षक' शतक।

आन्ध्र शतक वाङ्मय के विकास पर ध्यान देकर देखने से विदित होता है कि ईसवी १२ वी शती से ले कर आज तक शतको की रचनाएँ जारी है। प्रो निडदवोले वेंकटराव जी का मत है कि आन्ध्र-शतक रचना एक स्वतत्र विधा है, फिर भी "त्रैलोक्य चूडामणि" आदि कन्नड शतक रचनाएँ आन्ध्र शतक-रचना के लिए आदर्श मानी गई थी। तमिल साहित्य के प्रसिद्ध ग्रन्थ

'कुरल' के रचयिता तिरुवल्लुवार, तेलुगु साहित्य के योगी वेमना और कन्नड़ साहित्य के सर्वज्ञ जिन्होंने 'त्रिपादी' छन्द में अपने लोकानुभव का वर्णन किया, एक श्रेणी के कवि हैं।

शतको को भावगीत (Lyrics) के रूप में मानने में मत भेद है। स्व. कपूरि जी का कहना है कि शतक भावगीत है। क्योंकि कवि अपने हृदय के उद्‌गारो की अभिव्यक्ति शतको के द्वारा करता है। "रागात्मक अनुभूति जो वैयक्तिक हो कर भी साधारणीकरण द्वारा सार्वभौम और सार्वजनीन बन जाती है, गीति काव्य की जननी है'[1]।" इसके अतिरिक्त शतक मुक्तक हैं। इन कारणो से विद्वान अलोचक ने शतकों को भावगीत कहा है। पाश्चात्य अलोचको के अनुसार "A Lyric is a comparatively short poem expressing a single emotion a poem in which the poet is principally occupied with himself, concerned with his own experiences and feelings"[2]

अन्त मे निवेदन है कि इस छोटे से निबन्ध में कई विशेष बातो को छोड देना पडा है। अब तक प्राप्त होने वाले ६०० दानवो का विषय विवरण महित देना यहाँ असभव है। एक एक कवि के विषय मे एक-एक ग्रन्थ लिखा जा सकता है। जब तक हमारे वाङ्मय की हरेक शाखा का परिचय हिन्दी-माध्यम द्वारा न दिया जाए, आन्ध्रेतर भाषा-भाषियो को इस विधा का पूरा परिचय नहीं मिल सकता। यह एक गुरुतर कार्य है, जिसे एक–दो व्यक्ति सपन्न नही कर सकते। इस युग मे प्रजा-सस्थाएँ ही इस तरह के कार्यो को पूरा कर सकती हैं। आशा करता हूँ कि इस निबन्ध के द्वारा मोटे तौर पर आन्ध्र-शतक-वाङ्मय का परिचय आन्ध्रेतरो को थोडा बहुत हो सकेगा।

"प्रजकुन स्वस्ति महीपतुल् वसुमतिन् बालिचुतन् न्याय्यतन्
द्रिजगबुन् भजयिंचुगात सुखमी देशबमक्षोभमौ
द्विज गौसततिकी शुभबनुचु दीविंचार्युलिप्रोद्दुद
त्सुजनाशीस्सुल मोघमुल् सल्पु देवा भक्त चितामणी ॥

"हे देव, भक्त चितामणे, प्रजा का मगल हो। राजा लोग भूमि का पालन ठीक तरह से करें, तीनो लोको की सेवा हो, यह देश बिना किसी क्षोभ के सुखी बने। द्विजो तथा गायो की सतति का कल्याण हो, ऐसा सदा आर्य-गण आशीर्वाद दें—सज्जनो के इस आशीर्वाद को सफल बनाओ।"

तेलुगु में प्रयुक्त अरबी, फारसी तथा हिन्दी के शब्द : भाषा वैज्ञानिक अध्ययन

श्री हनुमत् शास्त्री अयाचित

तेलुगु भाषा मे अन्य भाषा शब्दो को आत्मसात् करने की अद्भुत क्षमता है। मूलत द्राविड भाषा परिवार की होते हुए भी, तेलुगु भाषा ने सदियो पहले सस्कृत-प्राकृत आदि भाषाओ के शब्दो को सहस्रो की सख्या मे अपना लिया। आज की स्थिति यह है कि सस्कृत के तत्सम शब्दो एव तद्भव शब्दो का भरपूर प्रयोग किये बिना, तेलुगु भाषा अपने विचारो की अभिव्यक्ति सफलतापूर्वक नही कर पाती। तेलुगु ने अपने उदार दृष्टिकोण को केवल सस्कृत, प्राकृत एव अपभ्रश तक ही सीमित नही रखा, मध्ययुग मे हिन्दी, मराठी जैसी भारतीय भाषाओ से ही नही बल्कि अरबी, फारसी, तुर्की आदि विदेशी भाषाओ से भी निस्सकोच भाव से शब्दो को ग्रहण करने लगी। तेलुगु की यह प्रवृत्ति आधुनिक युग मे भी जारी है। फलत बहुत से अग्रेज़ी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओ के शब्द भी आन्ध्र की जनवाणी मे खप गये है। केवल वाणी और व्यवहार मे ही नही, ये शब्द अधिक मात्रा मे, और कभी-कभी एव कही-कही, अनुचित मात्रा मे भी, आधुनिक लेखको के द्वारा अपने काव्यो, कहानियो और उपन्यासो मे भी प्रयुक्त होते जा रहे हैं। निष्कर्ष यह है कि अन्य भाषाओ के शब्दो को ग्रहण करने की प्रवृत्ति तेलुगु मे अद्यावधि बनी हुई है और भविष्य मे भी बनी रहेगी।

तेलुगु भाषियो की इस मनोवृत्ति के पीछे कई कारण रहे हैं। जैसे – १ मनोवैज्ञानिक, २ भौगोलिक, ३ ऐतिहासिक, ४ धार्मिक आदि आदि।

मनोवैज्ञानिक कारणो का मूल तत्त्व एक ही है। नवीन वस्तु, नवीन विचार, नवीन धारणा, नवीन शब्द यहाँ तक कि नवीनता के नाम पर जो भी आये, उसका स्वागत करने की उदार चेतना। नवीनता के प्रति तेलुगु भाषा-भाषियो की यह उत्सुकता अथवा मोह किसी-किसी दिशा मे अनुचित सीमा

तक पहुँच जाती थी, इसीलिए एक कहावत भी चल पड़ी है, "पोरगिटि पुल्ल-कूर रुचि"। इससे मिलती-जुलती कहावत अथवा लोकोक्ति हिन्दी मे है—"घर की खाड किरकिरी लागे, चोरी का गुड मीठा"। इस चेतनागत मनोवैज्ञानिक मूल कारण के अतिरिक्त भौगोलिक, ऐतिहासिक और धार्मिक कारण भी नयेपन के मोह के पीछे कम महत्त्वपूर्ण नही है। आन्ध्रप्रदेश की भौगोलिक स्थिति इसका प्रमुख कारण है। उत्तर दक्षिण के बीच अवस्थित यह भूखण्ड दोनो का सगम स्थल है। यह भूखण्ड शतियो से कई सभ्यताओ, संस्कृतियो तथा धर्मों का सघर्ष-क्षेत्र और सगमस्थल रहा है। प्राचीन युग मे यह भूखण्ड वैदिक एव बौद्ध धर्म-सबधी विवादो का साक्षी रहा। यह प्रदेश प्राचीनोत्तर तथा मध्ययुग के आरम्भ मे शैव-वैष्णव आदि धर्मों का सघर्ष देख चुका था। यहाँ की जनता ने इन सबके फलस्वरूप और समन्वित रूप मे आचार्य शकर के अद्वैतवाद को अपनाया है और आज भी इस प्रदेश की अधिकाश जनता की धार्मिक भावना इसी से अनुप्राणित है। साहित्यिक क्षेत्र मे यही अद्वैत भावना महामनीषी एव महान् साहित्यिक विभूति कविब्रह्म तिक्कना के हरिहरनाथात्मक तत्त्व मे प्रस्फुटित हुई थी। कालातर मे इस भूखण्ड ने आचार्य शकर के अद्वैतवाद को आगे बढाने वाले, महान् तपस्वी और दार्शनिक, स्वामी विद्यारण्य को उपहार रूप मे भारत की दार्शनिक मनीषा को विश्व भर मे फिर एक बार देदीप्यमान बनाने के हेतु, भारतमाता के चरणो मे समर्पित किया था। सभी प्रभावो की सम्यक् रूपरेखा खडी करने के लिए इस छोटे से निबध मे न पर्याप्त अवकाश है न इसकी आवश्यकता। अब मध्ययुग की बात सुनिए। अल्लाउद्दीन खिल्जी के शासन काल मे सिपहसालार मलिक काफूर की मातहती मे जिस दिन वरगल पर हमला हुआ था, उस दिन राजनैतिक एव ऐतिहासिक धरातल पर तेलुगु प्रदेश पहली बार इस्लामी सस्कृति के सपर्क एव सघर्ष मे आया था।[1] कालातर मे मुसलमानो के हमले बढते गये। बहमनी सल्तनत के कायम होने के बाद तो तेलुगु प्रदेश के स्थानीय राजाओ तथा मुसलमान बादशाहो म निरन्तर सघर्ष चलता रहा।

---

१ इतिहासविदो के अनुसार इन दिनो वरगल पर तीन बार हमले हुए। सन १३०३ मे पहली बार, सन् १३१० मे दूसरी बार तथा सन् १३२१ में दिल्ली पर गयासुद्दीन तुगलक के शासन काल में तीसरी बार। पहले हमले का कोई विशेष प्रभाव नही दिखायी देता। आन्ध्र विज्ञान सर्वस्वमु, तृतीय भाग, पृ २३३।

बहमनी सल्तनत का शासन सन् १३४७ से १५२७ तक रहा। इनके राजत्व मे बाहरी मुल्को से भी, विशेषकर अरब, ईरान, तुर्किस्तान आदि से कई मुसलमान परिवार आ बसे। इधर स्वदेश मे भी कई हिन्दू इस्लाम धर्म मे दीक्षित हुए थे। कहने की आवश्यकता नही है कि उत्तर भारत से कई हिन्दू परिवार भी समय-समय पर आ बसे। स्वदेशी मुसलमान और हिन्दू अपना कामकाज हिन्दवी अथवा हिन्दी के द्वारा करते थे। बाहरी मुल्कों से आये हुए मुसलमान अरबी और फारसी का सहारा लेते थे। बहमनी सल्तनत के बादशाहो मे कई हिन्दू एव मुस्लिम सस्कृतियो के समन्वित रूप की साधना करते थे। इनम फीरोजशाह प्रथम (१३९७ से १४२२) उल्लेखनीय हैं। "फ़ीरोज़ बहमनी ने अरबी-ईरानी सस्कृति से हट कर दक्खिनी मुसल्मानो, उत्तर भारत से आये हिन्दुओं और स्थानीय जनता का सहयोग प्राप्त किया और उनकी सस्कृति मे अधिक रुचि ली। गुलबर्गा कन्नड भाषी क्षेत्र मे पडता था। यहाँ की जन-सस्कृति का उसने आदर किया। कर्णाटकी ब्राह्मणो को ऊँचे पद दिये। नरसिंह नामक ब्राह्मण बहमनी वश का गुरु बना और विजयनगर की राजकन्या का विवाह फीरोज़ के साथ हुआ।'[१]

कालांतर मे स्वदेशी मुसलमान और विदेशी मुसलमानो के दो राजनैतिक दल बने। अततोगत्वा इन्ही गुटो की वजह से बहमनी सलतनत का अत भी हुआ। विदेशो से आये हुए मुसलमान आफाकी[२] कहाने लगे और स्वदेशी मुसलमान दक्खिनी। विच्छिन्न बहमनी सलतनत मे से चार शाही खानदान खडे हुए—१ बरीदशाही, २ निज़ामशाही, ३ आदिल्शाही और ४ कुतुबशाही खानदान।

इनमे गोलकुण्डा पर शासन करने वाले कुतुबशाही खानदान से तेलुगु प्रदेश का घनिष्ठ सबध था। गोलकुडा को राजधानी बना कर ये बादशाह तेलुगु प्रदेश के विस्तृत भूखण्ड पर राज करने लगे। प्रशसनीय बात यह है कि इन बादशाहो ने फीरोजशाह की सस्कृति सबधी उदार-नीति परपरा को आगे बढाया था, जिसके कारण स्थानीय साहित्य और ललितकलाओं को भी काफी सवर्धन और प्रोत्साहन मिला।

१ दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास, पृ ९।
२ वही पृ ९।

इनमें इब्राहीम कुत्वशाह[1] और मुहम्मद कुली कुत्वशाह[2] का राजत्वकाल बड़ी शान्ति एवं अमनचैन के साथ व्यतीत हुआ था। इब्राहीम कुत्वशाह की लोकप्रियता इस दर्जे की थी कि जनता की वाणी में ये इब्राहीम नहीं रहे थे परन्तु मल्किभराम बन गये। कवियों की वाणी में वे अयोध्या के राजा रामचन्द्र से भी अधिक थे। व्यतिरेक और अतिशयोक्ति का सहारा लिया गया और इनकी प्रशसा में कई प्रशस्ति छंद गाये गये। उनके पुत्र मुहम्मद कुली कुत्वशाह[3] तो गण्यमान्य कवि थे। दक्खिनी हिन्दी के रूप को सँवारने में इनका बड़ा हाथ था। इन्होंने सन् १५९१ में हैदराबाद जैसे सुन्दर और शानदार नगर का निर्माण किया था। जहाँ आज हम सभी प्रकार की संस्कृतियों का संगम, अनेक भाषाओं का सहजीवन तथा पारस्परिक आदान-प्रदान देखते हैं। इस प्रकार इस महान् उपलब्धि का सारा श्रेय इन्हीं बादशाहों को मिलना चाहिए। एक ओर दक्खिनी हिन्दी का साहित्यिक रूप जिसमें से कालान्तर में उर्दू के सर्वमान्य प्रथम कवि वली औरंगाबादी निकले, निखर रहा था और दूसरी ओर स्थानीय कलाएँ और साहित्य प्रोत्साहन पाने लगे। समन्वय वादी परंपरा बीजापुर के सुल्तानों के द्वारा भी खूब विकसित हुई। इब्राहीम आदिल शाह द्वितीय के नवरस नामक ग्रंथ में कन्नड़ के शब्दों ने यथेष्ट मात्रा में स्थान पाया है[4]। उसी प्रकार से मुहम्मद कुली कुतुबशाह की रचना में भी यत्रतत्र तेलुगु शब्द पाये जाते हैं[5]। स्थानीय साहित्य के प्रोत्साहन का परम सुन्दर और उज्ज्वल उदाहरण पोन्निकटि तेलगनार्य[6] की रम्य कृति 'ययाति चरित्रम्' है। कवि ने अपने काव्य को मलिक इब्राहीम कुत्वशाह और मुहम्मद कुली कुत्वशाह के यहाँ मीर जुमला के ओहदे पर विराजमान मुहम्मद अमीन अमीनुल् मुल्क को

---

१ इब्राहीम कुत्वशाह का राजत्वकाल १५५०–१५८० तक था।

२ मुहम्मद कुली कुत्वशाह का राजत्वकाल सन् १५८० से १६१२ तक था। ३ कहा जाता है कि मुहम्मद कुली कुत्वशाह ने तेलुगु में भी काव्य ग्रंथ लिखे, परन्तु इनमें से कोई पुस्तक अब प्राप्त नहीं है। इनकी माता तेलुगु महिला थी, अतः तेलुगु में रचना करना इनके लिए स्वाभाविक बात है। दे आ वि स विश्वसाहिति पृ ३०५। ४ दे आ वि स विश्वसाहिति पृ ३०५। ५ वही। ६ पोन्निकटि तेलगनार्य का जीवन काल किसी समालोचक के अनुसार १५१० से १५८० तक था तो किसी समालोचक के अनुसार वे १५९२ ई में भी मौजूद थे। कृपया दे आ वि स विश्वसाहिति या आन्ध्रकवि सप्तशती पृ ९१।

समर्पित किया था। जनता मे ये अमीनन्गी नाम से विश्रुत थे। तेमगनार्य की ठेठ तेलुगु की यह कृति तेलुगु प्रदेश के तेलगाने के इस पवित्र भूखण्ड पर इन मुसलमान बादशाहो के प्रोत्साहन से रची गयी। आदि से अत तक इस साहित्यिक अनुष्ठान मे तेलुगुपन का मिठास भरा हुआ है। गर्व की बात यह है कि इस माधुर्य का स्वाद लेने वाले सहृदयो मे, गोलकुण्डा के उदारचेता मुसलमान बादशाह और उमराव भी थे।

कुत्बशाही खानदान का राजत्व सन् १६८७ तक चलता रहा। अन्तिम बादशाह अबुल हसन कुत्बशाह तेलुगु के बडे प्रेमी थे। इन्होने बहुत-सी जायदाद गोदावरी नदी के किनारे पर स्थित भद्राचल के राम मन्दिर के लिए इनाम मे दी। जनता मे यह शासक तानाशाह अथवा तानीषा नाम से अधिक विश्रुत थे। तेलुगु के महान् भक्त भद्राचल रामदास की भक्तिपूर्ण जीवनी कुछ कटुता के साथ इस बादशाह से जुडी हुई है। फिर भी ये अपनी उदारता और धर्म सहिष्णुता के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। कहा जाता है कि इनके कैद होने पर न केवल मुसल्मान दु खित हुए अपितु तेलुगु कवि भी बहुत दु खित हुए थे[1]।

मैं जानता हूँ कि मैं बहुत दूर बहक गया हूँ। मगर मकसद से, जान-बूझ कर। जब हम इस समन्वयात्मक परिवेश म, और इस समरसवादी वातावरण को ध्यान मे रख कर तेलुगु मे आये हुए अनेकानेक अरबी, फारसी, हिन्दी आदि शब्दो का भाषायी विश्लेषण करते हैं, तब सचमुच इन आगत शब्दो का महत्त्व और उपादेयता हृदयगम होगे। इन शब्दो का हमारी भाषा मे प्रविष्ट होना भी स्वाभाविक लगेगा। नही तो, ऐसी आशका होगी कि ये शब्द वैसे ही हमारी भाषा मे घुस आये है और उनकी उपस्थिति अवाछनीय है। जब सुदीर्घ काल तक इस प्रकार की भाषायी एकता की साधना, आदान-प्रदान के धरातल पर चलती रही, क्या आश्चर्य है कि अरबी, फारसी, हिन्दी आदि शब्द हमारी भाषा मे सहज ही स्थान पा चुके हैं।

इन आगत अथवा गृहीत शब्दो के विषय मे राजनैतिक दृष्टि से साधारणत एक दलील प्रस्तुत की जाती है कि विजेता जाति अपनी सस्कृति एव सभ्यता के साथ, अपनी भाषा के शब्दो को भी विजित जाति के माथे पर थोप देती है। मेरे नम्र विचार मे यह अपने आप मे सामतयुगीन भावना है, जिसके पोषक-तत्व पराजित मनोवृत्ति मे मिलते है। भारत के आधुनिक लोकतत्रात्मक जीवन मे इस घृणास्पद चित्तवृत्ति को आश्रय नही मिलना

१ आ वि स विश्वसाहिति पृ ३०६

चाहिए और जनता की नित्य प्रति की वाणी मे एव मध्ययुग के कवियो की कृतियो मे प्राप्त इन गृहीत शब्दो का अध्ययन, वास्तव मे जनता और लेखको की महती भाषायी एकता की साधना के मूल्याकन के रूप मे करना चाहिए, जिससे भावात्मक तथा राष्ट्रीय एकता की सिद्धि म उपादेय पुष्टि एव तुष्टि मिल सके। इस महदाशय से प्रेरित हो कर ही मैंने तेलुगु मे प्रयुक्त अरबी, फारसी और हिन्दी के शब्दो का सर्वेक्षण आगामी पृष्ठो मे किया है। विषय विशाल और बहुत गभीर है, अत मैंने इस अवसर के लिए कुछ सीमाएँ निर्धारित कर ली हैं। मेरा यह प्रयास पूर्ण तलस्पर्शी और कूलकष है, इसका दावा मैं नही करता। मैं यहाँ जनवाणी से सम्बन्धित शब्दो पर ही विचार करना चाहता हूँ—

१ लोकवाणी मे प्रयुक्त शब्दों का अध्ययन

बोलचाल की तेलुगु मे अरबी, फारसी आदि कई भाषाओ के शब्द मिलते हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए इन शब्दा का वर्गीकरण इस प्रकार कर सकते हैं—

१ धार्मिक शब्दावली, २ सास्कृतिक शब्दावली, ३ प्रशासकीय-शब्दावलीक, ४ शैक्षणि शब्दावली, ५ नित्यप्रति व्यवहार आने वाली वस्तुओ से सम्बन्धित शब्दावली, ६ विभिन्न पेशो से सम्बन्धित शब्दावली, ७ वैज्ञानिक शब्दावली, ८ ललित कलाओ से सम्बन्धित शब्दावली तथा ९ प्रकीर्ण शब्दावली।

क धार्मिक शब्दावली

इस्लाम से सम्बन्धि पर्व-त्योहारो तथा विश्वासो से सम्बन्धित शब्दावली तेलुगु मे यथेष्ट मात्रा मे घुलमिल गयी है। उदाहरण के लिए —

तेलुगु मे तदभव रूप	तत्सम रूप	अर्थ
१ अल्ला	अल्लाह् अ	ईश्वर
तेलुगु मे प्राप्त गृहीत शब्द	**मूल**	**अर्थ**
२ ईदु[1]	ईद अ	मुसलमानो का त्योहार
३ दरगा	दरगाह फा	किसी वली का मजार।

सकेत विवरण —अ अरबी। फा फारसी। तु तुर्की। प्र प्रत्यय। वि विशेषण। क्रि वि क्रिया विशेषण। अव्य अव्यय। आ बो अ आश्चर्य बोधक अव्यय।

१ तेलुगु की लोकवाणी मे मिश्रित शब्द इदुपडुग भी पाया जाता है जिस मे अरबी और तेलुगु शब्दो की भाषायी एकता दर्शनीय है।

४. पीरु	पीर फा.	धर्म-गुरु
५. मसीदु	मस्जिद अ.	मुसलमानों का प्रार्थना-मन्दिर।
६. मोहरमु	मुहर्रम	एक मास का नाम
७. मोल्वि	मौलवी अ.	विद्वान
८. सेतानु	शैतान	शैतान

स्पष्ट है कि इन शब्दों का प्रयोग सीमित क्षेत्र में ही होता है। इन शब्दों के पीछे जो विशिष्ट धार्मिक वातावरण है, उसके कारण इन शब्दों का सार्वजनिक जीवन में अधिक प्रयोग नहीं हो सका।

ख सांस्कृतिक शब्दावली

अरबी, फारसी के शब्द एक विशिष्ट संस्कृति से सम्बन्धित हैं। धर्म और संस्कृति में विभाजक रेखा खींचना कठिन है। अतः इन शब्दों का व्यवहार क्षेत्र भी सीमित ही रह सकता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित शब्द लीजिए।

तेलुगु में प्रयुक्त सदभव रूप	तत्सम रूप	अर्थ
१. कुरानु अ.	कुरान	मुसलमानो का धार्मिक ग्रंथ
२. खुदा	खुदा फा.	ईश्वर
३. जोहारु	जोहार हि.	नमस्कार[1]
४. टपाकाय[2]	पटाका हि	पटाका, एक आतिशबाजी
५. तावीजु	तावीज़ अ	तावीज़
६. नमाजु	नमाज़ फा	नमाज
७ फकीरु	फकीर अ	भिक्षुक, मँगता, सन्यासी

---

१. तेलुगु मे जोहारु शब्द आजकल किसी आदरणीय व्यक्ति के प्रति सम्मान अथवा श्रद्धा दिखाने के अवसर पर श्रद्धाजलि के पर्याय मे प्रयोग किया जाता है। २ वर्णव्यत्यय के नियमानुसार हिन्दी का पटाका तेलुगु मे पहले टपाका बना और शब्द का दीर्घांत रहना तेलुगु भाषा की प्रकृति के विरुद्ध है, इस शब्द का चरमांश काय बना दिया गया मानो वह भी कोई अच्छा फल हो। इस प्रकार के अन्य उदाहरण भी हैं। ३ फकीरु शब्द का तेलुगु मे अर्थ-विस्तार के साथ अर्थापकर्ष भी हो चला। वैसे यह शब्द आजकल किसी भी भिखमंगे के लिए प्रयुक्त हो सकता है परन्तु निन्दार्थ मे ऐसा भी कहा जाता है कि वाडु वट्टि फकीरु सन्नासि, अर्थात् अयोग्य व्यक्ति जो किसी काम का नहीं।

८	पराकु[1]	फराग अ	सुख, आराम
९	बिक्का पकीरु	भीख फकीर हि	भिखमगा
१०	युक्का पकीरु	वही	वही
११	मताबु	महतावी फा	एक आतिशबाजी जिसे छुडाने से चाँदनी-सी छिटक जाती है।
१२	मेजुवाणी	मेजबानी फा	आतिथ्य[2]
१३	सलामु	सलाम अ	प्रणाम
१४	सुन्ती[3]	सुन्नत अ	सुन्नत
१५	हज्जु	हज अ	हज

१ पराकु शब्द की चलनशीलता ता बहुत ही सराहनीय है। तेलुगु मे यह शब्द मध्ययुगीन सस्कृति मे बहुत ही ऊँचे दरजे पर प्रयोग किया जाता था। देवी-देवताओ को और राजा महाराजाओ को जगाने अथवा सुलाने के लिए बदी मागध उनकी प्रशस्ति मे *बहुपराकु-बहुपराक* कहते थे। इस प्रकार अरब सस्कृति मे यह शब्द भारतीय सस्कृति तक सफर करके उसके साहित्य और सस्कृति का अग बन गया है। २ मेजुबानी भी बहुत ही सुन्दर शब्द है जो तेलुगु सस्कृति का एक अविभाज्य अग बन गया है। इस शब्द का तेलुगु में अर्थविस्तार हो चला है। वैसे मूल फारसी मे इसका अर्थ आतिथ्य है परन्तु तेलुगु म इसका यह अर्थ नही रह गया है। तेलुगु प्रदेश के हिंदू घरो मे कन्याओ के विवाहो मे शाम को वर और वधू की बैठक होती है। सौभाग्यवती स्त्रियाँ और गाँव के सज्जनो से परिवेष्टित हो कर वर-वधू उनकी उपस्थिति मे फलो और माला आदि से आपस मे विलास के साथ खेला करते हैं। एक ओर शहनाई की मगलध्वनि बजती है और दूसरी ओर पुण्यस्त्रियाँ प्रेम और शृगार से भरे हुए मधुरगीत गाती रहती हैं। अन्त मे वर-वधू की मगलकामना करते हुए आरती उतारी जाती है। इस सारे कार्यक्रम को मेजुवानी कहा जाता है, जिसस आम जनता भलीभाति परिचित है। इसको हम आजकल के वेड्डिग रिसेप्शन का प्रारूप मान सकते है जिसके पीछे वही आतिथ्य भाव निहित है। इस प्रकार इस शब्द का बडा व्यापक अर्थ हम तेलुगु मे पाते हैं। पराकु और मजुवानी इन दोनो शब्दो के पीछे केवल भाषायी एकता का ही नही, परन्तु भावात्मक एकता का भी सुन्दर रूप छिपा हुआ है। ३ सुन्ती— इस शब्द का लाक्षणिक प्रयाग कुछ घृणित अर्थ मे तलुगु मे चल रहा है। उदा० वानि पनि सुन्ती अयिदि—उसका काम विफल हो गया।

इन शब्दो के अध्ययन से यह पता चलता है कि इनमे धार्मिक शब्दो की कट्टरता ही नही है। कम से कम, कुछ शब्द तो अधिक व्यापक अर्थ मे, इनके पीछे उपस्थित धार्मिक वातावरण के बावजूद ,प्रयोग किये जा सकते हैं। अत ये शब्द स्वाभावत अधिकतर चलनशील है। ऊपर की तालिका मे चलनशील शब्द भाषाओ के अनुसार इस प्रकार है—

हिन्दी	अरबी	फ़ारसी
१ जोहार	१ तावीज	१ मताबु
२ टपाकाय	२ फकीरु	
३ विक्कापकीरु हि+अ	३ सुन्ती	

हिन्दी के टपाकाय तथा फारसी के मताबु दोनो तेलुगु प्रदेश के बालको और बालिकाओ के लिए दिवाली के अवसर पर अपरिहार्य वस्तुएँ बन गयी है। तेलुगु माताएँ अरबी के तावीज शब्द से भी अपरिचित नही है। मेरे विचार मे यह शब्द द्राविड भाषाओ से ही अरबी मे गया होगा। इतिहास बताता है कि अरब के बहुत-से सौदागर केरल आदि दक्षिण भारत के प्रदेशो के साथ ईसा पश्चात् प्रथम शतो मे व्यापार करने लगे। इन भाषाओ मे प्राप्त अब्बा, अम्मि भी दक्षिणी भाषाओ की देन समझना चाहिए। इस प्रकार हम देखते हैं कि सास्कृतिक शब्दावली आमतौर पर इतने सकीर्ण क्षेत्र मे प्रयुक्त नही होती। यह धार्मिक शब्दावली की अपक्षा अधिक चलनशील ,होती है और भिन्न धर्मावलबी एव भिन्न सस्कृति के लोग भी इन शब्दो म से कुछ को बिना झिझक के आवश्यकतानुसार अपनाने लगते हैं।

ग प्रशासकीय शब्दावली

वास्तव मे तेलुगु मे अरबी फारसी आदि भाषाओ के शब्द सबसे अधिक मात्रा म प्रशासकीय क्षेत्र म ही प्रयुक्त हुए हैं। जैसे पहले कहा जा चुका है, शतियो तक मुसलमान बादशाहो के राजत्व के फलस्वरूप प्रशासकीय शब्दावली का अधिक मात्रा मे प्रयुक्त होना स्वाभाविक था। इस क्षेत्र की अवातर शाखाएँ इस प्रकार है— १ फौजी शब्दावली २ आर्थिक शब्दावली, ३ कानून व अदालती शब्दावली, ४ व्यापार सबधी शब्दावली तथा ५ राजस्व विभाग की शब्दावली।

ग १ फौजी शब्दावली

तेलुगु मे प्रयुक्त तद्भव रूप	तत्सम रूप	अर्थ
१ कदकमु	खदक्	खाई

तेलुग मे प्रयुक्त तद्भव रूप गृहीत-शब्द	तत्सम रूप	अर्थ
२ कमानु	कमान फा.	धनुष
३ कवातु	कवाइद अ.	परेड
४. कसरतु	कसरत अ	व्यायाम
५. कूचि, कूची	कूच फा.	सेना का प्रस्थान
६ खिल्ला	किलाअ' अ	
	कल्अ' का ब. व.	दुर्ग
७. गस्ती, गस्तु	गश्त फा	गश्त
८. डाल	ढाल हि.[1]	ढाल
९ डेरा	डेरा हि	पडाव
१०. पवुजु, पोजु	फौज अ	सेना
११. सिपायि	सिपाही फा.	सिपाही
१२. हवलुदारु	हवल अ.+फा. दार	फौज का एक अफ़सर
१३. सरदारु	सरदार फा.	सेनानायक
	ग २. आर्थिक शब्दावली	
१. किफायतु	किफायत अ.	अल्प व्यय
२ किम्मतु	कीमत अ	दाम
३. किरायि	किरा अ	भाडा
४. खर्चु	खर्च फा	व्यय
५. चदा	चदा फा	चदा
६. टोकु	थोक हि	सामूहिक, ढेर की
७ दिवाला	दिया+बालना हि	टाट उलट देना
८. दीनारमु	दीनार फा	सोने की एक मुद्रा
९. दुबारा[2]	दुबार फा	दूसरी बार

१ सस्कृत शब्द भी माना जाता है।

२ दुबारा—तेलुगु मे इसका प्रयोग अधिकव्ययिता के अर्थ मे होता है। अत यह शब्द अर्थादेश का उदाहरण है। लावणी मे 'दुबारा खर्च' प्रयोग भी है। दरअसल पहला प्रयोग दुबारा खर्च ही है। इस हालत मे मूल अर्थ ज्यो का त्यो ठीक घटित होता है। परन्तु कालातर मे खर्च शब्द का लोप हो गया है और विशेषण दुबारा शब्द को ही अकेला पूरा अर्थ देना पडा। इस प्रकार विशेषण सज्ञा शब्द हुआ। दुबारा भी प्रचलित है।

१० बजाना, बयाना	अ बे+आना फा	अग्रिम धन
११ बटुवाड	बँटवारा हि	बाँटने की क्रिया
१२ बाकी	बाकी अ	ऋण
१३ बाकीदारु	बाकी अ +दार फा	कर्जदार
१४ बोणि	बोहनी हि	प्रथम बिक्री
१५ रायित्ति	रिआयती अ	मूल्य मे कमी
१६ लुगसानु	नुकसान अ	नष्ट
१७ षराबु	सर्राफ अ	चाँदी, सोना बेचने वाला।
१८ सादर[1]	सादिर अ	चालू खर्च
१९ हुडि[2]	हुडी हि	अर्थादेश पत्र

पैसा दमडी आदि बहुप्रचलित शब्द भी इनके साथ जोडे जा सकते है।

ग ३ क़ानूनी अदालती व कर्मचारी सम्बन्धी शब्दावली

१ अमानत्तु	अमानत अ	थाती, धरोहर
२ अमीनु	अमीन अ	अमानतदार
३ अवाल्लि	हवाल अ	सिपुर्दगी
४ उम्मारावुलु	अमीर अ	रईस
५ कैफीयतु	कैफियत अ	जवाबतलब
६ खासावाड	खासा अ	अत पुर का नौकर
७ खूनी[3]	खूनी फा	हत्यारा
८ खैदी	कैदी अ	बदी

---

१ सादर भी इसी प्रकार का उदाहरण है। २ तेलुगु मे हुडि शब्द की कहानी कुछ रोचक मालूम पडती है। तेलुगु मे हिन्दी से दो शब्द आये हुए है हुडी और हुडि। तेलुगु प्रदेश के मदिरो म यनतत्र भक्तो के द्वारा समर्पित धन इकट्ठा करने के लिए हडी रखी जाती है। हुडी शब्द का सबध भी अथ से ही तो है। अत भ्रम के कारण हडी को ही लोग हुडी कहने लगे हैं। उदा० एडु कोडलवानि हुडी लो एत डब्बु वेसावु ?—बालाजी की हुडी म तुमने कितना धन डाला है ?

३ तेलुगु मे इस शब्द का अथ हत्या ही है। यह भाववाचक सज्ञा है।

९. गेंदु	बंद	कारागार
१०. जामीनु	जामिन अ.	जमानत
११. जामीनुदार	जामिनदार अ. फा.	जो जामिन रहता है
१२, जुलुमु	जुल्म अ.	अत्याचार
१३. तनिकी	तनकीह् अ.	जाँच
१४. दरियाप्तु	दरियाफ्त फा	पूछताछ
१५. दर्बारु	दरबार फा.	दरबार
१६. दस्तरमु[1]	दस्ता फा.	कागजों का फाइल
१७. दाखला	दाखला फ़ा.	प्रवेश
१८. दाखलु	दाखिल फा.	दर्ज करना
१९. दिवानु	दीवान फा	मंत्री
२०. नवाबु	नव्वाब अ.	नवाब
२१. नजराना	नजरानः अ	उपहार
२२. नगदु	नक्द अ.	रुपया पैसा
२३. नजरु[2]	नज़ अ	उपहार दृष्टि
२४. नदरु	नज़	दृष्टि
२५. निशानी[3]	निशानी फा	अपढ आदमी का अँगूठा लगाना।
२६. फिर्यादु	फरियाद अ	शिकायत, नालिश
२७. फिर्यादि	फ़र्यादी अ	नालिश करने वाला
२८. फैसला	फैसल	निर्णय, तय
२९ बंदिखाना	बंदीख़ाना फा	कारागृह
३० बंदोबस्तु	बंदोबस्त फा	इन्तज़ाम
३१ बत्ता	भत्ता हिं	भत्ता
३२ भत्ता	वही	वही

१. 'दस्ताल मसिपातरुन्' कवि श्रीनाथ की प्रासंगिक कविता।

२. लोकप्रयोग—नीवु चेप्पे दानिकि दाखला एमिटि? तुम्हारे कथन का क्या प्रमाण है? अब यह शब्द तेलुगु में सबूत के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। ३. तेलुगु में नजर और नदरु शब्दों का व्यवहार उपहार के अर्थ में भी हुआ है। जनता में इन शब्दों का प्रयोग दृष्टिदोष के अर्थ में पाया जाता है। जनवाणी में निरक्षर आदमी को निशानी वड्डु कहा जाता है।

३३ मजूरु	मजूर अ	स्वीकृत होना
३४ माजी	माजी अ	भूतपूर्व
३५ मामूलु[1]	मामूल अ	मामूल
३६ मिराशि	मीरास अ	बपौती
३७ मुद्दायि	मुद्दआ अ	दोषारोपित व्यक्ति
३८ मुनसबु	मुन्सिफ अ	न्यायकर्ता
३९ मुच्चिलक	मुच्चलका तु०	किसान की ओर से मालिक के नाम पर लिखा हुआ प्रतिज्ञा पत्र
४० मुसायिदा	मसविदा अ	मसौदा
४१ मोहरु	मोहर फा	मोहर
४२ रद्दु	रद अ	काटना
४३ रयितु	रैयत अ	किसान
४४ रयितुवारी	रैयतवार अ	किसान का
४५ रवाणा	रवान फा	पत्र पहुँचने की जगह
४६ रसीदु	रसीद फा	रसीद
४७ राजी[2]	राजी अ	अंगीकृत
४८ राजीमा	राजीनाम	सधिपत्र[3]
४९ लावा देवीलु	लावा देवा हि	लेनदेन का व्यवहार
५० वकीलु	वकील	वकील
५१ वजीरु	वजीर	मत्री
५२ षरतु	शर्त अ	शर्त
५३ वायिदा	वाद अ	अवधि
५४ शिस्तु	शिस्त फा	

---

१ इस शब्द को बख्शिश या इनाम के अर्थ मे भी व्यवहृत करते हैं। जहाँ शब्द अपना पुराना अर्थ रखते हुए एक नवीन अर्थ को प्रश्रय देता है वहाँ वह शब्द अर्थागम का उदाहरण माना जा सकता है। २ तेलुगु मे यह शब्द समझौते के अर्थ मे प्रयुक्त होता है जो एक प्रकार से मूल अर्थ का ही विस्तार माना जा सकता है। ३ तेलुगु मे यह शब्द बिल्कुल भिन्न अर्थ मे प्रयोग किया जाता है। राजीनामा का अर्थ तेलुगु मे इस्तीफा है, अत यह अर्थादेश का ही उदाहरण है।

५५ मुवेदारु	सूब दार अ+फा	एक सूबे का मालिक
५६ हयामु	हयात अ	शासनकाल
५७ हामी	हामी अ	हामी

ग ४ व्यापार सबधी शब्दावली

१ कारखाना	कारखाना हि +फा	कर्मागार
२ चिट्ठा	चिट्ठा हि	हिसाब की वही
३ चीटि	चिट्ठी	पत्र
४ जावु[1]	जवाब अ	पत्र
५ किराना	किराना हि	मवा मसाला आदि
६ दिनुसु[2]	जिंस अ	वस्तु चीज़
७ दुकाणमु	दूकान फा	दूकान
८ पचारी	पसारी हि	पसारी

ग ५ राजस्व विभाग की शब्दावली

१ आबुकारी	आबकारी फा	आबकारी
२ तहश्शीलु	तहसील अ	मालगुजारी
३ तासीलु	वही	वही
४ तासीलुदारु	तहसील्दार अ +फा	मालगुज़ारी का अफसर
५ ताल्लुका	तअल्लुका अ	जिले का भाग
६ ताल्लुकादारु	तअल्लुका-दार अ फा	रईस आदमी
७ पचायिती	पचायत हि	पचायत
८ परगणा	परगन फा	जिले का एक भाग
९ पेष्कारु	पेशकार फा	पेशकार

१ जावु शब्द जवाब से बना है परन्तु तेलुगु म यह किसी भी खत के लिए प्रयोग किया जाता है । यहाँ अथ का विस्तार हुआ है ।

२ *साधारणतया तेलुगु म द की ध्वनि ज मे परिवर्तित होती है* परन्तु यहाँ ज की ध्वनि द मे परिवर्तित होता दिखायी देती है जो कुछ विचित्र है । अन्य उदाहरण नदरु आदि शब्द हैं जो नज़र आदि से बने हैं ।

०. फिर्का	फिर्क: अ.	दल. गुट
१. महसूलु[1]	महसूल अ.	महसूल

३ घ शैक्षिक शब्दावली

शिक्षा-संबंधी शब्दावली भी प्रचुर मात्रा मे मिलती है।

१. कलमु	कलम अ.	लेखनी
२. कलंदानु	कलमदान अ.–फा.	कलम-दवात रखने का पात्र
३. काकितमु, कागिदमु कायितमु	कागज़ अ.	लिखने का कागज़
४. खिताबु	खिताब अ.	उपाधि
५ कत्तु[2]	खत अ.	पत्र
६. कबुरु	ख़बर अ.	सूचना, सवाद
७. चिरुनामा	सरनाम फा.	सरनामा, पता
८. हाजरुपट्टी	हाज़िरी अ.	हाजरी डालने का रजिस्टर

ङ. नित्यप्रति व्यवहार में आने वाली शब्दावली

इस शब्दावली के कई विभाग हो सकते है। जैसे १. वेशसबधी, २. आभूषण सबंधी, ३ भोजन सबधी, ४ फल-पेय आदि से सबधित, ५. सुगध द्रव्य आदि से सबधित। इस्लामी सस्कृति और सम्यता के साथ प्रतिदिन के जीवन मे कई नयी चीजो का प्रवेश हुआ। परिधान-सबधी ठाटबाट मे मुसलमान हिन्दुओ से आगे थे। जीवन के कई पहलुओ मे उनका दृष्टिकोण व्यावहारिक एव वैभवशाली रहा है। अत कई नये शब्दों ने भारतीय भाषाओ मे स्थान प्राप्त किया। तेलुगु भाषा भी इस साधारण नियम का अपवाद नही थी।

---

१. तेलुगु मे अर्थादेश से इस शब्द का व्यवहार आजकल फसल काटना, अनाज घर लाना आदि सभी व्यापारो को सूचित करने वाला एक समूहवाचक शब्द बना है। २ कत्तु शब्द मैत्री के अर्थ मे भी है। उदाहरण-वारिद्दरिकि कत्तु कलिसिदि—उन दोनो मे घनिष्ठ मैत्री है।

ङ. १. पहनावे से संबंधित शब्दावली

तेलुगु में प्रयुक्त तद्‌भव शब्द	तत्सम शब्द	अर्थ
१. अगरका	अंगरखा हि.	अचकन
२. अंगि	अंगिया हि.	चोली
३. कुर्डतिनी	कुर्तः तु.	पहनने का कमीज जैसा वस्त्र
४. कमीजु	कमीस अ.	विशेष प्रकार का कुर्ता
५. गलेबु	गिलाफ अ.	तकिये आदि की खोली
६. गावच	गमछा हि.	गमछा, अगवस्त्र
७. चोक्का	चोगा तु.	कुरता
८. टोपि[1]	टोपी तु.	टोपी
९. मेजोड्	मोजा फा	मोजा
१०. पाजामा	पाजामा फा.	पायजामा
११. बिस्तरु	बिस्तर	बिस्तर
१२. रप्पु	रफू अ.	रफू
१३. लुघी	लुगी फा	जाँघिया
१४. लगोटी	लगोटी हि	लगोटी
१५. रुमालु	रुमाल फा	रुमाल
१६. शालुवा	साल फा	शाल
१७. हौदा	होदअ अ	अम्वारी

परदा, बुरखा, नीमा, जामा आदि भी उल्लेखनीय हैं।

ङ २. आभूषणो से संबधित शब्दावली

हमे आभूषण सबधी शब्द बहुत कम मिलते हैं। भारतीय नारी के अलकरण मे आभूषणो का बडा ही महत्वपूर्ण स्थान पहले मे था, अब जितने शब्द आर्य सस्कृति के मिलते हैं उतने मुस्लिम सस्कृति से सबधित शब्द नही। फिर भी कतिपय शब्द आ ही गये हैं।

१. तुरायि	तुर्रे अ	कलगी
२ तोडा	तोडा हि	तोडा

१. टोपि पहले टोप्पि रूप मे भी व्यवहृत हुआ है। नाचन सोमन की पक्ति स्मरणीय है—पिडुगु वेमिन तलटोप्पि यागुने विवेकमेन वलदे।

३, वाजु बंदुलु	वाजूबंद फा.	वाजूबंद
४. वाविलीलु	वाली	कर्ण का एक आभरण
५. बेसरि	बेसर हि.	नाक का एक आभरण
६ जुमिकीलु	झुमकी हि.	झुमकी

ङ. ३. भोजन सबधी शब्दावली

१ किच्चडि	खिचडी हि.	खिचडी
२. कुर्मा	खुरमा अ.	एक पकवान
३. कोवा	खोवा हि.	एक पकवान
४. पकोडी	पकौडी	पकोडी
५. पुलावु	फा. पुलाव	पुलाव
६. नास्ता	नाश्ता फा	कलेवा
७. नानुरोट्टि	नान फा –रोटी हि.	एक प्रकार की रोटी
८. चप्पति	चपाती हि	फलका
९. पुदीनाकु	पोदीना फा.–आकु ते.	एक सुगन्धित पत्ती
१०. मसाला	मसालह् अ.	लौंग, जीरा आदि मसाला
११. मिठायि	मिठाई हि.	मिठाई
१२. मुरब्ब	मुरब्बा अ.	वह मेवा जो विशेष रूप से गला कर शक्कर के किवाम मे रखा गया हो।
१३. मैदापिंडि	मैदा फा.	बारीक छना हुआ आटा
१४. रोट्टि	रोटी हि	रोटी
१५. लड्डूलु	लड्डू हि	प्रसिद्ध पकवान
१६: पर्बत्तु	शरबत अ	शक्कर डाल कर मीठा किया हुआ पानी।
१७. सूजा	सूजी फा. सूद फा.	
१८. सोपु	सौफ हि	मसाले मे पडने वाली एक चीज।

बालुपा[1], बरफी, दूधपेडा, हल्वा आदि शब्द भी तेलुगु मे प्रयुक्त होते है।

---

१. बालुपा, बादुषा भी कहा जाता है।

२७. चप्परमु	छप्पर हि	छप्पर
२८. जामार[1]	जामा अ.	पहनने का कपडा
२९. तनावि[2]	तिनाव अ.	तनाव
३०. तराजु[3]	फा. तराजू	तोलने का यन्त्र, तुला
३१. बिचाना	बिछाना हि.	बिछाना, बिस्तर
३२. बोरेमु	बोरा हि.	थैला, बोरी
३३. पुनादि	बुनियाद फा.	आधार, नींव
३४. बर्मा	बर्मः फा.	लकड़ी मे छेद करने का यंत्र
३५. दरवाजा	दरवाज. फा.	द्वार
३६. बुरजु	बुर्ज अ.	गुबद, मडप
३७. मरम्मतु	मरम्मत अ.	जीर्णोद्धार, टूटी फूटी चीज की दुरस्ती।
३८. रैतु[4]	रैय्यत अ.	किसान
३९. बंजरु	बजर हि.	ऊसर भूमि
४०. फसलु	फस्ल अ	खेत की उपज
४१ फसली	फस्ली अ.	अकबर का चलाया एक सन् जो तेलुगु के पचागो मे भी पाया जाता है।
४२. तक्कवी	तकावी अ	सरकारी कर्जा जो किसान को बैल और बीज आदि के लिए दिया जाता है।

---

१ जामार शब्द का तेलुगु में अर्थापकर्ष हुआ है। आजकल यह केवल विधवा स्त्रियों के कपडो के लिए इस्तेमाल किया जाता है। फिर भी जामा शब्द ने नीमाजामा समासित प्रयोग मे अपना गौरवपूर्ण अर्थ निभा रखा है। लौकिक व्यवहार मे वाडु नीमाजामा वेसिकोनि वच्चाडु जैसे प्रचलित वाक्य सुनाई देते हैं जहाँ इस शब्द का असली अर्थ मे प्रयोग होता है। २. यह शब्द मकान के छप्पर मे डालने वाले बडे लकडे के लिए भी तेलुगु मे इस्तेमाल होता है। ३. एक छद मे चाटूक्ति इस प्रकार है– ई राजुलु राजुले पेनु तराजुलु गाक धरातलम्मुनन्। इस शब्द का अन्य प्रचलित रूप त्रासु है। ४. तेलुगु मे नेल्लूरु से 'जमीनु रैतु' नामक एक तेलुगु पत्रिका निकलती थी। इस शीर्षक के दोनो शब्द तेलुगु के नही, इससे तेलुगु भाषा-भाषियों का अन्यभाषा के शब्दो के प्रति जो सहज प्रेम है, वह साफ लक्षित होता है।

४३	वरडा	वरामदा फा	दालान, वराम्दा
४४	लगरु	लगर फा	लगर
४५	वस्तादु	उस्ताद फा	शिक्षक, अध्यापक
४६	फलुमाणु	पहलवान फा	पहलवान
४७	कुस्ती	कुश्ती फा	कुस्ती

छ. वैज्ञानिक शब्दावली

तेलुगु मे इन भाषाओ से कई वैज्ञानिक शब्द प्राप्त हुए हैं। ये शब्द चिकित्सा, गणित आदि विज्ञानों से सबधित है। सभी शब्दो का निदर्शन इस छोटे से लेख मे नही हो सकता। केवल कतिपय शब्द दिये जा रहे हैं।

१	एक्कमु[1]	एक्कम् हि	पहाडा
२	सरासरि[2]	सरासर हि	निवात, विलकुल
३	लेक्क	लेखा हि	गणित, हिसाब
४	मलामु	मरहम अ	पलस्तर
५	मलामु पट्टी	मरहम पट्टी अ हि	मल्लम पट्टी
६	सुस्ति[3]	सुस्ती फा	ढीलापन

---

१ तेलुगु मे यह शब्द बहुत प्रचलित है। हिन्दी मे पहाडे इस प्रकार आरम्भ होते हैं। उदा एक एक्कम् एक, दो एक्कम् दो। तेलुगु मे इस शब्द को यही से लिया गया है और इस शब्द के अर्थ मे विस्तार हुआ है। फलत तेलुगु मे सभी पहाडो के लिए ' एक्कम सामान्य शब्द बन गया है। इस प्रकार हिन्दी का अध्ययन अनजान मे तेलुगु का बालक करने लगता है। उदा एक्काउ चदुवक पोते वीपु मरम्मतु चेसेस्तानु सुमा– यदि पहाडे नही पढते तो पिटाई होगी।

२ इस शब्द पर तेलुगु मे अर्थादेश और अर्थसक्रमण दिखाई देता है। उदा सरासरि पोम्मु। यहा अर्थादेश हुआ है। इस वाक्य का अर्थ है सीधे जाओ, यहा सरासरि का अर्थ सीधा है। सरासरि लेक्कलु म यह हिसाब का शब्द है, जिससे पाठशाला जाने वाला हर तेलुगु विद्यार्थी परिचित ही है।

३ सुस्ति शब्द के अर्थ म अर्थसकोच काम करता दिखाई देता है। अर्थसकोच के साथ यह पद रूढिग्रस्त हो गया है। तेलुगु मे यह शब्द केवल अस्वास्थ्य, बीमारी के अर्थ मे प्रयुक्त होता है।

७ दाणा	दान फा	प्रतिदिन घोडे को दिया जाने वाला अन्न ।
८ अरकु	अर्क अ	दवाओ का खीचा हुआ अर्क
९ कलेजा[1]	कलेजा हि	कलेजा

ज, ललित कलाओ से सबधित कतिपय शब्द

१ तबूरा	तानपूरा स हि	तबूरा
२ तबला	तब्ल फा	तबला
३ तासामवा	तास अ	एक बाजा
४ नगारा	नगारा फा	एक बाजा
५ नगिषी[2]	नक्शी फा	जिस पर बेलबूटे का काम-हो ।
६ सन्नायि[3]	शहनाई फा	शहनाई
७ सितारु[4]	सितार	सितार आदि

झ प्रकीर्णक शब्दावली

हिन्दी अरबी फारसी आदि से आये हुए विविध विषयो के शब्दो की सख्या बहुत बडी है । इन मे पशु पक्षी तथा जीवन से सबधित वस्तुओं के बहुत से नाम तेलुगु म प्रयुक्त होते हैं, अत इस प्रकार के शब्दो का ठीक-ठीक वर्गीकरण असभव नही तो कठिन अवश्य है । इस क्षेत्र के कतिपय मुख्य शबद दिये जा रहे हैं ।

१ अरबा	अरबी	अरब का घोडा

---

१ तेलुगु म इस शबद का अर्थविस्तार हुआ है । लाक्षणिक ढग से इसका प्रयोग आम जनता किया करती है । उदा नीवे कलेजा उटे ई पनि चेयिय चूस्तानु—यदि तुम्हारी हिम्मत पडती तो यह काम करो, देखा जाएगा । इस प्रकार यह तेलुगु मे धैर्य आदि अर्थ देता है ।

२ फारसी का विशेषण तेलुगु म सज्ञा बन गया । ३ यह शब्द भारतीय सस्कृति का और खास कर तेलुगु सास्कृतिक जीवन का एक अग ही बन गया है । शहनाई व मधुर सगीत के बिना कोई मगलकार्य सपन्न हो ही नहीं सकता । ४ यह एक प्रकार से भारतीय सगीत और ईरानी सगीत कला के समन्वित रूप का फल है, जिसक आविष्कर्ता अमीर खुसरो माने जाते हैं ।

२. इराकी	इराकी अ.	पूर्वी अरब के एक देश का घोडा ।
३. इरानी	ईरानी फा.	ईरान का घोडा
४. तुरानी[1]	तुर्की तु.	तुर्की देश का घोडा
५. अस्तबलमु	अस्तबल फा.	घुडसाल
६. रकावु	रिकाव अ.	रिकाव
७. जीनु	जीन फा.	घोड़े की पीठ पर कसी जाने वाली काठी।
८. स्वारि[2]	सवारी	वाहन
९. लाडमु[3] .	नाल अ	नाल-लोहे का हल्क'।
१०. वातु[4]	वत फा.—वतख हिं.	बतख
११. वुलुवुलु, वुल्वुलु	बुलवुल फा, अ.	बुलबुल
१२. अगावु[5]	अगाऊ हि.	वधक, धरोहर।
१३. अयिवेजु	आवाजाई हि.	आनाजाना, जन्ममरण
१४. अमानुदस्ता	हावनदस्त फा.	इमामदस्ता
१५. अडावुडि	हडवडी हिं.	उतावली
१६. अमाबापतु	आम बाबत अ वि.	सभी प्रकार के प्रकीर्णक
१७. अल्लाटप्पा	अललटप्पू हि	अटकलपच्चू

१. ईरानी शब्द के मिथ्यासादृश्य के आधार पर यह शब्द तेलुगु मे आप ही आप बना है क्योकि इस प्रकार का कोई शब्द उन भाषाओ मे नही है।

२. इसे समध्वनि लोप का उदाहरण मान सकते हैं। इसमे एक ही ध्वनि की आवृत्ति से एक ध्वनि का लोप हो गया है। इस शब्द के पहले अक्षर स मे जो अ की ध्वनि है उसका लोप हुआ है क्योकि उसके बाद के व मे भी यही 'अ' है। ३ नआल मे वर्णव्यत्यय होना भाषा-विज्ञान का साधारण नियम है। और इसी प्रकार का ल और ड भी विनिमयेय ध्वनियाँ मानी जाती है। इस प्रकार अरब का ना'ल शब्द तेलुगु मे लाडमु बना है। ४ बतख की *ख ध्वनि मे ह की ध्वनि के मिथ्यासादृश्य से उसका लोप हुआ जैसे शाहशाह मे* अतिम ह ध्वनि का लोप होता है और तदनन्तर भाषा-विज्ञान का क्षतिपूरक दीर्घीकरण। उसके बाद तेलुगु की उकारात प्रवृत्ति के अनुसार शब्द वातु हुआ है। ५ अगावु मे अर्थादेश हुआ है। तेलुगु मे इस शब्द का अर्थ है अतिरिक्त धन आदि।

१८. खबुरु, खबुरुलु[1]	खबर अ	समाचार
१९. गप्पालु[2]	गप हि	गप्प
२०. गरजु[3]	गरज अ.	आशय
२१. गाबरा	घबराहट	
२२ चाकु	चाकू तु	चाकू
२३. जेंडा	झण्डा हि	पताका
२४ जजाटमु	झंझट हि.	नाहक झगडा
२५ जबाबु, जाबु	जबाब अ	उत्तर, समाधान
२६ जागा	जगह हि जायगाह फा	स्थान
२७ जोडा	जोडा हि	युगल, युग्म
२८. जोडु	हि. जोडा	जोडा
२९ जोरु	हि जोर	जोर
३० टालाटोलि	टालटूल हि.	टालमटोल
३१. डोंगु	ढोग हि.	चालाकी, दगा
३२ ढोंग[4]	ढोंगहि	वही
३३ ढक्कामुक्कीलु[5]	धक्कामुक्कियाँ हि	धक्कामुक्की
३४ तटा[6]	टटा हि	झगडा

१ एक वचन मे यह शब्द समाचार का पर्याय है परन्तु बहुवचन मे यह गपशप के अर्थ मे आता है।

२ गप्पालु नित्य ब व रूप मे ही इस्तेमाल होता है। इसका एकवचन रूप तेलुगु मे नही है।

३ इस शब्द म भी अर्थपरिवतन पाया जाता है। तेलुगु मे यह आवश्यकता के अर्थ मे प्राय प्रयुक्त होता है।

४ यह शब्द तेलुगु कोशकारो की दृष्टि मे देशज है अर्थात् ठेठ तेलुगु की है, दे शब्दरत्नाकरमु पृ ४०१। परन्तु यह विचार भ्रामक मालूम पडता है। कारण यह है कि द्राविडकुल की अन्य भाषाओ–तमिल, कन्नड, और मलयालम मे इसके समानार्थवाची शब्दो मे और इस मे रूपगठन का कोई सादृश्य नही दिखाई देता। तमि कल्लन्, कन्न कल्लु और मल कल्लन् शब्द है। अत यह माना जा सकता है कि यह सब्द तेलुगु मे हिन्दी से ही प्राप्त हुआ है।

५ इस शब्द का प्रयोग तेलुगु मे सुखदु ख, जीवन का उतार चढाव आदि के अर्थ मे होता है। ६ अर्थादेश के अनुसार इस शब्द का अर्थ झगडा है।

३५	तगादा	तकाज़ा अ —तगादा हि	माँग
३६	तपिसीलु	तफसील अ	विवरण, ब्यौरा
३७	तफावतु	तफ़ावत् अ	अंतर, दूरी
३८	तमाषा	तमाशा अ	बाजीगरी या मदारियो आदि का खेल
३९	तयनायति[1]	तैनाती अ	नियुक्ति
४०	तैयारु	तय्यार अ	सिद्ध, तैयार
४१	तरहा[2]	तरह अ	भाँति
४२	तर्जुमा[3]	तर्जुम अ	अनुवाद
४३	ताहतु	ताकत अ	शक्ति, बल
४४	तीन्नारु	तीन-तेरह होना हि	तितर बितर हो जाना
४५	दडुरा[4]	ढिंढोरा हि	मुनादी
४६	दगुलुबाजी	दगेल बाजी	दाग —एल —बाजी, वचना धोखा
४७	दवुडु	दौड हि	दौड
४८	दाचिन चेक्क	दालचीनी हि	दारचीनी
४९	नाजूकु[5]	नाज़ुक फा	कोमल
५०	नामर्दा[6]	नामर्दी फा	भीरुता

१ इस शब्द के अर्थ का बिलकुल अपकर्ष हुआ है। इस का अर्थ आजकल प्रेमी–प्रेमिकाओं के बीच दौत्य करने वाला हो गया है। २ इस शब्द के अर्थ की छाया कुछ बदल सी गयी है, चालचलन के अर्थ में तेलुगु में व्यवहृत हो रहा है। ३ अर्थसक्रमण के अनुसार तेलुगु में यह शब्द वादविवाद के लिए भी आता है— उदा वाल्लिद्दरु चाल सपु तर्जुमा पड्डारु —वे दोनों बहुत समय तक वादविवाद करने लगे। ४ अर्थादेश विधि से इस का अर्थ लोकवाणी में पीडा देना, तग करना आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है 'वाडु नन्नु दडूरा चेयड मोदलु पेट्टाडु' —वह मुझे तग करने लगा।

५ नाजूकु सज्ञा के रूप मे प्रयुक्त हुआ है। दे 'नाजूकु लेदुरा नडूरि सुब्बिगा। ६ इदि नामर्दा पनि—यहाँ विशेषण के रूप मे है। कुछ शब्द ऐसे मिलते हैं जो मूलत विशेषण हैं परन्तु जिनके यत्किंचित परिवर्तित रूप सज्ञा के रूप में तेलुगु मे प्रयुक्त होते है। वैसे ही कुछ शब्द जिनका मूल रूप सज्ञा है, तेलुगु मे विशेषण के रूप मे प्रयुक्त किये जाते हैं।

५१. नामोषी	नामूस	अ	लज्जा, शरम
५२. पत्ता[1]	पता	हि.	पता
५३. परवा[2]	परवाह	फा.	ध्यान, चिन्ता
५४. पायखाना	पाखान	फा.	शौचालय
५५. पुकार[3]	पुकार	हि.	हाँक, टेर
५६. बलादूर	बलिहारी हि.		बलैया लेना
५७ बाजा	बाजा	हि.	बाजालु
५८. बाजाबजंत्रीलु	बाजा हि –बजंत्री हि.		बाजा बजाने वाले, बजनियाँ
५९. मजा[4]	मज	फा	स्वाद, आनन्द
६०. मजाका[5]	मज़ाक अ.		मजाक
६१. मोतुबरि	मोतबर अ.		रईस
६२. आसामि	असामी अ.		जमीदार से जोतने के लिए खेत लेने वाला
६३. रास्ता[6]	रास्त फा.		मार्ग, पथ

१. एन्नाल वेदकिना वानि पत्ता दोरक लेदु इस प्रकार के वाक्य लोकवाणी मे बहुत मिलते हैं। हिन्दी मे अतापता भी कहा जाता है। आश्चर्य है कि इसको भी तेलुगु ने तद्भव रूप मे ग्रहण किया है– वानि अजापजा कनुक्कोन्नवाडु लेडु। परन्तु अर्थ मे थोडा परिवर्तन हो चला है– उसके बारे मे ध्यान देने वाला अथवा उसकी देखरेख करने वाला कोई नहीं है।

२ तेलुगु मे अर्थादेश विधि के अनुसार इस शब्द का अर्थ अंग्रेज़ी के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। मीरु कुर्चीलो कुरचोंडि निल्चुन्नारु पापमु। दानिकेमि। परवा लेदु। आप कुर्सी मे बैठिये, यों ही खड़े हो रहे हैं। कोई बात नहीं।

३ अर्थादेश के अनुसार यह तेलुगु मे किंवदती अथवा अफवाह के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

४. तेलुगु मे इस शब्द की द्विरुक्ति भी बातचीत मे हुआ करती है जिससे और भी मजा मिलता है। ई आट मजा मजागा उंदि—यह खेल बहुत ही मजेदार रहा है।

५ इदेमि मजाका अनुकोन्नावा ? इस प्रकार का व्यवहार आमजनता में बहुत चलता है। इसका भाव है– यह काम करना आसान नहीं हैं।

६४ वतनु[1]	वतन अ	ज मस्थान
६५ वाकबु[2]	वाकिफ अ	परिचित
६६ वापसु[3]	वापस फा	प्रत्यागत
६७ परा[4]	शर्ह अ	विशेष सूचना
६८ पिकार[5]	शिकार	शिकार, मृगया
६९ सरजामु	सरजाम फा	सामान, सामग्री
७० सामानु	सामान फा	माल असबाब
७१ सेम्मे	शमअ अ	दीवट
७२ हगामा	हगामा फा	हगामा
७३ हद्द	हद अ	सीमा
७४ हयामु	हयात अ	
७५ हामी	हामी अ	
७६ हुपारु	हाशियार फा	

जब दूसरी भापा अथवा सस्कृति का प्रभाव पडता है तब यह प्रभाव गाली गलौज मे भा लक्षित होता है । तेलुगु की गालियो मे भी इन भापाओ का प्रभाव देख सकते है । कतिपय उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

७७ वदमापु	वदमाश	फा बद + अ मआश ।
७८ लमिडी	लौंडी हि	दासी
७९ लुच्छा	लुच्चा हि	कुमार्गी

१ अर्थ सक्रमण विधि के अनुसार इस शब्द का अन्यार्थ तेलुगु मे किसी काम को आदतन करने के भी हैं । उदा० 'वाडु माकु वतनुगा पालु पोस्तुम्राडु' वह हमको दूध दिया करता है ।

२ यह शब्द मूलत विशेपण होते हुए भी तेलुगु मे सज्ञा के रूप मे प्रयुक्त होता है।

३ वापसु का हाल भी वाकबु की तरह ही है ।

४ तेलुगु की आम जनता मे यह शब्द बहुत प्रचलित है । इस सब्द का प्रचार नाटक कपनियो के द्वारा बहुत हुआ है । उदा० परा — ममयानु-कूलमुगा रेट्लु हेच्चिप्पु वडुनु ।

५ अर्थसकोच विधि के अनुसार इस शब्द का व्यवहार केवल टहलना और हवा खाने के लिए सीमित रह गया है ।

८०. लफगु	लफगा हि, फा लफ्ग	आवारा
८१. पोदा	शोहदा अ	लपट, व्यभिचारी
८२ हरामखोरु	हराम अ + फा खोर	पाप की कमाई खाने वाला

इस क्षेत्र की खूबी यह है कि इस मे अन्य भाषा के शब्दो का तुरन्त स्वागत किया जाता है। खिताव, उपाधि आदि से भी सम्बन्धित कतिपय शब्द मिलते हैं।

खानसाहब, खानबहादुर, पेकु, मीर्जा, मौल्वी, बख्शी, साहब आदि उपाधियाँ प्राय मुसलमानो के साथ ही लगती हैं। दिवानबहद्दरु, रावसाहेब, रावबहद्दरु, आदि प्राय हिन्दुओ के साथ प्रयुक्त होती हैं। केवल साहेब् शब्द अथवा इसका तद्भवरूप सायिबु बोलचाल मे मुसल्मान शब्द का पर्यायवाची है।

कभी-कभी व्यक्तियो के नामों मे सामाजिक सस्कृति और भाषायी एकता की झलक मिलती है। इन शब्दो के पीछे धार्मिक विश्वास तथा ऐसा ही कोई कारण छिपा रहता है। 'मस्तानु रेड्डी' आदि नाम इसी प्रकार के हैं। गुटूर मे मस्तान नामक औलिये के नाम पर हर वर्ष उर्स भरता है, जिसमे हिन्दू भी बडी तादाद म शामिल होते हैं। जिनके कोई बच्चा नही होता वे इस पीर की मनौती करते हैं और जब बच्चा होता है तो अपनी सतान को उस औलिये के नाम से पुकारते हैं।

साधारणतया जब कोई सशक्त भाषा अन्य भाषा के शब्दो को ग्रहण करती है, तब अधिकतर सज्ञाएँ हो ली जाती हैं। प्रसिद्ध भाषाविद् एस्पर्सन् का मन्तव्य है कि अन्य भाषा स आतिथेयी भाषा सज्ञा शब्दो और कुछ हद तक विशेषण शब्दो को ही ग्रहण किया करती हैं[१]। और आतिथेयी भाषा विरले ही, अतिथि भाषा से प्रत्यय क्रिया आदि ग्रहण करती है। इस महान् भाषा विद् का यह भी विचार था कि जब कोई शब्द गृहीत होता है तब प्राय यह देखा जाता है कि शब्द का प्रथम रूप ही लिया जाता है और उस शब्द के विभिन्न व्याकरणिक रूप जो लिंग, वचन आदि के कारण बनते हैं, नही लिये[२] जाते। परन्तु हम यह देख कर महान् आश्चर्य होता है कि तेलुगु ने न केवल आभिधानिक रूपो को ही अतिथि भाषा स ध्वनि सबन्धी आवश्यक परिवर्तनो के साथ अपनाया है, न केवल सज्ञाओ के प्रायमिक रूप ही लिये हैं न केवल कतिपय विशेषणो को ही अपनाया है, अपितु कहीं-कहीं अतिथि भाषा के प्रत्यय

१ देखिये एस्पर्सन लैंग्वेज पृ० २११।
२ देखिए वही पृ० २ ३।

चिह्नों को भी स्वीकार कर लिया है। अन्य भाषाओं से क्रियाविशेषण, आश्चर्य बोधक शब्द आदि भी स्वीकार किये हैं, क्रियावाचक शब्द भी अपनाये गये है, यहाँ तक कि वाक्यांशो और वाक्यो तक को स्वीकार किया गया है। हाँ ऐसा करते हुए तेलुगु ने उन्हें अपनी प्रकृति के अनुसार ढाला है। अतिथि भाषाएँ हिन्दी, अरबी, फारसी तथा आतिथेयी भाषा तेलुगु मे शांतिपूर्ण सहअस्तित्व अथवा सहजीवन का उपादेय सिद्धात इतनी सुन्दरता के साथ लागू हुआ है कि कही इन मे वैमनस्य तक दिखाई नही देता। ऐसे अनेकानेक मिश्रित शब्द तेलुगु भाषा मे घुलमिल गये है। इन सभी प्रवृत्तियो का संक्षिप्त दिग्दर्शन हम निम्नलिखित पंक्तियो मे कराते हैं।

गृहीत विशेषण	अर्थ	प्रयोग
१. असलु	वास्तविक	असलुमाट--सही बात
२. कोरा	नही धुला हुआ	कोरा गुड्ड
३. गरम	गरम	गरम चाय, गरम मसाला गरम गरम चाय।
४. चालाक	चालाक	चालाकी पिल्ल
५. खाली	शून्य	खाली गदि
६ ताजा	ताजा	ताजा काल
७. नाजुक	नाजुक	नाजुकु माट।
८ मामूल	मामूली	मामूलु धोरणि।
९ ततिम्मा	बाकी	ततिम्मा विषयमु
१० तमामु	तमाम	तमामु सामानु
११ तयारु	तैयार	तयारु साद।
१२ सादा	सादा	सादा जीवनमु।

कभी विशेषण शब्द सज्ञा के बाद भी प्रयुक्त होता है। उदा० माट खाली अते। साद तयारु। कल ताजा।

कतिपय अवसरो पर सज्ञा विशेषण का काम भी देती है। यह बात तेलुगु भाषा की प्रकृति के अनुकूल है। उदा० नामर्दा पनि, मेहरबानी माट, लाचारी व्यवहारमु। तगादा मनिषि, तफावतु माट आदि इसी प्रकार के उदाहरण हैं।

सर्वनाम — अन्यभाषा परिवार के सर्वनाम शब्द भाषाविज्ञान के अनुसार कदापि आतिथेयी भाषा मे स्थान नही पा सकते परन्तु तेलुगु मे एकाध

उदाहरण इस प्रकार का भी पाया जाता है। उदा० पिता अपने बेटे से कहता है– "फलाना वारि अब्बायि अटे नाकु नामर्दा बानु। इटुवटि पनि चेयकु"।

क्रिया विशेषण

तेलुगु में कतिपय क्रि वि शब्द भी गृहीत हुए हैं। उदा० आखरुकु, अमेषा, हमेशा,

भेपुग्गा　　बेनक　　वानि पाट भेपुग्गा उदि

जरूर　　जवाबु जरूर।

बहुत से क्रियाविशेषण संज्ञाओं और विशेषण शब्दों के साथ 'गा' जोड़ने से बनते हैं। इस विधान के अनुसार अन्य भाषाओं से भी इस प्रकार के कई शब्द गढ़े गये है। जल्दीगा– उदा० जल्दी गा रा, जल्दी रा।

आश्चर्यादि बोधक अव्यय

शाबासु। सेबासु। वाहवा। मज्झा रे। बापु रे[1] आदि। कपड्दार, खबरदार आदि भी अव्ययों के रूप मे इस्तेमाल होते हैं।

रचनात्मक प्रत्यय —

आइ–मुगलाई–दे मोगलाइ दरवारु।

दार–दार–उदा अग्रहारमु दारु आदि।

वार––उदा रैत्वारी भूमुलु दफालवारी गा।

भाषायी एकता का साधना का भव्यरूप संकर अथवा मिश्रित शब्दों में मिलता है। तेलुगु मे प्राप्त ये संकर शब्द कई प्रकार के हैं।

संकर शब्द

१ अतिथि भाषाओं से ज्यों का त्यों गृहीत संकर शब्द जैसे–

दिलासा—दिल फा –आसा हि

निघामानु　　निगाह फा –मानु, अ सतरी।

२ तेलुगु और अन्यभाषा के शब्दों का मिश्रण

अल्लमुरब्बा—अल्ल ते –मुरब्बा अ

चेरुमालु—चेयि ते —रुमालु रुमाल फा

---

१ बापुरे कौरवनाथ नी सर्ग, विच्चेद जीवितेच्छ गलदेनि बयल्पडुमय्य प्रवरुनन्। पाण्डवविजय नाटक।

३ अन्यभाषाओ और तेलुगु के मिश्रण से—

जेबुगुड्डा, राजमहलु,

वच्चा पच्चा, वच्चा हि—ते पच्चि। वच्चा के साहचर्य से तेलुगु का पच्चि शब्द पच्चा बन गया है।

खासावाडु खासा—वाडु।

पामुकोडु पाव हि —काडु ते

सदुकाय पेट्टे सदूक पेट्टे। इस मे पहले सदूक शब्द सदुक हुआ। क्षतिपूर्ण दीर्घीकरण नियम के अनुसार सदुका बना। दीर्घान्त शब्द तेलुगु प्रकृति के अननुकूल है, अत उस पर और भी तेलुगुपन जोडा गया। फलत शब्द सदुकाय बना और उसके साथ समानार्थी पेट्टे भी जुड गया।

सिकारायि सिक्का अ —रायि ते

कभी कभी तेलुगु का प्रत्यय जोडने से सकर शब्द बनता है।

शाणातनमु—शान फा —तनमु ते का प्रत्यय।

हुदातनमु ओहदा —तनमु।

कही कही सकर शब्द के दोनो अश समानार्थी रहते है, परन्तु प्राय अर्थ पर बल देने के लिए ऐसा प्रयोग किया जाता है। इन शब्दो को अवधारणार्थक शब्द कहते हैं।

उदाहरण —

दीपम् सेम्मे

रहदारि —राह-दारि

सिग्गुशरमु सिग्गु ते शरमु—शरम फा

'मेजा बल्ल' सकर शब्द होते हुए भी इस अवसर पर हमारे मतलब का नही है क्योकि इस मे मेजा पुर्तगाली शब्द है।

क्रियाएँ — इन भाषाओ से कई क्रियापद भी लिए गये हैं और बोलचाल मे उनका निस्सकोच रूप से प्रयोग होता है। कतिपय उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं।

१ इचुट् प्रत्यय जोड कर —

अटकायिचट—अटकाना हि

उडायिचुट उडाना हि

तयारिचुट—तयारिपु यहाँ क्रियापद क्रि वि से बना है।

दबायिचुट   दबाना।
परखायिचुट परखना हि.
फिरायिचुट   फिराना हि.
बनायिचुट   बनाना हि.
बिडायिचुट   भिडाना
बुकायिचुट   थकना हि.
सतायिचुट   सताना हि.
समुदायिचुट   समझाना हि.

इन्ही मे निकले हुए अटकायिपु, बनायिपु, दबायिपु, सतायिपु आदि शब्द भी जनता की वाणी मे काफी प्रचलित है।

टकायिचुट वस्तुत अटकाना क्रि. प. से निकला है परन्तु आद्याक्षर लोप होने से टकायिचुट हुआ है। उदा० 'वाडु नन्नु टकायिचि अडियाडु'।

मुहावरे

कुछ मुहावरे भी बनाये गये हैं। उदा० 'तस्सागोय्य वाडेंतवाडु अनुकुन्नावु ?' तस्सा शब्द ठस्सा से है।

लकरु अदुट —नाकु लगरदड लेदु— मुझे मालूम नही हो रहा है। आदि।

तेलुगु के कतिपय मुहावरो मे और इन भाषाओ के मुहावरो मे कुछ आकस्मिक सादृश्य दिखाई देता है। परन्तु हमे यह नही भुलना चाहिए कि यह सादृश्य आकस्मिक है और किसी एक भाषा के मुहावरो को किसी अन्य भाषा से प्रभावित नही माना जा सकता।

उदाहरण के लिये लीजिये —

फारसी का मुहावरा	हिन्दी का मुहावरा	ते. मुहावरा
१. दस्त पेश दाश्तन	हाथ पसारना	चेयि चाचुट
२ दिल बार निहादन	दिल पर बोझ रखना	गुडे मीदि बरवु
३ दिल दादन	दिल देना	मनसिच्चुट
४ पुश्त नमूदन	पीठ दिखाना	वेन्निचुट
५ सर बुलन्द करदन	सिर ऊँचा करना	तल येत्ति तिरगुट
६ जुबान दादन	वचन देना	माट इच्चुट

कहीं-कहीं तेलुगु ने पूरा वाक्य ही अपना लिया है। उदा० 'वाडु तन

वैरिनि कडेरावु अम्राडु'– उसने अपने दुश्मन को खडे रहो कहा। तेलुगु वाक्य मे हिन्दी का विध्यर्थक वाक्याश 'खडे रहो' पूरा का पूरा अपनाया गया है जो बहुत ही आश्चर्यजनक विषय है। लोकोक्तियो मे भी इस प्रकार की प्रवृत्ति दिखायी देती है–'जागा एरिगि बैठो अन्नारु पेद्दलु' लोकोक्ति मे 'तीन' ए तेलुगु शब्द है और बाकी दोनो हिन्दी हैं।

निष्कर्ष यह है कि तेलुगु जनता की वाणी मे सैंकडो हिन्दी, अरबी, फारसी तथा हिन्दी के शब्द घुलमिल गये है। इससे यह पता चलता है कि भाषायी एकता की साधना के पथ पर तेलुगु भाषा ने कितनी प्रगति की है और अन्य भारतीय भाषाओं के समक्ष इस दिशा मे कितना सुन्दर एव समुज्ज्वल आदर्श प्रस्तुत किया है।

आंध्र का लोक-साहित्य

श्री क० राज शेषगिरि राव

आंध्र-प्रदेश भारत का एक राज्य है। इतिहास तथा भौगोलिक स्थिति के अनुसार आंध्र-प्रदेश का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। आंध्र उत्तर एव दक्षिण भारत के बीच का भूभाग है। इस प्रदेश के पूर्व मे उडीसा, उत्तर मे मध्य प्रदेश, पश्चिम मे मैसूर तथा दक्षिण मे मद्रास प्रदेश है।

आंध्र-प्रदेश के निर्माण के लिए बहुत दिनो तक आन्दोलन चलता रहा। श्री पोट्टि श्रीरामुलु के आत्म-बलिदान के पश्चात भारतीय सघ का यह प्रथम राज्य है, जिसकी स्थापना भाषा के आधार पर १, अक्टूबर १९५३ को हुई। तत्पश्चात् १ नवबर १९५६ ई. को हैदराबाद का तेलगाना क्षेत्र भी इस प्रदेश मे मिल गया, इस प्रकार वर्तमान आंध्र-प्रदेश का निर्माण हुआ। आंध्र-प्रदेश अब पूरी तरह से भारतीय सघ का राज्य है। अपने पूर्वजो के प्रताप की स्मृति मे वर्तमान आंध्र नेताओ ने 'तेलुगु' शब्द से बढ कर प्राचीन 'आंध्र' शब्द स्वीकार किया है। आंध्र-प्रदेश अपने अक्षर-बल से (अग्रेजी वर्ण माला के अनुसार) पहला राज्य है।

आन्ध्र-प्रदेश मे श्रीकाकुलम, विशाखपट्टनम, पूर्वी गोदावरी, पश्चिमी गोदावरी, कृष्णा, गुटूर, नेल्लूर, कडपा, कर्नूल, अनतपुर, चित्तूर, हैदराबाद, महबूब नगर, आदिलाबाद, निजामाबाद, मेदक, करीमनगर, वरगल, खम्मम और नलगोडा नामक बीस जिले हैं। इसमे १८९ तालुके हैं, १००० माल-गुजारी के हल्के, २२३ नगर एव २८,९४५ गाँव है। आंध्र प्रदेश के तीन भाग हैं। तटीय भाग, रायल सीमा, और तेलगाना। तटीय भाग मे श्रीकाकुलम, विशाखपट्टणम, पूर्वी गोदावरी, पश्चिमी गोदावरी, कृष्णा, गुटूर, नेल्लूर जिले हैं। कडपा, कर्नूल, अनतपुर, और चित्तूर रायल सीमा मे। तेलगाना मे हैदराबाद, महबूबनगर, आदिलाबाद, निजामाबाद, मेदक, करीमनगर, वरगल, खम्मम तथा नलगोंडा।

आंध्र-प्रदेश की प्रधान नदियाँ कृष्णा, गोदावरी तथा पेन्ना है । गोदावरी आंध्र राज्य की उत्तरी गगा है, कृष्णा नदी मध्य गगा है और पेन्ना दक्षिणी गगा है । आंध्र का नागार्जुन सागर विश्व मे सबसे बडा बाँध होगा ।

तेलुगु मे मंदिर को ' देवालय ' कहते हैं । आंध्र-प्रदेश मे असख्य मंदिर है, जिनमे अनेक प्रकार की स्थापत्य कलाओ का प्रयोग हुआ है । तिरुपति मे श्री वेंकटेश्वर स्वामी का दिव्य एव पवित्र मंदिर है । श्री वेंकटेश्वर स्वामी को उत्तर के लोग ' बालाजी ' कहते हैं । श्री कालहस्ती मे कालहस्तीश्वर का मंदिर है । शिव मंदिर के समीप ब्रह्मा-मंदिर है । आंध्र-प्रदेश मे यही एक मंदिर है जहाँ पर ब्रह्मा की उपासना की जाती है । श्रीशैलम मे मल्लिकार्जुन देवालय हैं । सिंहाचलम ' सिंहगिरि ' के नाम से भी प्रसिद्ध है । यहाँ नरसिंह भगवान का मंदिर है । भद्राचलम मे श्री रामचद्रजी का मंदिर है । अमरावती मे अमरेश्वर भगवान का मंदिर है । अलमपुर मे सगमेश्वर एव नवग्रहो के मंदिर है । वेमुलवाडा मे सर्वेश्वर का मंदिर है ।

आंध्र, तेनुगु एव तेलुगु

आंध्र, तेनुगु एव तेलुगु पर्यायवाची शब्द हैं । इनकी व्युत्पत्ति के विषय मे पडितो के विभिन्न मत हैं । इन मे 'आंध्र' शब्द अति प्राचीन एव अधिक प्रचलित शब्द है । यह देश, जाति व भाषापरक शब्द है । 'अध्र' प्राचीन रूप था, आन्ध्र अर्वाचीन रूप है । श्री भाव राजु वेंकट कृष्णराव ने बताया था कि अध्र रूप ही शुद्ध है । ऐतरेय ब्राह्मण मे शुन शेप कथा के सदर्भ मे 'आध्रो' का उल्लेख आया है । इस कहानी से यह पता चलता है कि ऐतरेय ब्राह्मण की रचना से पहले ही आर्य लोग आंध्र जाति से परिचित थे । तेलुगु भाषी प्रदेश ' वेंगी देश ' भी कहलाता था । वेंगी कभी दग्ध राष्ट्र था । दडकारण्य को जला कर निवास योग्य बनाने के कारण यह नाम पडा । ' वेगु ' का अर्थ उदय है अर्थात् सूर्योदय । सूर्य का अर्थ है 'अधारि' । जो सूर्यभक्त थे वे ही आंध्र थे । 'वेंगिनाडु' का सस्कृत अनुवाद है ' अधारि पथ ' । अधारि पैशाची प्राकृत शब्द है । ' अधारि ' कमश अधर, ' अध्र ' बन गया होगा । ' अधारि ' की पूजा करने वाले आंध्र थे । प्लिनी नामक इतिहास-वेत्ता (प्रथम शताब्दी) ने इस का उल्लेख किया है । ' तालमी ' नामक ग्रीक भूगोल शास्त्रज्ञ (ई १५०) ने लिखा है कि ' अरुवना ' नामक जाति के लोग चोल मडल के उत्तर और कृष्णा नदी के दक्षिण मे तटीय भाग पर रहते

हैं। बौद्ध वाङ्मय में आध्र अधक नाम से व्यवहृत हुए। पुराणों में सातवाहन वश को आध्र वश कहा गया है।

तेनुगु 'तेनुगु' शब्द का प्रयोग तेलुगु साहित्य के आदि कवि नन्नय भट्टारक ने अपने 'आन्ध्र महाभारत' की भूमिका में किया है। 'त्रिनग' का रूपातर तेनुगु है। तीन पर्वतों के बीच में स्थित प्रदेश ही त्रिनग है। कुछ विद्वान कहते हैं कि 'तेने' का अर्थ मधु है। 'तेने' की तरह जो मधुर है (तेने + अगु) वही तेनुगु है। आन्ध्र प्रदेश में प्राचीन काल में 'नागु' जाति वाले रहते थे। इनका प्रिय देव 'तिरु नाग' था। इन के नाम पर नागार्जुन-कोडा प्रसिद्ध हुआ। 'तिरु' का अर्थ है 'श्री' और 'नाग' का अर्थ है पर्वत, तिरु नाग या 'तिरमला' का अर्थ श्री पर्वत है। तेलुगु का देशी शब्द 'नागु' पैशाची प्राकृत एव संस्कृत में 'नाग' है।

सन् १३५८ के श्रीरगम के शिलालेख में त्रिलिंग की सीमाओ का उल्लेख है। त्रिलिंग देश के उत्तर में कान्यकुब्ज, पश्चिम में महाराष्ट्र, पूर्व में कलिंग तथा दक्षिण में पाड्य राज्य थे।

विद्यानाथ कवि काकतीय नरेश प्रतापरुद्र द्वितीय (सन् १४००) की राजसभा में थे। इन्होंने प्रतापरुद्र यशोभूषण नामक एक लक्षण ग्रथ लिखा। उसमें इसका विवेचन किया गया है कि श्रीशैल, द्राक्षाराम और कालेश्वर लिंग के बीच का भूभाग 'त्रिलिंग' प्रांत कहलाता है। 'नागु' कलिंग विध्य पर्वत के दक्षिण में रहते थे। इसलिए ये तेन् + नागु = दक्षिण के नागु नाम से प्रसिद्ध हुए। द्रविड भाषा में तेन का अर्थ है दक्षिण। अगुवारु का अर्थ है रहने वाले। तेनुगु का अर्थ हुआ दक्षिण के रहने वाले।

कुछ विद्वानो का कथन है कि 'ले' और 'ने' का उच्चारण स्थान 'दत्य' है। तेनुगु अति प्राचीन शब्द है। 'तेलुगु' उसका विकृत रूप है।

तेलुगु इस शब्द की व्युत्पत्ति के सबध में भी मतभेद हैं। श्री टेक-मल्ल कामेश्वरराव 'आन्ध्र आदि पदा की व्युत्पत्ति' नामक लेख में लिखते हैं कि 'तिरुलिंग' का संस्कृत रूप त्रिलिंग है। तिरुलिंग जातिवाले मल्लि-कार्जुन की पूजा करते थे।

कुछ विद्वान इसे त्रिकलिंग शब्द से उद्भूत मानते हैं। इन लोगो के विचार से उत्कलिंग, मध्य कलिंग, दक्षिण कलिंग इन तीनों का समवाय ही त्रिकलिंग है। इसी त्रिकलिंग शब्द से तेलुगु शब्द निष्पन्न हुआ।

जनसंख्या :— सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार आन्ध्र-प्रदेश की जन संख्या ३, ६,८०,००० है जो समस्त देश की जनसंख्या की ८ २ प्रतिशत है। आन्ध्र-प्रदेश की जनसंख्या कैनाडा, आस्ट्रेलिया, युगोस्लाविया, ईरान तथा संयुक्त अरब गणराज्य इन सबसे ज्यादा है। जनसंख्या और क्षेत्रफल के हिसाब से यह लंका, आस्ट्रिया, बेलजियम, स्विटजरलैंड से भी अधिक बड़ा है। इस दृष्टि से यह भारत का चौथा राज्य है। क्षेत्रफल के आधार पर इस राज्य का पाँचवाँ स्थान है। जिलों में गुंटूर जिले की जनसंख्या (३०,०९,९००) सर्वाधिक और आदिलाबाद (१०,०९,२९२) की सबसे कम है।

समग्र राज्य का ध्यान में रखा जाए तो १००० पुरुषों के पीछे ९८१ नारियाँ हैं। तटवर्ती जिलों में यह अनुपात अधिक हो जाता है। राज्य की आबादी का १७ ४ प्रतिशत भाग नगरों में रहता है। इस राज्य में कुल १२१२ शहर अथवा कस्बे हैं। राज्य की जनसंख्या का ८२ ६ प्रतिशत गाँवों में रहता है। राज्य के अनुसूचित वर्गों की जनसंख्या का अनुमान १३ ८ प्रतिशत है।

आन्ध्र राज्य की जनसंख्या का २१ २ भाग साक्षर है। साक्षरता की दृष्टि से देश में आन्ध्र प्रदेश का १५ वाँ स्थान है। पुरुषों में शिक्षितों की संख्या ३० २ प्रतिशत है। सुशिक्षित स्त्रियों का अनुपात १२ प्रतिशत है। आन्ध्र राज्य के श्रमजीवियों को मजदूर और गैरमजदूर दो वर्गों में बाँटा जाता है। फिर श्रमजीवियों को नौ वर्गों में विभाजित किया गया है।

'देशी' परम्परा का ऐतिहासिक क्रम'

प्रोफेसर कोराड रामकृष्णय्या के अनुसार भाषा, छंद एवं साहित्य की दक्षिणी रीति को देशी रीति कहते हैं। संस्कृत भाषा एवं साहित्य के संपर्क से जो परंपराबद्ध विशिष्ट — रचना— पद्धति अपनायी गयी उसे 'मार्गरीति' कहते हैं। नन्नय्या ने देशी और मार्गी दोनों के समन्वय से अपना काव्य रचा। उन्होंने संस्कृत महाभारत का आन्ध्रानुवाद किया। देशी भाषा तेलुगु को नये रूप में ढाल कर तथा तरु वोज, मध्याक्कर, अक्कर, मधुराक्कर आदि देशी छंदों को अपनाकर उन्होंने जीवित भाषा की धारा को अविरल बहने दिया। नन्नेचोडु ने जानु' (देशी) तेलुगु के संबंध में लिखा है कि यह सरल होती है। पाल्कुरिकि सोमनाथ ने शैव-धर्म के प्रचार के लिए देशी गीतों एवं छंदों का प्रयोग किया था। आन्ध्र भाषा के उद्भव पर दृष्टिपात करें तो यह सहज ही परिलक्षित होगा कि आन्ध्र लोक जीवन की समस्त पृष्ठ-भूमि लोक वार्ता एवं लोक तत्वों पर आधारित होगी। लोक-साहित्य समाज

के विकास के साथ-साथ पनपने वाली अनुपम लोक संपत्ति है। परंतु इसके उत्थान की भी एक धारा है। लोक साहित्य के विकास की कहानी प्राचीन ग्रंथों में अस्पष्ट रूप में मिलती है। विभिन्न ग्रंथों से गीता के प्रचलन का ज्ञान होता है, किन्तु लोक गीतों के गाने की पद्धति का परिचय नहीं मिलता। फिर भी यह विश्वास पूर्वक कहा जा सकता है कि प्राचीन ग्रंथों में लोक-संबंधी प्रचुर सामग्री समय-समय पर परिष्कृत करके संकलित की गयी। कुछ काव्य ग्रंथों में राग, ताल आदि का भी उल्लेख है। लोक गीतों के द्वारा शिष्ट साहित्य की रक्षा युग युगों से होती आरही है। आन्ध्र साहित्य के इतिहास में तीन ऐसे अवसर आये जब लोक गीतों ने साहित्य को जीवित तथा सशक्त बनाया। सर्व प्रथम अनुवाद युग या पुराण युग के शैव एवं वैष्णव कवियों की रचना में, दूसरा अठारहवीं शताब्दी में यक्षगान एवं निर्गुण संत कवियों के समय मेंऔर तीसरा वर्तमान काल में। इन अवसरों पर आन्ध्र के लोकगीतों के द्वारा 'शिष्ट' साहित्य की धारा पुष्ट होने के साथ-साथ सुरक्षित रही। ' पद कविता पितामह ' ताल्ल पाक अन्नमाचार्य (१५वीं शताब्दी उत्तरार्ध) ने लोक-गीतों की शैली पर अनेक गीतों का प्रणयन किया। उनकी धर्मपत्नी एवं प्रथम आन्ध्र कवयित्री ताल्लपाक तिम्मक्का ने ' सुभद्रा कल्याणम् ' नामक गीत स्त्रियों के गाने के लिए लिखा।

तेलुगु कविता ' आशु, मधुर, चित्र एवं विस्तार ' नामक चार भागों में विभाजित है। मधुर कविता के अंतर्गत 'पद' एवं 'गेय' रूप आते हैं। देशी कविता को तेलुगु में ' मधुर कविता ' कहते हैं। गंधर्व गान मार्गी और यक्ष गान देशी शैली का है। यक्षगानों में देशी लोक गीतों की अनुपम संपत्ति है। यों यक्ष गानों का अध्ययन लोक गीतों के क्रमिक विकास की जानकारी के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। गीत प्रबंधों का आधार यक्ष गान है। यक्ष गानों का कथा-नक समाज में प्रचलित लोक कथात्मक गीतों से लिया जाता था, स्त्रियों की रचनाओं से यह स्पष्ट विदित होता है कि यक्षगान केवल प्रबंधात्मक ही नहीं होते उनमें लोक प्रचलित गीतों का संकलन भी रहता है। यों यक्षगान देशी साहित्य का उज्वल एवं महत्वपूर्ण अंग है। तेलुगु में निर्गुण संतों को ' अचल योगी ' कहते हैं। इन के पदों को तत्वमु (लु) या ' अच्चन (मु) लु ' कहते हैं। इन के पदों का ' तित्ति ' तत्वालु भी कहते हैं। साधु संत ' तित्ति ' वाद्य को बजाते हुए पद गाया करते हैं। लोक गीतों के रूप में इनके गीत अधिक प्रचलित हैं। नयी क गीतों का जो प्रभाव लक्षित होता

है उसे हम मोटे तौर पर पाँच भागो मे बाँट सकते हैं- (१) लोक वस्तु (२) लोक-प्रतीक (३) लोक-सगीत (४) लोक-भाषा (५) लोक-सरलता। यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए समकालीन लेखकों ने लोक गीत एव लोक कथा के शिल्प का सहारा लिया है। प्रगतिशील लेखकों ने लोक गीतों की उपेक्षा कभी नहीं की।

लोक साहित्य और उसके विभिन्न रूप —

लोक साहित्य को प्रधानतया चार भागों मे विभक्त किया जाता है।

(क) लोक-गीत एव कथात्मक गीत
(ख) लोक कथा
(ग) लोक–नाट्य
(घ) लोक सुभाषित

(क) लोक गीत .—

लोक साहित्य मे लोकगीतों का प्रमुख स्थान है। लोक-जीवन के अनु– कूल लोक-गीत अनेक प्रकार के हैं। लोक-जीवन की आवश्यकताएँ पूर्णतया स्पष्ट हैं। धन-सपत्ति, सतान, दीर्घायु एव शत्रुओ पर विजय। इनकी प्राप्ति देवी देवताओं की अनुकपा के बिना नही हो सकती। अत देवी देवताओं की अनुकपा और उनकी अप्रसन्नता का अभाव भी प्रयोजनीय है। इसीलिए स्त्रियो के अधिकाश लोकगीत अनुष्ठानों से सबधित हैं। स्त्रियो के लिए शास्त्रानु- मोदित व्रत विधान का निषेध किया गया है। आन्ध्र प्रात मे स्त्रियो के लिए ' नोमु ' का विधान किया गया है। ' नियम ' का तद्भव रूप ही ' नोमु ' है। ' नोमु ' के साथ व्रत कथा, व्रत माहात्म्य आदि विशेष अग जोड दिये गय हैं। रचना की दृष्टि से ' नोमु ' सबधी गीत दो प्रकार के है।

(१) प्रबधात्मक (२) मुक्तक।

(१) प्रबधात्मक — इन गीतों मे व्रत-कथा, माहात्म्य, अनुष्ठान- पद्धति, उद्यापन, प्रयोजन एव व्रत भग का प्रायश्चित्त आदि विषयो का उल्लेख रहता है। इस श्रेणी के गीतों की सख्या अधिक नही है। श्रावण मगलवार (मु), श्रावण शुक्रवार (मु), 'कामेश्वरी पाट' आदि प्रबधात्मक गीत है।

(२) मुक्तक — मुक्तक गीत छोटे होते हैं। प्रत्येक 'नोमु' के प्रारभ अथवा उद्यापन के पश्चात स्त्रियाँ इन्हे गाया करती हैं। इनमे ' नोमु ' सबधी विशेषताओ एव प्रयोजन का उल्लेख रहता है। यह गीत मत्र का सा काम करता है। अट्ल तदिय, उड्राल तदिय, गोब्बि पडुग, चिक्कुल्ल गौरी

व्रतमु, चिट्टि बोट्टु, वतकम्मा, बोड्डेम्मा मूगनोमु आदि अधिक प्रचलित आनुष्ठानिक व्रत सबधी मुक्तक गीत हैं ।

(३) निरनुष्ठानिक गीत :— साधारण गीतो मे अनुष्ठान की कोई गुजाइश नही होती । इनका प्रधान उद्देश्य विनोद होता है । ये गीत दो प्रकार के होते हैं । कुछ गीत विशेष अवसर पर विशेष व्यक्तियो द्वारा गाये जाते हैं । इन्हें ' अवसर गीत ' कहते हैं । कुछ गीत हर समय गाये जाते हैं । इन्हे तीरिक वेळ पाडु पाटलु गीत—प्रत्येक अवसर पर गाये जाने वाले गीत कहते हैं । इन गीतो मे सामूहिक चेतना अधिक माना मे नहीं रहती । श्रोता लोग चुपचाप गीत सुनते रहते हैं । ये गीत दो तरह के होते हैं। (१) बुर्र कथाएँ (२) पुण्य कथाएँ । 'बुर्र' कथाएँ सामतयुगीन जीवन की प्रतीक हैं। पुण्य *कथाएँ स्त्री समाज के लिए निर्देशित पारमार्थिक गीत हैं ।*

' बुर ' कथाओ को ' तदान पद ' कहते हैं । बुर्र कथाएँ सामूहिक रूप से गायी जाती हैं । इन्हे चारण गीत कह सकते हैं । वीर भावना का आदिम स्रोत इनमे परिलक्षित होता है । इन गीतों के लिए वाद्य अनिवार्य हैं । कथानक के अनुसार गति बदलती रहती हैं । ' जगम ' कथाएँ कथात्मक लोकगीतो के ऐतिहासिक विकास क्रम को सूचित करती हैं। रचना-शैली को दृष्टि से रख-कर डाक्टर जोगाराव जगम कथा को यक्षगान का विकसित रूप मानते हैं ।

रचना के आधार पर बुर्र कथा निम्न लिखित दो रूपो मे उपलब्ध है । (१) प्रबध काव्यो के रूप मे (२) मुक्तक गीतो के रूपो मे । प्रबध काव्यो के रूप मे उपलब्ध कथाओ को तीन वर्गो मे विभाजित किया जाता है

(१) वीर तथा ऐतिहासिक पुरुषो से सबधित ।

(२) सती स्त्रियो से सबधित ।

(३) शक्ति से सबधित ।

मुक्तक वर्ग मे कुछ स्फुट पद आते हैं । ये पद किसी घटना विशेष की स्मृति अथवा साक्षी म लिखे गये हैं । इन पदो मे वीर-पूजा की गुजाइश अधिक होती है । वीर-पूजा से सबधित गीतों म भूत प्रेत, वैताल, पिशाच, वीर तथा डाकुओ का वर्णन मिलता है ।

इस प्रकार से ये गीत तीन श्रेणियों म बाँटे जा सकते हैं। (१) वीर पुरुष सबधी । (२) पतिव्रता स्त्रियों से सबधित । (३) शक्ति-सबधी ।

(१) वीर-पुरुष-संबंधी बोब्बिलरेड्डी, गुर्रम गोपीरेड्डी, चित्तरंगरेड्डी, मल्लम्मा, नदिरेड्डी, सर्वायि पापडु, वीर भद्रारेड्डी आदि गीत इसी वर्ग में आते हैं।

(२) पतिव्रता स्त्रियों से सम्बन्धित गीतों में 'ईरजानम्म', 'मुम-ल्म्मा', 'बालम्मा' आदि गीतों की गिनती होती है।

(३) शक्ति सम्बन्धी कुछ कथाएँ मुख्य होती हैं–अक्कम्मा, गंगानम्मा आदि की कथाएँ इसी वर्ग में आती हैं।

'पुण्य' कथात्मक गीत इन्हें पारमार्थिक गीत भी कहते हैं। पुण्यकथात्मक गीतों का सम्बन्ध पुराणों की कथाओं से है। रामायण, महाभारत एवं श्रीमद्-भागवत लोक कवियों के लिए भी उपजीव्य काव्य रहे हैं। कारण यह कि न्यूनाधिक रूप में सभी पुराण कथाओं को लोक गीतों में ढाला गया है। स्त्रियाँ अत्यन्त भावुक होती हैं, वे पूजा-पद्धति की अपेक्षा पौराणिक आख्यानों से अधिक प्रभावित हुई हैं। इसीलिए आंध्र लोक-साहित्य की श्रीवृद्धि 'पुराण' संबंधी गीतों से हुई है। पौराणिक-कथाओं से सम्बन्धित गीतों के चार मुख्य भेद हैं—

(१) रामायण-संबंधी
(२) महाभारत-संबंधी
(३) भागवत-संबंधी
(४) फुटकर

संस्कार-गीत

हिन्दू-जीवन जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त विभिन्न संस्कारों से आबद्ध है। सोलह संस्कार मुख्य हैं। इनमें जन्म एवं विवाह प्रमुख हैं। इन अवसरों पर गाये जाने वाले गीत उल्लास एवं आनन्द से ओत प्रोत होते हैं। मृत्यु संबंधी गीत अधिक नहीं हैं।

जन्म-संबंधी गीत

जन्म से पहले प्रसव और सीमंत आदि संस्कारों के अवसर पर भी गीत गाए जाते हैं। जन्म संस्कार संबंधी गीत मुख्यतः दो प्रकार के हैं

(अ) जन्म लेने के अवसर से संबंधित

(आ) जन्म विषयक अन्य अवसरों से संबंधित। जन्म लेने के अवसर के गीतों के चार उपभेद हैं

(१) वेविल्ल पाटलु (दोहृद-गीत)

(२) नील्लाडु पाटलु (प्रसव-गीत)

(३) पुरुडु पाटलु (सौर-गीत)

(४) वार्लेत पाटलु (जच्चा गीत)

जन्म से सम्बन्धित अन्य गीतों मे छठी, कुँआ पूजना आदि के गीत हैं।

विवाह-संस्कार संबधी गीत

आंध्र की विवाह-विधि के तीन भाग किये जा सकते हैं। पहला वाग्दान, दूसरा विवाह और तीसरा गर्भाधान। विवाह सम्बन्धी गीतो मे तीनो प्रकार के गीतो का समावेश होता है। विवाह के पूर्व गाये जाने वाले गीत, दूसरे विवाह *के शुभ अवसर पर गाये जाने वाले और तीसरे विवाहानन्तर गाये जाने वाले* गीत। विवाह-संस्कार से संबधित लगभग बाईस प्रकार के गीत गाये जाते हैं। *ये गीत औपचारिक गीत हैं जो केवल मागलिक महत्त्व रखते हैं और बहुधा* किसी वैदिक आचार के साथ गाये जाते हैं।

(क) विवाह के पूर्व गाये जाने वाले गीत तीन प्रकार के हैं

(१) पेंड्लि-चूपुलु *(परस्पर अवलोकन)*

(२) फल-दान (मु)

(३) कोट्णमुडु (कूटन-गीत)

(ख) विवाह गीत ग्रह-नक्षत्रो का योग देख कर विवाह का दिन निश्चित किया जाता है। आंध्रो मे साधारणतया विवाह संस्कार चार दिन तक *चलता है। यहाँ मामा की बेटी से भी* विवाह हो सकता है। नलुगु *(उबटन)*, स्नान (मु), अविरेणी (लक्ष्मी) पूजा वासिगमु *(ललाटक)* गीत, मगल-सूत्र, तन्ब्रालु (अक्षत), विनोद गीत, *बंतुलाट (गुच्छों का खेल)*, वसतालु *(गुलाल* खेल), पसुपु-गधमु (हल्दी-गन्ध), अभ्यंग स्नान (मु), तिलकमु (बिंदी-गीत), सोम्मुलु (आभूषण गीत), विडेमु (पान-गीत), पति-भक्ति संबधी गीत, अलुगु-पाटलु (रूठन के गीत), बुव्वति पाटलु (भोज-गीत), पानुपु पाटलु (सेज गीत), नागवल्ली द्वार गीत आदि।

शोभन पाटलु अप्पगिन्तलु (विदाई-गीत) विवाहोत्तर गीत हैं। इनमे कन्यापक्ष के गीत करुण रस प्रधान होते हैं। इन गीतो में वर वधू, गौरी शंकर, *सीता-राम, रुक्मिणी-कृष्ण हैं। पैरो के लिए मट्टेलु (छल्ले) पहनना तेलुगु देश* की स्त्रियों का विशिष्ट आचार है। विवाह की विधि मे मामा का विशिष्ट स्थान रहता है। वह मंगल-सूत्र व छल्ले बनवा कर लाता है। *विदाई के अव-*

सर पर मन्या के आँचल मे पायल बाँध दिये जाते है। इसे तेलुगु मे 'ओडिगटि बिय्यमु' कहते हैं।

व्यवसाय गीत बडी सख्या मे गाये जाते हैं। इन गीतो मे दो भेद हैं·

(१) कृषि-कार्य सम्बन्धी (२) अन्य व्यवसाय सम्बन्धी।

कृषि-कार्य सम्बन्धी गीतो के अनेक उपभेद हैं

(१) विम्नटि पदालु (बीज-वपन गीत)

(२) नाट्टु (रोपनी के गीत)

(३) कलुपु (सोहनी गीत)

(४) कोत (कटाई गीत)

(५) नूर्पुलु (अवगाहन गीत)

(६) पोलि (फसल गीत)

(७) मोट पाटलु (मोट या कपिल गीत)

अन्य व्यवसायो से सम्बन्धित गीत दो प्रकार के हैं

(१) गृह जीवन-सम्बन्धी (२) बाह्य-जीवन-सबधी।

गृह-जीवन-सम्बन्धी गीत रोकटि पाट (मूसल-गीत)

विसुर राति पाट (जतसार या चक्की गीत)

कव्वमु (मथनी गीत)

राट्नमु (चरखा गीत)।

बाह्य जीवन सम्बन्धी गीत विभिन्न क्रियाओ को सूचित करते हैं। कुछ लोग रस्सी बुनते हैं। कुछ लोग ईंट पत्थर ढोते हैं। कुछ लोग कुल्हाडी से पेड काटते हैं। कुछ लोग गाडी खीचते हैं। परिश्रम की थकान मिटाना ही इन गीतो का मुख्य उद्देश्य है। इन गीतो मे शृंगार का पुट रहता है।

ऋतु गीत– आन्ध्र-प्रदेश मे इन गीतो की सख्या अधिक नही है।

पर्व-गीत– बडी मात्रा म मिलते हैं। 'युगादि', 'सक्रान्ति' जातीय पर्व हैं। 'युगादि' पर्व नववर्ष के आगमन के उपलक्ष्य मे मनाया जाता है। सक्रान्ति फसल का पर्व है, विनायक चतुर्थी एव दशहरे के अवसर पर आठ-दस वर्ष की आयु के बच्चे गीत गाते हैं। 'बोडुम्मा' पर्व तेलगाना प्रात का जातीय पर्व है। स्त्रियाँ इसे विशेष रूप से मनाती हैं। जातीय पर्वों के अवसर पर गाये जाने वाले गीत 'जातीय पर्व-गीत' कहलाते हैं।

नैमित्तिक गीतो का सम्बन्ध किसी तिथि विशेष से नही होता। चेचक निकलने पर तेलगाना प्रात मे बोनालु आयोजित होता है। अन्य प्रातो मे 'जातर' या 'कोलुपु' का आयोजन किया जाता है।

नैमित्तिक पर्व-सबन्धी गीत दो प्रकार के हैं।

(१) संक्रामक बीमारियों से सम्बन्धित।

(२) देवी से सम्बन्धित

संक्रामक रोगों से सम्बन्धित अनेक गीत हैं। इनमें 'पोचम्मा' के गीत उल्लेखनीय हैं। आंध्र प्रदेश में 'शीतला' को 'पोचम्मा' कहते हैं। एल्लम्मा, कूनलम्मा, गोतालम्मा आदि साधारण देवी सम्बन्धी गीत उल्लेखनीय हैं।

जाति गीत– विशेष जाति के लोग गाते हैं। जाति विशेष के लोग अपना काम करते समय इन गीतों को गाते हैं। इन गीतों में उनके धंधे का उल्लेख रहता है। इन गीतों को हम 'विशेष-जाति-गीत' कह सकते हैं।

कुछ लोग जाति से भिक्षुक रहते हैं। आँध्र प्रदेश में अनेक ऐसी जातियाँ हैं, जो दर-दर घूमते हुए भीख माँगती हैं और गीत गाती हैं। इन लोगों के गीतों को हम 'भिक्षुक-जाति-गीत' कह सकते हैं। इनमें कुछ गीत स्त्रियों द्वारा गाये जाते हैं। ये स्त्री परक-गीत हैं। कुछ पुरुष गाते हैं। ये पुरुष परक-गीत है। विशेष-जाति-सम्बन्धी गीतों में निम्न लिखित गीत उल्लेखनीय हैं

(१) कोय मामा पाट, (२) गोल्ल पाट (ग्वाल-गीत), (३) चाकलि-पाट (धोबी गीत), (४) नेतगानि पाट (जुलाहा गीत), (५) पल्लेवानि पाट (मछुआ गीत), (६) पमुल्कापरि पाट (चरवाहा गीत), (७) मादिग पाट (चमार गान), (८) मालित पाट, (९) मेदरि-पाट, (१०) 'यानादि' पाट।

भिक्षुक-जाति-सम्बन्धी गीतों में निम्न लिखित गीत उल्लेखनीय हैं:

(१) काशी-कावडिवाडि पाट (काशी– कावडी वाला गीत)

(२) काशी पेट्टेवानि पाट (काशी पेटिका वाला गीत)

(३) कोतिदानि पाट (मदारिन गीत)

(४) गारडीवानि पाट (मदारी गीत)

(५) गोपाई-पाट (गुसाई-गीत)

(६) गगिरेद्दु पाट (वृषभ-गीत)

(७) बुडबुक्क पाट (डमरु वाला गीत)

(८) तुरकवानि पाट (तुरु-गीत)

(९) पामुल्वानि पाट (सँपेरा-गीत)

(१०) बोद-ब्राह्मणुनि पाट (गरीब-ब्राह्मण गीत)

(११) बिच्चकुल गीत (भिक्षुक गीत)

(१२) सातानिजिय्यरदासु पाट ।

क्रीडा गीत :

खेल-कूद के समय बच्चो के द्वारा अनेक गीत गाये जाते हैं। खेल सम्बन्धी गीतो का भण्डार समृद्ध है। ये गीत जन जीवन की व्यवहारिक चेतना व्यक्त करते हैं। इन गीतो से जहाँ मनोरजन होता है, वहाँ शारीरिक व्यायाम की प्रेरणा भी मिलती है। क्रीडा गीत प्राय अर्थहीन होते हैं। इनमे यमक और अनुप्रास का बाहुल्य रहता है। ऐसे गीतो को कुछ पडित 'ताल के गीत' कहते हैं। डा० सदाशिव कृष्ण फडके इन्हे 'ध्वनि गीत' कहते है। ये खेल ताल एव गीतो का समवाय ही बाल गीत का रूप लेता है। इनमे कुछ लय बद्ध गीत है, कुछ अर्थ-हीन गीत हैं व और कुछ हास्य तथा व्यग्य के गीत हैं।

क्रीडा-गीत दो प्रकार के हैं।

जो खेल अकेला बच्चा खेलता है उसे 'व्यक्तिगत' खेल कहते हैं। जो खेल सामूहिक रूप मे खेले जाते है उन्हे 'सामूहिक खेल' कहते हैं। कुछ खेल केवल बालिकाओ के लिए निर्दिष्ट है। कुछ खेल केवल बालक खेलते हैं। बालक और बालिकाओ के लिए व्यक्तिगत खेल लगभग एक जैसे है किन्तु सामूहिक खेलो मे भिन्नता होती है।

बालको के सामूहिक खेल चेडिगुडु, कबड्डी, गोलि बिल्ला (गिल्ली-डडा), बट्टे-आट (गोली) आदि है।

'चेंम्मचेक्क', 'ओय्यारि माम', 'ओप्पुलकुप्प', 'अच्चेनगाय' आदि बालिकाओ द्वारा खेले जाने वाले सामूहिक खेल है।

भक्ति गीत अनेक प्रकार के हैं। इन्हे दो भागो मे बाँटा जा सकता है–

(१) सगुण-भक्ति परक-गीत

(२) निर्गुण-भक्ति-परक गीत

भक्ति गीत गेय होते है। सगीत के बिना नामोच्चारण करने से मन चचल रहता है। दूसरा कारण यह है कि ईश्वर सगीत से जितना प्रसन्न होता है उतना दूसरे उपचारो से नही। सगुण-भक्ति-परक गीतो का सबध अधिकतर लोक-जीवन से है। 'मेलुकोलुपु' (प्रभात गीत) भजन, सकीर्तन व पूजा-गीत, कोलाट, तलुपु-दग्गरि पाटलु (द्वार-गीत), मगल आरती आदि सगुण-भक्ति-परक गीत हैं।

तेलुगु मे निर्गुण भक्ता को अचल योगी कहते हैं। साधु-सत निर्गुण भक्ति-परक-गीत गाते हैं। इनके गीतो का तत्वमु (लु) या 'वचन' (मुलु) भी कहते हैं। निर्गुण सतो के पदा को 'तित्ति' (भाषा) 'तत्वालु' भी कहते हैं।

'प्रकीर्ण' गीत अनेक है।

जोल पाटलु (लोरियाँ), लालिपाटलु (लालन-पालन गीत), प्रेम गीत आदि इस वर्ग के अतर्गत आते हैं। लोक गीतो मे लोरियाँ अपना विशेष स्थान रखती हैं। लालि पाट झूले के गीत हैं। एला, तिल्लाना आदि प्रेम प्रधान गीत हैं।

(ख) लोक-कथा —

आध्र लोक साहित्य मे लाक कथाओ की सख्या बहुत है। व्यापकता और प्रचुरता कीदृष्टि से इन गीतो का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

लोक कथाओ का विभाजन दो प्रकार से किया जाता है

(१) विषयानुसार (२) उद्देश्यानुसार।

हमार धार्मिक क्रिया कलापो मे लौकिक व्रतो का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन व्रता के सम्बन्ध मे अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। लोकोक्ति-कथाओ का प्रसार गाँवो म पाया जाता है। कुछ कथाओ का उद्देश्य केवल मात्र मनोरजन है। इन कथाओ को बाल-बच्चे बडे चाव से सुनते हैं। परमानद शिष्य की कथाएँ, रामलिंग की कथाएँ हास्यपूर्ण कथाएँ हैं। यो मनोरजन, नीति-कथन, इन लोक कथाओ का उद्देश्य रहता है।

(ग) लोक नाटय

नाटय जीवन की अनुकृति है। लोक-नाटय लोक-जीवन का प्रतिबिंब है।

कूचिपूडि भागवतम, कोलाट, तोल्बोम्मलाट (चर्म-पुतली गीत), पगटि वेषालु (दिन-दहाडे वेष धारण) बुर-कथा यक्षगान, हरिकथा आदि का आध्र क्षेत्र के लोक नाटयो म प्रमुख स्थान है।

(घ) सुभाषित

(१) लोकोक्तियाँ

लोक-साहित्य म लोकोक्तियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनकी परपरा भी अत्यत प्राचीन है।

आध्रक्षेत्र की बहु प्रचलित लोकोक्तियो मे हिन्दी एव तेलुगु मे समानार्थक कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं

अडविलो वेन्नेल काचिनट्लु
 जगल मे मोर नाचा, किसने जाना

असले कोति, कल्लु तागिदि, पैन तेलु कुट्टिदि
 एक तो करेला, दूसरा नीम चढ़ा

इटि पेर कस्तूरिवार इटिलो गब्बिलाल कपु
 आँख के अंधे, नाम नैन-सुख

इच्चि पुच्चु को मन्नारु
 इस हाथ देना उस हाथ लेना

एदडु ईनिदटे कोट्टमुलो कट्टिवेय मन्नारु
 हिजडे के घर बेटा हुआ

एवडु तीसिकोनिन गुट्ले वाडे पडुनु
 मियाँ की जूती मियाँ के सिर

एमी लेनि विस्तर एगिरेगिरि पडुतुदी
 अध जल गगरी छलकत जाय

ओकक देब्बकु रेंडु पिट्टलु
 एक पथ दो काज

ओकर ओरलो रेंडु कत्तुलिमडवु
 एक म्यान मे दो तलवारें नही समा सकती

ओडलु वड्लवच्चु, वड्लोडल वच्चु
 कभी नाव गाडी मे, कभी गाडी नाव मे

कािक पिल्ल काकिकि मुद्दु
 अपनी छाछ को खट्टा कौन कहे

कोडनु त्रव्वि एलुकनु पट्टिनट्लु
 खोदा पहाड निकली चुहिया

(२) पहेलियाँ

पद्यात्मक पहेलियाँ आध्र-लोक जीवन का अविच्छिन्न अग है। बालको एव वयस्को, स्त्रियो एव पुरुषो, शिक्षितो एव अशिक्षितो का इनसे मनोरजन होता है। ये मनोविकास के साधन भी है। अत इनसे धार्मिक, सामाजिक और सास्कृतिक तथ्यो का परिचय भी मिलता है। कतिपय पहेलियाँ उदाहृण

के लिए दी जा रही है—

गोडमीद बोम्म	दीवार पर खिलौना है
गोलुगुल बोम्म	जंजीरों का बना खिलौना है
वच्चे पोय्येवारिनि	आने-जाने वालों को
कट्टिचे बोम्म	डसने वाला खिलौना है।
(तेलु)	(बिच्छू)
चिगिरि चिगिरि गुड्डलु	चिथडे-चिथडे कपड़े हैं
मुत्यालवंटि बिड्डलु	मोती जैसे दाने हैं।
(मोक्क जोन्न)	(मकई)
कीलुकीलु पिट्ट	चिल्लाने वाली चिड़िया है
मेलवेसि कोट्ट	जमीन पर फेंक दें।
(चीमिडि)	(रीट)
वकरटिंकर 'सो'	टेढी-मेढी 'सो'
वाडि तम्मुडु 'अ'	उसका भाई 'अ'
नल्लनिपिल्ल 'म'	काली लडकी 'मि'
नाके मिस्ताडु 'ते'	मुझे दोगे क्या 'ते'

सो—सोंट
अ—अदरक
मि—कालीमिर्च
ते— तेने (मधु)

अतुलेनि चेट्टुनु	अनत वृक्ष है (आकाश)
अरवै नालुगे कोम्मलु	छियासठ डालियाँ हैं (तारे)
कोम्मकु कोटि पूवुलु	डालियो मे करोडो फूल हैं
पूवुकु रेंडे कायलु	फूलो मे दो फल है।
	(चाँद सूरज)

(३) मुहावरे:—

तेलुगु मे मुहावरे को 'नुडि' कहते हैं। लोक-साहित्य मे मुहावरो का प्रयोग होता है। इनमे लोक-संस्कृति का सजीव चित्रण मिलता हैं। हिन्दी-तेलुगु मे समान रूप से प्रयुक्त होने वाले कुछ मुहावरे—

आ० पतुलु की 'फोकलोर आफ तेलुगु' नामक पुस्तक नटेशन कपनी की ओर से प्रकाशित हुई।

लोक साहित्य के अध्येता श्री एल्लोराव ने कुछ सकलन प्रकाशित किये, जिनमे 'मधुर कवितलु', सरागालु, जानपद गेयालु भाग १–२ उल्लेखनीय है।

'स्त्रील रामायणपु पाटलु', 'पौराणिकपु पाटलु', 'पल्ले पदालु', लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान श्री कृष्णश्री के महत्त्वपूर्ण सग्रह हैं।

आध्र लोक साहित्य के सर्वश्रेष्ठ अन्वेषक ऋषिकल्प श्री गगाधरम से समस्त आध्र जगत् भली भाँति परिचित है। इनके सग्रह ग्रथो में 'सेलयेरु', 'पसिडि पलुकुलु' और 'जानपद गेय वाङमय व्यासावली' उल्लेखनीय हैं।

श्री प्रयाग नरसिंह शास्त्रीजी का एक सकलन तेलुगु 'पल्ले पाटलु' कविता पब्लिकेशन्स की ओर से प्रकाशित हुआ है।

'त्रिवेणी' आध्र लोक गीतो का आधुनिक सग्रह है।

श्री टेकुमल्ल कामेश्वरराव ने 'जनपद वाङमय चरित्र' नामक लेखो का उत्तम सग्रह प्रकाशित किया है। श्री हरि आदिशेषु ने 'जानपद वाङमय विशेषमुलु' नामक पुस्तक मे लोक गीतो का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

इल्लिदल सरस्वती की कृति 'जाति रत्नालु' म लोक प्रचलित कथानक गीतो की विवेचना की गयी है। इनकी अन्य कृति 'जीवन सामरस्यमु' म लोक-गीतो की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की गयी है।

'विज्ञान सर्वस्वमु' के तेलुगु सस्कृति नामक खड म लोक गीतो का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

'उप किरणालु' मे श्री वालसव ने लोक गीतो पर कुछ टिप्पणियाँ लिखी है।

'आध्रुल चरित्र–सस्कृति' नामक पुस्तक मे नीपु नामक आनुष्ठानिक लोक गीतो का विवरणात्मक अध्ययन है।

'सारस्वत नवनीतमु' मे श्री रामानुजम ने लोक गीतो की चर्चा की है।

मलपल्लि सामशेखर विरचित 'अनादृत वाङमय' नामक लेख पठ-नीय है।

सन् १९०६ ई० मे ई० थर्स्टन ने 'एथनोग्राफिक नोट्स इन सदर्न इंडिया' नामक प्रसिद्ध पुस्तक प्रकाशित की, जिसमे दक्षिण भारत की विभिन्न जातियों का गहरा अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। १९०९ ई० मे इनकी 'कस्टम्स ऐण्ड ट्राइब्स आव सदर्न इंडिया' प्रकाशित हुई। १९१२ ई० इनकी और एक प्रसिद्ध पुस्तक 'सुपरस्टीशन्स आफ सदर्न इन्डिया, प्रकाशित हुई, जिसमे दक्षिण भारत के लोगों के अंध-विश्वास, जादू-टोना, तत्र-मत्र, शकुन आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। 'हाइ मेनडाफ' नामक अग्रेज विद्वान् ने 'दी रेड्डीज आव दी विसान हिल्स' मे बाल-गीतों का सकलन किया है। एक अन्य पुस्तक 'दी चेंचूज' मे इसी विद्वान ने 'चेंचु' नामक आदि जाति से सबधित नृत्य-परक बाल-गीतों का अग्रेजी मे अनुवाद प्रस्तुत किया है, साथ मे मूल गीत भी रोमन लिपि मे दिये गये हैं। सन् १९४५ मे स्मील ने 'फोक साग्स आव साउथ इडिया' नामक पुस्तक प्रकाशित की।

सी० पी० ब्राउन ने एशियाटिक जर्नल (वर्ष १८४१, अक ३४) मे बोब्बिलि, नागम्मा आदि कथात्मक गीतों का उल्लेख किया।

जे० ए० ब्राउन ने 'दी इडियन एटिक्वेरी' (वर्ष १८७४, अक ३) मे दक्षिण भारत के कुछ लोक गीतों का सविवरण अनुवाद प्रकाशित किया है, जिसमे 'सर्वायि पापडु कथा' मुख्य है।

आसवाल्ड कूलड्रे ने लोक सगीत पर 'इडियन आर्ट ऐण्ड लेटर्स' (वर्ष ९३७, अक ६) मे लेख प्रकाशित किया है।

यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता है कि पिछली शताब्दी मे आध्र लोक गीतों का प्रथम सग्रह एव प्रकाशन कब किस भारतीय लेखक न किया। उपलब्ध आध्र लोक-गीतो के सग्रह-ग्रथो मे श्री नदिराजु० चलपतिराव द्वारा सकलित 'स्त्रील पाटलु' (सन् १९००) सबसे पहला प्रयत्न ज्ञात होता है।

सन् १९०५ मे म० रगनाथराव ने स्त्रील पाटलु' नामक सग्रह प्रकाशित किया।

मद्रास से एन० पी० गोपाल ऐण्ड कपनी, आ० रे० राजु (१९०८), रगस्वामी मुदलियार (सन् १९१५) ने कुछ सकलन प्रकाशित किये।

सन् १९२४ मे टेंकुमल्ल अच्युतराव ने 'आध्र पदमुलु, पाटलु' नामक सग्रह सीताराम प्रेस, नरसपुर से प्रकाशित किया।

ई० १९३० मे 'पात पाटलु नामक लोक गीतो का सग्रह श्री टेंकुमल्ल कामेश्वरराव ने किया, जो इडिया प्रिंटिंग वर्क्स की ओर से प्रकाशित हुआ था।

आ० पत्तुलु की 'फोकलोर आफ तेलुगु' नामक पुस्तक नटेशन कपनी की ओर से प्रकाशित हुई।

लोक साहित्य के अध्येता श्री एल्लोराव ने कुछ सकलन प्रकाशित किये, जिनमे 'मधुर कवितलु', सरागालु, जानपद गेयालु भाग १–२ उल्लेखनीय है।

'स्त्रील रामायणपु पाटलु', 'पौराणिकपु पाटलु', 'पल्ले पदालु', लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान श्री कृष्णश्री के महत्त्वपूर्ण सग्रह हैं।

आध्र लोक साहित्य के सर्वश्रेष्ठ अन्वेपक ऋषिकल्प श्री गगाधरम से समस्त आध्र जगत् भली भाँति परिचित है। इनके सग्रह-ग्रथों मे 'सेलयेरु', 'पसिडि पलुकुलु' और 'जानपद गेय वाड्मय व्यासावळी' उल्लेखनीय है।

श्री प्रयाग नरसिंह शास्त्रीजी का एक सकलन तेलुगु 'पल्ले पाटलु' कविता पब्लिकेशन की ओर से प्रकाशित हुआ है।

'त्रिवेणी' आध्र लोक गीतो का आधुनिक सग्रह है।

श्री टेकुमल्ल कामेश्वरराव ने 'जनपद वाड्मय चरित्र' नामक लेखों का उत्तम सग्रह प्रकाशित किया है। श्री हरि आदिशेषु ने 'जानपद वाड्मय विशेषमुलु' नामक पुस्तक मे लोक गीतो का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

इल्लिदल सरस्वती की कृति 'जाति रत्नालु' मे लोक प्रचलित कथानक गीतो की विवेचना की गयी है। इनकी अन्य कृति 'जीवन सामरस्यमु' मे लोक-गीतो की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की गयी है।

'विज्ञान सर्वस्वमु' के तेलुगु सस्कृति नामक खड मे लोक गीतो का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

'उप. विरणालु' मे श्री वात्सव ने लोक गीतो पर कुछ टिप्पणियाँ लिखी है।

'आध्रुल चरित्र–सस्कृति' नामक पुस्तक मे नोमु नामक आनुष्ठानिक लोक गीतो का विवरणात्मक अध्ययन है।

'सारस्वत नवनीतमु' मे श्री रामानुजम ने लोक गीतों की चर्चा की है।

मलपल्लि सोमशेखर विरचित 'अनादृत वाड्मय' नामक लेख पठनीय है।

डाक्टर वी० रामराजु ने आंध्र लोक गीतो पर 'आंध्र जानपद साहित्यमु' नामक शोध-प्रबंध तेलुगु मे प्रस्तुत किया है। तेलुगु मे लोक गीतो पर यह अपने ढग की पहली पुस्तक है।

एम० एन० श्रीनिवासन ने बम्बई विश्वविद्यालय की पत्रिका (वर्ष १९४५, अक ४) मे 'सम तेलुगु साग्स' नामक लेख प्रकाशित किया है।

श्री वे० सभा ने रायल सीमा के, विशेषतया चितूर जिले मे प्रचलित अनेक लोकगीतो का सकलन किया है।

श्री तूमटि दोणप्पा ने लोक साहित्य सबधी कतिपय लेखो को अनेक पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित किया।

श्री मल्लेल नारायण 'रायल सीमा' प्रात के लोक-साहित्य के उत्साही सग्रहकर्ता हैं। वे बडी तत्परता से विविध लोकगीतो का सग्रह कर रहे हैं।

श्री वादगानी ने मोट गीतो का सकलन किया है।

श्रीकृष्ण श्री ने 'भारती' नामक तेलुगु पत्रिका मे लोकगीतों का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया है।

'कामेश्वरी कोलुपु' पर सर्वश्री सोमसुन्दर शर्मा एव यामिजाल पद्मनाभमु —इन दोनो प्रकाड पडितो ने आंध्र पत्रिका मे विचारोत्तेजक लेख प्रकाशित किये।

समय-समय पर पत्र पत्रिकाओ मे प्रकाशित ये लेख उल्लेखनीय है।

विषय	लेखक	पत्रिका
आन्ध्र देश जानपद गेयमुलु	कवि कोडल	आन्ध्र महिला, अगस्त १९५०
जानपद गेय रीतुलु	,,	,, मई १९६०
पडव पाटलु	,,	भारती, १९६०
शिशु सगीतमु	ललितादेवी	गृहलक्ष्मी, १९४१
जोललु	मैत्रेयी	गृहलक्ष्मी, सितबर, १९४९
पल्ले पदालु, स्त्रील पाटलु	रगाराव	गृहलक्ष्मी १९४१
एरुक	चिंता दीक्षितुलु	भारती, १९४८
स्त्रील देशीय गेयालु	श्री प्रयाग	आन्ध्र महिला, दिसबर-१९४७
कोलाट	रा कु चक्रवर्ती	भारती, दिसबर १९५१
जानपद गीतालु	राज शेषगिरी	आन्ध्र प्रभा

अन्य प्रांतो मे रहते हुए भी जिन लोगों ने आन्ध्र के लोक गीतों का संग्रह किया है उनका भी यहां उल्लेख होना चाहिए।

स्वर्गीय रामनरेश त्रिपाठी आन्ध्र प्रदेश पधारे और उन्होने यहां के अनेक लोकगीतो का संग्रह किया। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने 'धरती गाती है' नामक लोक गीत सग्रह मे भारत के सभी प्रातो के गीतों का संग्रह किया है।

तेलुगु भाषा-भाषी हिंदी के लेखकों की दृष्टि भी लोक साहित्य की ओर आकृष्ट हुई है।

सर्वश्री डा. पाडुरंगराव, वेमूरि राधाकृष्ण मूर्ति, डा. मंजुलता, दडमूडि महीधर, दोनेपूडि राजाराव, बालशौरि रेड्डी, जी. एस. राम, क. राजशेषगिरिराव, भीमसेन 'निर्मल', हनुमच्छास्त्री, वाराणसि राममूर्ति 'रेणु' आदि हिंदी लेखको ने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे लोक-साहित्य सबधी लेख प्रकाशित किये।

इन पक्तियो के लेखक ने *'आन्ध्र की लोक कथाएँ'* नामक पुस्तक लिखी है, जो आत्माराम ऍड सन्स, दिल्ली की ओर से प्रकाशित हुई है। इसी प्रकाशक की ओर से आन्ध्र की लोककथाएँ, भाग २, ३ भी प्रकाशित हुई है। तेलगाना की लोक कथाएँ भी इनकी ओर से प्रकाशित हुई है। ' आन्ध्र की लोक कथाएँ ' नामक अन्य सग्रह दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा ने प्रकाशित किया है।

लोक गीतों में साम्य :—

लोक-साहित्य किसी देश–विशेष की जनता की सस्कृति का प्रतिबिंब होता है। यद्यपि प्रत्येक जनपद के लोक-साहित्य की अपनी विशेषता है, तब भी उसमे समस्त राष्ट्र की आत्मा मुखरित होती है। उसकी विभिन्नता मे एकता के दर्शन होते हैं, जिससे प्रमाणित होता है कि भारत अतीत मे राजनीतिक दृष्टि से भले ही विभाजित रहा हो, पर उसका सास्कृतिक ऐक्य कभी खडित नही हुआ।

लोक-जीवन मे व्रत और अनुष्ठान का अत्यत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। आनुष्ठानिक व्रत को तेलुगु मे 'नोमु' कहते हैं। 'नोमु' एव व्रज के आनुष्ठानिक व्रतो मे अधिक साम्य विद्यमान है। इनमे पारिवारिक मगल, कल्याण-समृद्धि, दूध-पूत से फूलने-फलने की भावना, सकट-मोचन की अभिलाषा

व्याप्त है। लोकानुष्ठानों में स्त्रियों की प्रधानता है। अधिकारा लोकानुष्ठानों में पौरोहित्य का लोप हो गया है।

भारतीय लोकगीतों में विवाह–गीतों का वर्ण्य-विषय प्राय समान है। भिन्न-भिन्न प्रथाओं के कारण कुछ भेद अवश्य हैं, पर इनमें मौलिक एकता विद्यमान है। धधों से सबधित गीतों में प्रेम और श्रम गलबाही डाल कर चलते हैं। कृषि सबधी विभिन्न कार्यों को पूरा करते समय कृषि-गीत गाये जाते हैं। शतपथ ब्राम्हण ने कर्षण (जानना), वपन (बोना), ल्वन (काटना) तथा मदन (मांडना) चार ही शब्दों में कृषि कर्म की पूरी प्रक्रिया का वर्णन किया है। यही क्रम भारत भर में कुछ लौकिक भेदों सहित आज भी विद्यमान है। क्रीडा-गीत बाल-गीत हैं। भारत भर में एक तरह के खेल खेले जाते हैं। 'बुर्र' कथाओं को मराठी में 'पवाडा' कहते हैं। यह वीरो, प्रेमियो, स्थानीय या पौराणिक देवताओं पर लिखे जाते है।

लोक गीतो में विश्व बधुत्व का भाव रहता है। लोकगीतों में कला पक्ष की दृष्टि से निम्नलिखित सार्वभौम प्रवृत्तियाँ मिलती हैं– (१) टेक (२) निरर्थक शब्दों का प्रयोग (३) पुनरावृत्ति (४) प्रश्नोत्तर - प्रणाली (५) अतिशयोक्ति (६) अतहीन परिगणना। इन प्रवृत्तियों के उदाहरण भारतीय एव पाश्चात्य लोकगीतो में मिलते हैं।

उपसहार —

अन्त मे आन्ध्र के लोक साहित्य की प्रमुख समस्याओं का निरूपण करना चाहता हूँ। आन्ध्र लोक साहित्य के सकलन और प्रकाशन का कार्य जो अब तक हुआ है वह सतोषजनक नहीं है। अच्छे लोकगीतों का रिकार्डिंग किया जाय, इससे लोकगीतों के सौंदर्य की रक्षा और प्रचार सहज ही हो सकेगा। लोकगायकों को उचित आदर एव स्थान नहीं मिलता, यह स्थान अवश्य मिलना चाहिए। लोक-साहित्य की रक्षा आन्ध्र सरकार पर भी निर्भर है। लोक साहित्य अकादमी की शाखा अन्ग हो तो सुचारु रूप में कुछ ठोस कार्य करने की सभावना है। भारतीय भाषाओं के लोक साहित्य से आन्ध्र के लोक साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन हो तो भावात्मक एकता को अधिक बल प्राप्त होगा। आन्ध्र प्रात के हिंदी प्रचारक यह कार्य करने के लिए समर्थ हैं, क्योंकि इन्हे दोनों भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त है। आन्ध्र लोक-साहित्य के अध्ययन, मनन तथा प्रचार के लिए एक सामान्य मच की आवश्यकता है। रायलसीमा, तेलगाना और तटवर्ती भाग मे क्षेत्रीय सस्थाओं की

स्थापना हो, यो पूरे प्रदेश तथा अखिल भारतीय सगठन की गुजाइश भी है। इस प्रयाग मे अखिल भारतीय लोक सस्कृति सम्मलन की सेवा प्रशसनीय है। आन्ध्र लोक साहित्य के अध्ययन के उद्देश्य से एक पत्रिका का प्रकाशन अग्रेजी हिंदी एव तेलुगु मे हो। भारतीय लोक साहित्य भारतीय सस्कृति की अमूल्य निधि है। हर्ष का विषय यह है कि भारतीय विद्वानो का ध्यान लोक साहित्य की ओर आकृष्ट हुआ है। यदि प्रत्येक प्रात या जनपद के लोक साहित्य का इसी प्रकार अध्ययन किया जाय तो भारतीय सस्कृति के सूत्रो को सहज ही एकत्रित किया जा सकता है और यह सिद्ध किया जा सकता है कि वह भिन्न रूपो मे भी अभिन्न है।

तेलुगु का आधुनिक काव्य साहित्य

श्री वेमूरि राधाकृष्ण मूर्ति

हमारा भारत प्राचीनकाल से अनेक भाषाओ, विभिन्न धर्मों और तरह-तरह के आचार विचारो का सगम रहा है। भौगोलिक और राजनीतिक दृष्टि से यद्यपि हमारा देश विभिन्न राज्यो मे बँटा हुआ है फिर भी सास्कृतिक दृष्टि से एक है। यह अनेकता मे एकता ही भारत की सब से बडी विशेषता है। इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण तेलुगु का आधुनिक काव्य साहित्य है। थोडे बहुत परिवतन के साथ भारत की सभी भाषाओ के साहित्य मे समान प्रवृत्ति दिखाई देती है।

अध्ययन की सुविधा के लिए तेलुगु का आधुनिक काव्य साहित्य चार भागो मे विभाजित किया जा सकता है।

१ प्रथम उत्थान —सन् १८५७ ई० से १९१० तक।
२ द्वितीय उत्थान —सन् १९१० ई० से १९३५ तक।
३ तृतीय उत्थान —सन् १९३५ ई० से १९५२ तक।
४ चतुर्थ उत्थान —सन् १९५२ ई० से आज तक।

प्रथम उत्थान —

सन् १८५७ ई० के बाद अन्य प्रातो की भाँति पढे लिखे तेलुगु भाषा-भाषियो मे एक ओर अंग्रेजी के प्रति आकर्षण बढ रहा था तो दूसरी ओर विजयनगरम, पीठापुरम, वनपर्ती गद्वाल और आमकूर जैसी छोटी-छोटी रियासतों मे सस्कृत भाषा और उसके साहित्य का आदर-सम्मान हो रहा था। तेलुगु साहित्य मे द्व्यर्थी काव्यो तथा सस्कृत समासो व क्लिष्ट उक्तियो स युक्त भाषा का प्रयाग होता था। आम तौर पर तेलुगु भाषा और उसके साहित्य के प्रति उदासीन भावना व्याप्त थी। उस समय ऐसे कवियो की आवश्यकता थी जो उपर्युक्त उदासीनता का सामना कर सकें और तेलुगु भाषा और उसके साहित्य को सम्मान दिला सकें। यद्यपि श्रीपाद कृष्णमूर्ति शास्त्री, वड्डादि सुब्बारायडु,

कोदकोडा वेंकटरत्नम, वाविलिकोलनु सुब्बराव, पिसुपाटि चिदंबर शास्त्री, मल्लादि सूर्यनारायण शास्त्री और जनमचि शेषाद्रि शर्मा जैसे प्रकांड विद्वान और कवियो ने भारत, भागवत तथा रामायण आदि के अनुवाद के साथ-साथ कितने ही उत्तम काव्यो का सृजन किया था तथापि उनकी गणना पुरानी काव्य परंपरा के अन्तर्गत ही होती थी। उसी समय दिवाकर्ल तिरुपति शास्त्री और चेल्लापिल्ला वेंकट शास्त्री नामक दो ऐसे महान् कवियो का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने अपने विविध काव्यों तथा अष्टावधान व शतावधानो के द्वारा तेलुगु कविता की धूम मचा दी। तिरुपति शास्त्री और वेंकट शास्त्री दोनो मिल कर कविता करते थे। दोनो "तिरुपति वेंकट कवि" कहलाते थे। वे दोनों तेलुगु और सस्कृत के आशुकवि थे। उन्होने तेलुगु कविता का झडा अपने सुदृढ हाथों मे थामा। वे आंध्र प्रदेश की लगभग सभी रियासतो मे गये। वहाँ के पडितों से इन लोगो ने शास्त्रार्थ किया।

"दोस मटचेर्रिगियुनु दुदुडु कोप्पग वेंचिनारमी
मीसमु रेंडु भापलकु मेमे कवींद्रुल मचु देलपगा
रोसमु गलिगन गविवरुल ममु गेल्वुडु गेल्तुरेनियी
मीसमु दीसि मीपद समीपमुलदललुचि मोक्कमे।"

"हम जानते हैं कि मूँछें बढाना दोष का काम है। (आंध्र प्रात के वैदिक ब्राह्मण, जिनके माता-पिता जीवित हैं, मूँछें नही रखते।) फिर भी यह जताने के लिए कि तेलुगु और सस्कृत, दोनो भाषाओं के हम कवींद्र हैं, ढिठाई के साथ हमने मूछें रखाई है। हमारे इस कार्य से यदि कविवरो को गुस्सा आता हो तो वे हमें कविता मे हरावें। हम अपनी मूँछें कटवा कर उनके चरणों पर रख कर सर झुका के प्रणाम करेंगे।"

इस भीषण प्रतिज्ञा के साथ वे जहाँ जाते वही विद्वानो का जमघट लग जाता। उनके अथक परिश्रम से कुछ ही दिनो में आंध्र प्रात के राजदरबारों से ले कर अनपढ, गरीब देहातियों की झोंपडियो तक तेलुगु कविता का प्रचार हुआ। दोनों कवियो ने श्रवणानंदमु, बुद्ध चरितमु, गीरतमु, नानाराज संदर्शनमु, कामेश्वरी शतकमु आदि काव्यो, महाभारत की कथा के आधार पर लिखे गये नाटको और अष्टावधानो तथा शतावधानो के द्वारा तेलुगु साहित्य को नया जीवन दिया। तेलुगु की आधुनिक साहित्य धारा के विख्यात कवि विश्वनाथ सत्यनारायण, पिंगलि लक्ष्मीकातम, काटूरि वेंकटेश्वरराव आदि उन्ही के शिष्य हैं। उपर्युक्त सभी कारणो से वेंकट कविद्वय के बारे मे यह कथा प्रच-

लित हो गयी है कि "उनकी वाणी पुरानी धारा की कविता के लिए भरत-वाक्य और नवीन धारा की कविता के लिए नांदीवाक्य है।"

द्वितीय उत्थान

इस युग का तेलुगु काव्य साहित्य काफी सुसपन्न है। एक ओर राजा राममोहन राय के ब्रह्म समाज, स्वामी दयानद सरस्वती के आर्य समाज, तथा रामकृष्ण परमहस और स्वामी विवेकानन्द के धार्मिक आन्दोलनो से, तो दूसरी तरफ स्वतत्रता-सग्राम और अग्रेजी तथा बगला के प्रसिद्ध कवि शेली, कीट्स, वर्ड्सवर्थ तथा रवीद्रनाथ आदि के काव्यो से आंध्र के शिक्षित युवक प्रभावित हुए है।

आधुनिक तेलुगु को नयी दिशा प्रदान करने वालों मे स्वर्गीय वीरेश-लिंगम पतुलु और स्वर्गीय गिडुगु राममूर्ति पतुलु प्रधान हैं। वीरेशलिंगम पतुलु समाज सुधारक थे। फिर भी अनेक पाठ्य-पुस्तकें लिखी। उन्होने उपन्यास, नाटक, आत्मकथाएँ लिखी। समालोचना के क्षेत्र मे भी वे स्मरण किये जाएँगे। वर्षों से जमे हुये सामाजिक अधविश्वासो का खडन करके नवीन क्रांतिकारी विचारो का प्रचार करने मे वीरेशलिंगम की लेखनी ने वज्र की तरह काम किया, लेकिन तेलुगु भाषा के विषय मे उन्होंने प्राचीन परिपाटी का ही अनु-सरण किया।

स्व० गिडुगु राममूर्ति पतुलु ने भाषा मे परिवतन लाने का प्रयत्न किया। तेलुगु भाषा के दो स्वरूप है, ग्रान्थिक और व्यावहारिक। ग्रान्थिक तेलुगु सस्कृतनिष्ठ पडिताऊ ढग की होती है। आम जनता के लिए वह दुरूह है। व्यावहारिक तेलुगु पडितो के विरोध के कारण साहित्य जगत् मे मान्यता प्राप्त नहीं कर सकी। पडितों ने गँवारू कह कर उसे ठुकराया। ऐसी हालत मे गिडुगु राममूर्ति पतुलु ने व्यावहारिक तेलुगु का पक्ष लेकर जबर्दस्त आन्दोलन किया। उपर्युक्त सभी प्रभावो के फलस्वरूप तेलुगु के आधुनिक काव्य साहित्य मे नई प्रवृत्तियो का श्रीगणेश हुआ, जिनमे राष्ट्रीय भावना, भावकविता (छायावाद), मर्मकविता (रहस्यवाद), हालावाद उल्लेखनीय हैं।

राष्ट्रीय भावना—

तेलुगु की राष्ट्रीय कविता की विशेषताओ मे, राष्ट्रीय वीरो का गान, राष्ट्रपतन के लिए दुःख प्रकाश, समाज की अवनति के प्रति क्षोभ, कुरीतियो के परिहार के लिए अधीरता व तत्परता, हिन्दू हिर्नपिता तथा भाषावार

राज्यो के सिद्धात के अनुसार अलग आध्र राज्य की स्थापना का समर्थन आदि मुख्य हैं। उस समय आन्ध्र मद्रास राज्य मे था। आध्रो का अपना स्वतत्र प्रान्त नही था। आध्र की जनता इस स्थिति से असन्तुष्ट थी। आध्र राज्य की स्थापना के लिए आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। तेलुगु के कितने ही देश-भक्त कवियो ने आध्र राज्य की स्थापना का प्रचार किया। ध्यान देने की बात यह है कि आध्र प्रात म प्रातीय भावना किसी भी रूप मे राष्ट्रीय भावना के लिए घातक सिद्ध नही हुई।

देशभक्ति, समाजसुधार और विश्वप्रेम को अपनी कविता का आधार बना कर, व्यावहारिक तेलुगु भाषा का आश्रय लेकर पहले पहल स्व० गुरजाड अप्पाराव ने तेलुगु मे कविताएँ लिखी। नये विचार और नयी अभिव्यजना प्रणाली को अपना कर परवर्ती कवियो के लिए गुरजाड अप्पाराव ने पथ प्रदर्शन किया। इनकी "देशभक्ति" शीर्षक कविता बहुत प्रसिद्ध हो चुकी है। वे देश वासियो को सबोधित करते हैं—

देश को तू प्यार कर	भूल जा तू स्वार्थ अपना
भलाई के काम कर	साथियो की मदद करना
व्यर्थ की बकवास तजकर	देश का क्या अर्थ मिट्टी ?
देश हित की बात कर ॥	देश का है अर्थ मानव ॥

आधुनिक तेलुगु साहित्य मे श्री रायप्रोलु सुब्बाराव का विशेष स्थान है। राष्ट्रीय भावना से सबधित आपके पद्य आंध्र प्रदेश के हर बच्चे की जबान स सुनने को मिलते है। वे कहते हैं—

'ए देश मेगिना एदु कालिडिना
ए पीठ मेक्किना एव्व रेमनिना
पोगडरा नी तल्लि भूमि भारतिनि
निलपरा नी जाति निडु गौरवमु।'

'तुम किसी देश मे जाओ तुम वही अपने पाँव रखो, लोग चाहे जो कुछ कहे किसी की परवाह मत करो सर्वत्र भारत माता की प्रशसा करो, राष्ट्र को अपमानित मत होने दो।'

देशभक्ति की कविताओ के अतिरिक्त रायप्रोलु ने अनेक प्रबोधात्मक कविताएँ लिखी हैं, जिनसे सुप्त आध्र जनता जागृत हुई हैं। ये कविताएँ 'आन्ध्रावली और तेनुगु तोटो' मे सगृहीत हैं। तेलुगु भाषा भाषियो की राष्ट्रीय अभिलाषाएँ रायप्रोलु की कविताओ के रूप मे साकार हो उठी।

तेलुगु के आधुनिक साहित्य में श्री विश्वनाथ सत्यनारायण का वही स्थान है जो आधुनिक हिन्दी साहित्य में जयशंकर 'प्रसाद' का है। विश्वनाथ एक ही साथ सर्वतोमुखी प्रतिभा संपन्न कवि, उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार, समालोचक, कुशल संपादक, सफल आचार्य, वक्ता और गायक हैं। वे राष्ट्रीय आन्दोलन में दूर नहीं रहे। देशभक्ति से संबंधित उनके काव्यों में "कुमाराभ्युदय" या "वल्ली सेना की विजय" तथा "झाँसी रानी" मुख्य हैं। "आन्ध्र प्रशस्ति" और "आन्ध्र पौरुष" विश्वनाथ के प्रबोधात्मक काव्य हैं।

भाव-भाषा, रहन-सहन और आचार-विचार में प्राचीन परम्परा को न छोड़ते हुए, अपनी सच्चरित्रता की रक्षा करने वाले तथा पूज्य बापूजी के सिद्धान्तों का प्रचार तथा अनुसरण करते हुये विभिन्न काव्यों की रचना करने वाले यशस्वी कवि हैं– श्री तुम्मल सीतारामभूर्ति चौधरी। उनका "राष्ट्रगान" नामक काव्य राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत है। आप सर्वोदय के प्रबल समर्थक है।

माखनलाल चतुर्वेदी "एक भारतीय आत्मा" की "पुष्प की अभिलाषा" तेलुगु सुमन की "आकांक्षा" बन कर श्री वेदुल सत्यनारायण शास्त्री की कोमल हृत्तंत्री में झंकृत हो उठी। अपनी कड़ी मेहनत, गंभीर अध्ययन और अनुपम प्रतिभा के बल पर अमूल्य काव्यरत्नों का सृजन कर, तेलुगु के आधुनिक कवियों में विशेष स्थान प्राप्त करने वाले तपस्वी कवि श्री जापुवा ने भी राष्ट्रीयता का गान किया है।

शतावधानी राजशेखर कवि ने महाराणा प्रतापसिंह की देशभक्ति और महान् त्याग का वर्णन करते हुये तेलुगु में प्रबन्ध काव्य की रचना की। उसी प्रकार छत्रपति शिवाजी की जीवनी को लेकर गडियाम् शेष शास्त्री ने "शिव भारतम्" नामक काव्य की रचना की। ये दोनों काव्य पुरानी धारा के अंतर्गत आते हैं। दोनों ने आंध्र जनता में देशभक्ति की भावना को उद्दीप्त करने में सफलता प्राप्त की।

तेलुगु साहित्य जगत् के श्रेष्ठ समालोचक स्व० कट्टमंचि रामलिंगारेड्डी-जी ने "मुसलम्मा मरण" (वृद्धा का मरण) शीर्षक काव्य की रचना की।

उपर्युक्त कवियों के अलावा गरिमेल्ल सत्यनारायण, बसवराजु अप्पाराव, एटुकूरि नरसय्या, पिंगली और काटूरि कविद्वय, मंगिपूडि, पुट्टपर्ति, पँडिपाटि, करुणश्री, दाशरथी और कालोजी नारायण कितने ही कवियों ने अपनी रचना

ने तेलुगु भाषा भाषियो मे राष्ट्रीय भावना को जागृत करने मे महान् योग दिया है।

भाव कविता और मर्म कविता

हिन्दी मे छायावाद और रहस्यवाद के नाम से जो काव्य प्रवृत्तियाँ प्रचलित हैं, वे तेलुगु मे भाव कविता और मर्म कविता के नाम से प्रचलित हैं। प्रारम्भ मे इन प्रवृत्तियो का तीव्र विरोध हुआ तो "साहिती समिति" तथा "नव्य साहित्य परिषद" नामक साहित्य सस्थाओ ने इस धारा को काफी प्रोत्साहन दिया। आत्मपरक गेय काव्यो का सृजन होने लगा। तेलुगु की भाव तथा मर्म कविताओ मे सक्षेप मे निम्न लिखित विशेषताएँ पायी जाती हैं।

(१) व्यक्तिवाद या आत्माभिव्यजना, (२) प्रकृति के साथ तादात्म्य की भावना, (३) सौंदर्य भावना, (४) पुरातन के प्रति प्रेम, (५) प्रणय, आकाक्षा, विरह और दुःख, (६) देशप्रेम, (७) प्रतीक पद्धति, (८) छन्दो के नियमो का उल्लघन, नये छन्दो का सृजन, (९) गेय काव्यो की अधिकता, (१०) आध्यात्मिकता का प्रभाव, (११) जड प्रकृति पर चेतना का आरोप, (१२) प्रेम प्रधान काव्यों की रचना।

यद्यपि वेंकट पार्वतीश्वर कवियो के "एकातसेवा" नामक काव्य मे इन प्रवृत्तियो का वर्णन पाया जाता है, तथापि तेलुगु के काव्य साहित्य मे अवलुप्त शृगार को प्रधानता देकर इन प्रवृत्तियो को प्रभावशाली ढग से प्रस्तुत करने का श्रेय श्री रायप्रोलु सुब्बाराव को ही दिया जाता है। उन्हे शातिनिकेतन मे रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आपने भारतीय साहित्य और सस्कृति को हृदयगम करके पाश्चात्य साहित्य व सस्कृति से प्रभावित हो कर दोनो का मगलमय समन्वित रूप कविता म प्रस्तुत किया। भाव और मर्म कविताओ से सबधित रायप्रोलु के काव्यों म तृणकक्ण, रम्यालोक, माधुरी दर्शन, स्वप्न कुमार, वनमाला तथा ललिता—उल्लेखनीय है।

फिर इन प्रवृत्तियो के विकास मे श्री बायनि सुब्बाराव, अब्बूरि रामकृष्णराव, स्वामी शिवशकर, नडूरि सुब्बाराव, वसवराजु अप्पाराव, अडवि बापिराजु, दुब्बूरि रामिरेड्डी तथा पिंगलि काटूरि कविद्वय ने अपना बहुत योग दिया है। इन काव्य प्रवृत्तियो का चरम उत्कर्ष श्री देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री की कविता मे दिखायी देता है। कृष्ण शास्त्री की कविता के कारण भाव तथा मर्म कविता को तेलुगु साहित्य मे स्थायी स्थान प्राप्त हुआ। भाव-कविता के प्रतिनिधि कवि के रूप मे कृष्ण शास्त्रीजी को मान्यता प्राप्त हुई।

कृष्णशास्त्री के कृष्णपक्ष, कन्नीरु (आँसू), प्रवास और ऊर्वशी नामक गेय काव्यो का बहुत महत्त्व है।

प्रणय और विलाप का वर्णन करने मे श्री विश्वनाथ सत्यनारायण ने अद्भुत प्रतिभा दिखायी। उनके शृगारवीथि, शशिदूत, गिरिकुमार के प्रेमगीत और वरलक्ष्मी त्रिशती नामक काव्य इस धारा के अतर्गत आने वाले उल्लेखनीय काव्य हैं। उपर्युक्त कवियो के अलावा इस दिशा मे श्री इदुगटि हनुमत् शास्त्री, मल्लवरपु विश्वेश्वरराव, पिलका गणपति शास्त्री और पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलु आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं। इस धारा से नरधिन तृणक्कण, रम्यालोक, सौभद्रुनि प्रणययात्रा, येंकिपाटलु, हृदयेश्वरी, बकुलमालिका, वन कुमारी, जलदागना, तालकरि, कृष्णपक्ष, कन्नीरु, ऊर्वशी, शशिकला, गिरिकुमार के प्रेमगीत, वरलक्ष्मी त्रिशती, किन्नेरसानि पाटलु तथा नदी सुन्दरी आदि कितने ही कथा प्रधान गेय काव्यों, मुक्तक गीतो तथा प्रगीतो के सग्रह से तेलुगु के आधुनिक साहित्य की श्रीवृद्धि हुई है।

हालावाद

अन्य भाषाओ के कवियो की तरह उमरखय्याम की कविताओ का प्रभाव तेलुगु के आधुनिक कवियो पर भी पडा है। श्री रायप्रोलु सुब्बाराव ने हालावाद को तेलुगु मे प्रस्तुत किया। उमर अलीशा तथा हरिकथा पितामह आदिभट्ल नारायणदास और बुर्गुल रामकृष्णराव ने उमर खय्याम की रुबाइयो का अनुवाद तेलुगु मे किया है। इस धारा के प्रसिद्ध तेलुगु कवि दुव्वूरि रामिरेड्डी है। उमर खय्याम की रुबाइयो का सार ग्रहण कर रामिरेड्डी ने तेलुगु मे मौलिक काव्य लिखा है। रेड्डी ने अपने प्रयत्न के बारे मे लिखा है—

"तेलुगुदोटल वच्चबील्ल ननुरक्ति वानशाला प्रति
ष्ठलु गाविचि खयामु काव्यरस भांडमुल गुलाबीलु बु-
-लबुलि पिट्टलू मधुपान पात्रिकलु सोपुल गुलुकु साकीयु भू
तल नाक वोनरिप निल्पि रसिकाध्र प्रीति गाविचितिन्।"

'तेलुगु साहित्य के उद्यानो और हरे-भरे चरागाहो मे मैंने बडे प्रेम से मधुशाला स्थापित की है। इसम मैंने खय्याम का काव्यरस, गुलाब के फूल, बुलबुल, मधु के प्याले और इठलाती बल खाती साकी को मैंने इसलिए प्रस्तुत किया है कि पृथ्वी स्वर्ग बन जाये। रसज्ञ आध्र जनता का हृदय मेरे इस प्रयास से झूम उठा है।" रेड्डीजी की कविता के कारण उमर खैयाम का नाम तेलुगु भाषा-भाषियो के बीच अमर हो गया।

सन् १९३५ ई० तक तेलुगु के काव्य जगत् मे भाव कविता की धूम रही, लेकिन जीवन के संघर्ष से दूर कल्पना-लोक मे विहार करते हुए भाव-कवि जब नभ से उतर कर भूमि पर चरण रखने के लिए तैयार नही हुए तो जनता उनसे विमुख होने लगी। इसी समय औद्योगिक विकास और पूँजीवादी सभ्यता का प्रभाव जनता पर पडने लगा। रूस की क्रांति ने संसार में क्रांति-कारी शक्तियो को प्रेरित किया। भारत मे एक ओर असहयोग आन्दोलन और दूसरी ओर क्रांतिकारी आन्दोलन भी चलने लगा। इसका प्रभाव तेलुगु साहित्य पर भी पडा। फलस्वरूप तेलुगु के काव्य जगत् मे भावकविता का ह्रास सा हो गया। प्रगतिवाद का बोलबाला बढ गया। साथ-साथ गाधीवाद और अन्य वस्तुओ से सबधित धाराएँ भी प्रचलित हुई।

प्रगतिवाद—

सामाजिक कुरीतियो, ऊँच-नीच, अमीर गरीब आदि के भावो से त्रस्त तेलुगु भाषी जनता को अप्रैल १९३५ मे क्रांति की ललकार स्पष्ट रूप से सुनायी दी। यह आवाज शीघ्र ही आंध्र प्रदेश भर में गूँज उठी। कवि ने गाया—

> एक नया जग, एक नया जग, एक नया जग रहा पुकार,
> डट के चलो तुम, मिल के चलो, बढ के चलो तुम, बढ के चलो!
> पग-पग चलते, पद-पद गाते, अंतर निज गरजाते चलो,
> जल प्रपात ध्वनि, नव जग की ध्वनि, नही सुनी क्या नही सुनी?
>
> • • •
>
> नव जग का वह बडा नगाडा, सुनो-सुनो उद्घोष कर उठा
> नाग सर्प से क्षुधित व्याघ्र से अग्निहोत्र से बढे चलो,
> दृष्टि न आई नव जग की उस अग्नि मुकुट की तडक भडक
> लाल ध्वजा की चमक-दमक! होम ज्वाल की धधक भभक?

नगी भूखी, पददलित, मूक जनता की वाणी इस प्रकार का आवाहन करने वाले क्रांतिकारी कवि के कंठ मे मुखरित हो उठी। यह कवि पीडित जनता का प्रतिनिधि कवि बन गया। इस कवि का नाम है– श्रीरंग श्रीनिवास-राव, श्री श्री काव्य नाम है। आंध्र की जनता ने श्री श्री की कविताओ का स्वागत किया। श्री श्री लिखित जयभेरी, अभ्युदय, महा प्रस्थान, कविते हे कविते, और जगन्नाथ रथचक्र नामक*प्रसिद्ध काव्य है। उत्कृष्ट प्रगति-

वादी 'महाप्रस्थान' नामक काव्य सग्रह प्रगतिवादी कविता मे अग्रगण्य है। श्री श्री ने भावपक्ष के साथ-साथ कलापक्ष मे भी क्राति उपस्थित की। भाषा, छद तथा अभिव्यजना प्रणाली मे नवीनता लाने का श्रेय श्री श्री को है। पूंजीवादी सभ्यता का खडन, साम्यवादी सभ्यता का मडन श्री श्री की कविताओ की मूल प्रेरणा है। तेलुगु के आधुनिक काव्य जगत् मे श्री श्री के अनुयायियो की सख्या अधिक है। प्रगतिवादी लेखक सघ की स्थापना के बाद ऐसे कितने ही युवक कवियो को प्रोत्साहन मिला।

तेलुगु के अन्य प्रगतिवादी कवियो मे श्रीरग नारायण बाबू, शिष्ट्ला उमामहेश्वरराव, कालोजी नारायणराव, कुंदुर्ति आजनेयुलु, वैरागी, पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलु, दाशरथी, अनिसेट्टी, सोमसुन्दर तथा रमणारेड्डी के नाम उल्लेखनीय हैं।

प्रगतिवाद के कुछ नये विचारो का प्रचार श्री श्री, नारायण बाबू आदि ने किया। इन्हे तेलुगु जनता से उचित प्रोत्साहन उन्हे नहीं मिला। 'पठाभि' नामक युवक कवि का "फ़िडेल रागालु डजनु" (बाइलिन के दर्जन राग) शीर्षक कविता सग्रह प्रकाशित हुआ।

गान्धीवाद

एक ओर प्रगतिवाद पनपता रहा तो दूसरी ओर गान्धीवाद से सबधित काव्य धारा भी पुष्ट होती रही। इस दिशा मे श्री तुम्मल सीतारामर्मूति के आत्मार्पण, धर्मज्योति और आत्मकथा ये तीन काव्य उल्लेखनीय हैं। बापूजी की आत्मकथा को श्री सीतारामर्मूति ने तेलुगु मे काव्य का रूप दिया, जिसकी भूरि-भूरि प्रशसा हुई। यह काव्य २६ जनवरी १९५१ को समाप्त हुआ था।

श्री पिंगलि लक्ष्मीकातम और काटूरि वेंकटेश्वरराव कवियो द्वारा लिखित सौंदरनदमु नामक काव्य का इस धारा के अन्तर्गत बडा महत्त्व है। दापत्यप्रेम के विश्वजनीन पुनीत स्वरूप का दिग्दर्शन करा कर समष्टि भावना को प्रस्तुत करना ही इस काव्य का लक्ष्य है। महात्माजी के सत्य, अहिंसा और सेवा भाव का विशेष प्रभाव इस काव्य पर पडा है।

देशभक्ति, प्रातीय अभिमान, व्यथित हृदय की आह, जाति पाति, ऊँच-नीच के भेदभावो से रहित अहिंसात्मक समाज के निर्माण का सदेश देने वाले श्री जाषुवा का उल्लेखनीय काव्य है "गब्बिलम" (चमगादड)। कवि ने इस काव्य मे अरुन्धती के पुत्रो की दीन हीन दशा का करुण चित्रण किया है।

जापुआ की अन्य कृतियों ने आंध्र में गांधीवादी विचारों के प्रचार में बड़ा योग दिया है।

तेलुगु हिन्दी के विद्वान श्री जघ्याल पापय्या शास्त्री ने करुणामय बुद्ध भगवान के पावन चरित को रसात्मक काव्य का रूप दिया है। उनका काव्य-नाम है "करुण श्री"। इन पर गांधीजी के सिद्धांतों का बहुत प्रभाव पड़ा है। वह प्रभाव इनकी कविताओं में दृग्गोचर होता है। तेलुगु के आधुनिक काव्य साहित्य के अन्तर्गत गांधीवादी काव्यधारा का विशेष महत्त्व है।

अन्य काव्य

उक्त धाराओं के अतिरिक्त इस समय और भी कई उत्तम काव्यों का प्रकाशन हुआ है। उनमें जापुवा कवि के बहुचर्चित काव्य फिरदौसी, मुमताज महल, स्वप्नकथा, अनाथा आदि, काटूरि वेंकटेश्वरराव कृत गुडिगटलु (मंदिर की घंटियाँ), पौलस्त्य हृदय, श्री दुव्वूरि रामिरेड्डी कृत पलित केश, कवि-रवि-नैवेद्य, भग्नहृदय शीर्षक काव्य, श्री तुम्मल सीताराममूर्ति के उदयगान आदि कविता संग्रह, श्री नाऊ कृष्णाराव की बाल सुलभ मधुर कविताओं के संग्रह, श्री वोड्डु वापिराजु की फुटकल कविताएँ और श्री पेंडिपाटि सुब्बाराम शास्त्री क आन्ध्र भारती, अभिषेक, शतपत्र आदि कविता संग्रह मुख्य हैं। इस युग म प्रकाशित पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलु का 'शिव ताडव' शीर्षक श्रेष्ठ गेय काव्य, स्वामी शिवशंकर के शब्दों में तेलुगु सरस्वती का उज्वल नूतन अलंकार है। यह काव्य संगीत, साहित्य और नाट्य का संगम है। अभिनव पोतना के नाम से प्रख्यात श्री वानमामलै वरदाचार्य कृत "पोतना" शीर्षक प्रबंध काव्य भी काफी श्रेष्ठ है। इसी प्रसंग में श्री बेजवाड गोपालरेड्डी का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने रवीन्द्रबाबू की कई कविताओं का रूपांतर तेलुगु में किया है।

चतुर्थ उत्थान

भारत स्वतंत्र हो गया। स्वराज्य मिल गया। किन्तु अभी सुराज्य स्थापित नहीं हुआ है। स्वतंत्र भारत में ही बापूजी की हत्या की गयी। आंध्र राज्य की स्थापना के लिए बापूजी के अनन्य शिष्य पोट्टि श्रीरामुलु को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी। इससे आंध्र के सभी कवि दुःखी हो गये। तुम्मल सीतारामभूर्ति, जापुवा विश्वनाथ सत्यनारायण, काटूरि वेंकटेश्वरराव, कालाजी नारायणराव दाशरथी आदि सभी कवियों ने इन बातों पर असन्तोष प्रकट किया है। सुराज्य की स्थापना का गान आंध्र में शुरू हो गया है।

श्री कालोजी नारायणराव ने राजनीतिक भ्रष्टाचारों और सामाजिक अन्ध विश्वासों का जोरों से खडन किया है। हैदराबाद रियासत के राजनीतिक आन्दोलन से कालोजी का शुरू से सबंध है। ये कई बार जेल भी गये। स्वतन्त्रता की लडाई मे वे सदा आगे रहे। पर्दों के पीछे दौडने वाले लोगों को देख कर वे कहते हैं—

फटा पुराना चियडा हो, साम्राज्य का टुकडा हो,
मुर्गी का वह अडा हो, मूल्यवान कोहनूर हो,
उपजाऊ वह मिट्टी हो, चाहे वह प्लैटीनम हो,
बस की चाहे सीट हो, या ब्रह्माजी का रथ ही हो,
होड लगा कर लड़ें-भिड़ें तो, जो भी हो, जो भी हो,
सभी बराबर, सभी बराबर ॥

निजाम सरकार के अत्याचारों से पीडित कवियों मे श्री दाशरथी का नाम भी उल्लेखनीय है। राष्ट्रीय भावनाओ से ओत-प्रोत दाशरथी की वीर-रसात्मक कविताओ ने तेलुगु भाषा-भाषियो को जागृत करने मे बडा योग दिया। पीडित, दरिद्र, मूक जनता की वाणी दाशरथी के कठ मे मुखरित हो उठी। तेलुगु भाषा-भाषियो मे दाशरथी के पुनर्नव और महान्ध्रोदय शीर्षक कविता सग्रहों का अधिक प्रचार है। विशाल आध्र प्रदेश के निर्माण मे इनकी कविताओ ने बडी सहायता पहुँचायी। इस दिशा मे प्रसिद्ध सपादक श्री नार्ल वेंकटेश्वर के 'नार्लवारि माटा' (नार्ल की बात), नामक कविता सग्रह प्रभावशाली है।

डा० सी० नारायणरेड्डी इसी युग की देन हैं। अपने विभिन्न काव्यो के द्वारा असमानता और अन्ध विश्वास का खडन करके समस्त ससार मे समता और शाति की स्थापना का आपने सदेश दिया है। रेड्डी के नागार्जुन सागर, कर्पूर वसतरायलु और विश्वनाथ नायडु जैसे कथात्मक गेय काव्यो का आधुनिक तेलुगु साहित्य मे महत्त्वपूर्ण स्थान है।

प्रयोगवाद

प्रगतिवाद से मुक्त हो कर प्रयोगवाद की शैली मे श्री आरुद्र ने 'त्वमेवाहम्' नामक काव्य लिखा। हैदराबाद रियासत मे जब निजाम की हुकूमत चलती थी तब जनता पर जो अत्याचार किये गये, उन्हे कथावस्तु के रूप मे स्वीकार कर, उसके आधार पर आज की सामाजिक, राजनीतिक तथा

साहित्यिक अव्यवस्था का, भाषा के नूतन, विचित्र, दुर्ग्राह्य प्रतीकों के द्वारा स्पष्टीकरण आरुद्र ने किया है। 'सिनीवाली' शारद्वत इसी शैली का प्रभावशाली काव्य है। इस दिशा में आजकल और भी युवक कवि प्रकाश में आ रहे हैं, जिनमें श्री वैरागी तथा दुर्गानन्द के नाम उल्लेखनीय है।

प्रगतिवाद

इस समय के प्रगतिवादी काव्यों में 'नयागरा' का प्रमुख स्थान है। उसमें श्री रामदास, एवकूरि तथा कुदुति की कविताएँ सगृहीत हैं। श्री कुदुति आजनेयुलु की कविताएँ भावपक्ष और कलापक्ष दोनों दृष्टियों से प्रभावशाली हैं। उनके कविता सग्रहों में 'युगे युगे' और 'तेलगाणा' उल्लेखनीय हैं। प्रगतिवादी कवियों में श्री रमणारेड्डी का 'भुवन घोषा' नामक कविता सग्रह प्रकाशित हुआ। तेलगाणा में कम्यूनिस्टों ने जो हिंसात्मक काण्ड किये उनके समर्थन में कुछ प्रगतिवादी कवियों ने काव्य लिखे है, मगर सरकार और जनता की तरफ से उन्हे प्रोत्साहन नही मिला।

इस युग के दो प्रसिद्ध काव्य प्रकाशित हुए हैं– एक है श्री विश्वनाथ सत्यनारायण का 'रामायण कल्पवृक्षमु' और दूसरा है श्री मगुना पतुलु सत्यनारायण शास्त्री का 'आन्ध्र पुराणमु'। तेलुगु प्रान्त में नन्नया, तिक्कना तथा एर्रा प्रगडा नामक तीन कवियों के द्वारा लिखित 'तेलुगु महाभारत' तथा भक्त पोतन्ना कृत 'तेलुगु भागवत' का अधिक प्रचार है। रामायण का स्थान तीसरा है। हिन्दी का 'रामचरित मानस' तेलुगु में नही हैं। विश्वनाथ ने अपनी सारी शक्ति लगा कर तेलुगु में रामायण कल्पवृक्ष की रचना की है।

इक्ष्वाकुवश से लेकर आज तक आध्रों के सम्यक् इतिहास को कथावस्तु बना कर श्री मगुना पतुलु सत्यनारायण 'आध्र पुराण' शीर्षक बृहद श्रव्यकाव्य लिख रहे है। प्रथम भाग प्रकाशित हो चुका है।

श्री बोयि भीमन्ना के कितने ही काव्य प्रकाशित हो चुके हैं। उनमें राष्ट्रीय भावना, अछूतोद्धार, भाव कविता मर्म कविता, प्रगतिवाद तथा वैज्ञानिक विकासवाद के दर्शन होते है। इस प्रकार तेलुगु के आधुनिक काव्य साहित्य में प्राचीन परम्परा, राष्ट्रीय भावना, भाव कविता, मर्म कविता, प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद आदि सभी प्रवृत्तियों का प्रचलन हो गया है।

भारत पर चीन के आक्रमण तथा जवाहरलाल नेहरूजी के निधन से ससार के कवियों की भाँति तेलुगु के कवि भी काफी प्रभावित हुए हैं।

फलस्वरूप पचासों कविताएँ प्रकाशित हो चुकी है। इस लेख में उल्लिखित कवियों के अलावा श्री पुरिपंडा अप्पलस्वामी, त्रिजमूरि शिवरामराव, देवुलपल्लि रामानुजराव, रजनी, अजंता, शशांक देवरकोंडा चिन्निकृष्ण शर्मा, मुद्दुराल रामिरेड्डी, वाणाल रामरवि, वलरामाचार्य, तिलक, इंद्रगंटि हनुमच्छास्त्री, सोमसुन्दर, अरिपिराल विश्व तथा मादिराजु रंगाराव जैसे कितने ही उदीयमान कवि हैं जो अपने विभिन्न काव्य कुसुमों से तेलुगु के आधुनिक साहित्य की श्रीवृद्धि कर रहे हैं।

यक्षगान

श्री बालशौरी रेड्डी

तेलुगु वाङ्मय की विविध विधाओ मे यक्षगान भी एक विधा है। इस विधा के उद्भव के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतभेद है। फिर भी यह सर्वमान्य सिद्धात है कि यक्ष जाति से सबधित गान होने के कारण ही इसका नामकरण 'यक्षगान' हुआ। यद्यपि यह शब्द सस्कृत से सबधित है किन्तु सस्कृत मे कही इस शब्द का उल्लेख नही मिलता। "सगीत सुधा" नामक ग्रन्थ मे यह शब्द सगीत-विशेष के लिए प्रयुक्त हुआ है। सभवत जक्कु नामक जाति द्वारा गान किये जाने वाले देशी सगीत रूपक का ही नाम "यक्षगान" पडा हो। "जक्कु" शब्द यक्ष का अपभ्रश है। भाषाशास्त्र की दृष्टि से देखा जाय तब भी यह सही प्रतीत होता है कि यकार का जकार मे परिवर्तित होना तथा "क्ष" का "क्क" होना सहज है।

"यक्षगान" आन्ध्र का एक प्राचीन लोक-गीतिनाट्य है। इसमे साहित्य, सगीत, नृत्य, अभिनय इत्यादि कलाओ का अच्छा सगम हुआ है। उन दिनो सस्कृत के रूपक, उपरूपक आदि सभ्य जगत का मनोरजन करते थे। सर्वसाधारण प्रजा का मनोरजन यक्षगान जैसे देशी लोक गीतिनाट्य से होता था।

मानव की रूपक-प्रदर्शन की अभिलाषा विभिन्न रूपो मे अभिव्यक्त हुई है। आन्ध्र देश की प्राचीन नाट्यकला का रूप "कुरवजि" माना जा सकता है। "कुरव" एक जगली जाति है, "अजि" का अर्थ 'पद' होता है। इस प्रकार कुरवजि–"कुरव+अजि" दो शब्दो के सयोग से बना है—अर्थात् कुरव नामक एक जगली जाति का (नृत्य मुद्रा समन्वित) कदम। उनका प्रारभिक नाट्य रूप कुरवजि कहलाया। कुरव जाति के लोग दक्षिण मे—मुख्यत आन्ध्र मे तिरुपति, श्रीशैलम इत्यादि पुण्य तीर्थों मे यात्रियो के विनोदार्थ नृत्य किया करते थे। कुरवजि आन्ध्र मे ही नही अपितु समस्त दक्षिण मे प्रचलित रहा है। आन्ध्र मे, शाद्व कुरवजि, जीव कुरवजि तथा

सत्यभामा कुरवजि नाम से उसके तीन रूप प्रसिद्ध थे, किन्तु आज उनका प्रचार नहीं है।

कुरवजि के अनुकरण पर यक्षगानों का निर्माण हुआ। जक्कुलु नामक जाति ने जिस देशी सगीत नाट्य का जन्म दिया, वही जक्कुलपाट याने "यक्षगान" नाम से विख्यात हुआ। यक्ष जाति से सम्बन्धित गीत या गान होने के कारण कालातर मे यक्षगान कहलाये, इसका देशी रूप जक्कुलपाट है। यक्षगान "नाटक" के नाम से भी व्यवहृत है।

यक्षगानो का उल्लेख

सर्वप्रथम पाल्कुरिकि सोमनाथ ने (ई सन् १२८०-१३४०) अपने ग्रन्थों मे समकालीन तथा प्राचीन अनेक देशी नृत्य, सगीत एव साहित्य की प्रक्रियाओ का उल्लेख किया है। तदुपरात कवि सार्वभौम श्रीनाथ ने (ई सन् १४३० के लगभग) अपने काव्य "भीम खण्ड" मे द्राक्षाराम पुण्य तीर्थ की स्तुति करते हुए लिखा है—

"कीर्तितु रेड़ानि कीर्ति गधर्वुलु
गाधर्वमुन यक्षगान सरणि"

(गधर्व लोग यक्षगान की शैली म, सगीत मे जिसका यश गाते है।)

यहाँ पर 'यक्षगान सरणि' का जो प्रयोग हुआ है, उसका यही अभिप्राय है कि गधर्वों ने यक्षगान पद्धति, रीति अथवा शैली म गान किया था। गान कला की निपुणता के लिए गधर्व प्रसिद्ध हैं। वे गान-कला की विविध रीतियों से भली भाँति परिचित थे। इस सदर्भ मे उन लोगो ने यक्षगान की रीति पर गान किया था।

जक्कुलु नामक जिस जाति ने यक्षगान को अपनाया, उसे प्रचलित एव लोकप्रिय बनाया, वास्तव म वह कोई भिन्न जाति रही होगी। यक्षगान के अभिनय को उस जाति ने अपना पेशा बनाया। यक्षगान को पेशा बनाने के कारण उनकी असली जाति का नाम लोप होता गया और वे यक्ष कहलाने लगे। यक्ष से 'जक्कु" हो गये। तदुपरात तेलुगु का 'लु' बहुवचनवाची प्रत्यय, जुड़ने के कारण 'जक्कुलु' हुए। इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यवसाय सूचक शब्द जातिवाचक बन गया।

"जक्कुलु" जाति के लोग आन्ध्र देश के गुन्टूर, गोदावरी आदि ज़िलो मे ही नही, रायलसीमा मे भी फैले हुए थे। आज भी अनतपुरम ज़िले मे

जक्कुल पेरदु (जक्कों का तालाब) नाम से एक बडा गाँव है, इस समय यह मद्रास और बंबई के रास्ते मे एक रेल स्टेशन भी है।

१५वी शती मे विरचित "क्रीडाभिरामम्" मे "जक्कुल पुरंध्रि" नामक गान-कला की बडी प्रशसा हुई है। उसमे यक्ष कन्याओ (जक्कु युवतियो) का वर्णन हुआ है। उसी शती के उत्तरार्द्ध मे पेमशौरि द्वारा रचित "सौगंध चरित" जक्कु जाति के सगीतात्मक आख्यान पद्धति मे प्रस्तुत हुआ है। "जक्कुल पुरंध्रि" यक्षगान का प्रारंभिक रूप है। इस नृत्य विशेष के अनुरूप वेषधारण करके, नेपथ्य सगीत एव वाद्य विशेषो की सहायता से गान करते, गीत के अनुरूप अभिनय करते और कथा सुनाया करते थे। यह सब क्रिया-कलाप एक ही पात्र द्वारा सपन्न होता था। एक व्यक्ति के द्वारा एक ही पात्र का अभिनय उस समय तक प्रचलित नही हुआ था।

१७वी शताब्दी मे रचित "तजापुराध्र दान नाटक" का प्रदर्शन जक्कुल रगसानि की सराय मे सपन्न हुआ था। इस कृति द्वारा विदित होता है कि जक्कु जाति के लोग गीत एव अभिनय कला मे प्रवीण थे।

स्वर्गीय सुरवरम प्रतापरेड्डी ने लिखा है—"यक्षगानो का नामकरण यक्ष (जक्कुलु) जाति के आधार पर किया गया है। यक्ष अक्सस (OXUS) प्रात, या यची (YUCHI) नामक मगोल जाति के अथवा युक्सैन् (LUXINE SEA OR BLACK SEA) प्रदेश के लोग होगे। यह सम्बन्ध कुछ दूर का अवश्य प्रतीत होता है। यक्ष, और गधर्व गान विद्या मे प्रवीण थे, अत हमारे पूर्वजो ने गीतिनाट्य का नामकरण "यक्षगान" किया होगा।"[1]

श्री खण्डवल्लि लक्ष्मीरजन ने यक्षगान प्रकरण मे लिखा है—'यक्षगान' सगीत प्रधान नाटक है। तेलुगु का प्राचीनतम नाटक-रूप यक्षगान ही है। यह 'यक्षगान नाटक' तथा 'यक्षगान प्रबध" नाम से भी व्यवहृत है। यक्षगानो मे नाटक के लक्षण वार्तालाप और प्रबधात्मक वर्णना का सुन्दर समन्वय हुआ है। अत यक्षगान इन दोनो नामो से प्रचलित हुए।[2]

कुरव जाति के नाटक रूपक-रचना के प्रथम प्रयत्न है, इसीलिए, वे अविकसित हैं। उनकी कथावस्तु पहाडी एव जगली जीवन से सबन्धित होती

---

१ आन्ध्र साहित्य चरित्र सग्रहमु (प्रथम भाग) लेखक खण्डवल्लि लक्ष्मी-रजन, भूमिका पृ० १४

२ आन्ध्र साहित्य चरित्र सग्रहमु पृ० २०८ प्रकरण चौदह, (यक्षगान)

है, हास्य की प्रधानता रहती है। इनकी नायिका और नायक सिंगि और सिंगडु हैं। नृसिंह स्वामी का कोया जाति की कन्या से विवाह करना इत्यादि उनके इतिवृत्त हैं। कुरवजि का विदूषक "कोणगि" नामक तीसरा पात्र है, जो हास्य-प्रसंगों में भाग लेकर दर्शकों का मनोरंजन करता हैं। प्रारंभ में कुरवजि में नृत्य की प्रधानता थी, किन्तु कालांतर में गीतों की प्रधानता हो गई। इनका प्रभाव नागरिक जीवन पर भी पड़ा। अतः हम कह सकते हैं कि 'कुरवजि' जंगली जातियों के गीतिनाट्य का रूप है तो यक्षगान सभ्य नागरिकों द्वारा रचित दृश्य काव्य। यक्षगानों में नृत्य क्रमशः कम होता गया तथा उसका स्थान संगीत ने ले लिया।

यक्षगान के लक्षण

आज यक्षगान देशी शैली का नाटक माना जाता है। संस्कृत के रूपक एवं उपरूपकों के लक्षणों से भिन्न होने के कारण यह लोक नाट्य कहलाता है। आज यक्षगान भी नाटक की रीतियों को बहुत कुछ अपना चुका है। प्राचीन यक्षगानों में संस्कृत के रूपकों की भाँति नांदी प्रस्तावना, अंक विभाजन, संधि-नियम इत्यादि दिखाई नहीं देते। उनमें रगड विकारमु (ताल प्रधान), द्विपद, एल्ललु तथा अर्द्ध चंद्रिक पद थे। ये सब देशी छन्द के भेद हैं।

प्राचीन यक्षगानों में गद्य कम होता था। यत्र-तत्र कथा-संविधान के अनुरूप गीत भागों को जोड़ने के लिए गद्य का प्रयोग होता था।

यक्षगानों के प्रदर्शन के समय प्रारम्भ में इष्ट देवता की प्रार्थना और गणेश की स्तुति होती, तदनंतर प्राचीन कवियों का स्मरण, लेखक का परिचय दिया जाता। फिर यक्षगान का नामोल्लेख करके सूत्रधार कथा का परिचय देता। कथा-संधियों का परिचय सूत्रधार देता जाता और नटी गीत गाती, अभिनय करती।

कुरवजि और यक्षगानों में अनेक प्रकार की भिन्नताएँ हैं। कुरवजि में जहाँ दो-तीन पात्र होते हैं, वहाँ यक्षगान में अनेक पात्र होते हैं। कथा-सूत्र को मिलाने के लिए बीच बीच में यक्षगानों में गद्य का प्रयोग किया जाता है। ऐसे गद्य भाग का वाचन सूत्रधार करता है। पात्र के प्रवेश के समय नाटककार उसके वेशधारण का वर्णन करता है। वर्णन के समाप्त होते ही पात्र प्रवेश करके अपने अभिनय के साथ गीत गाते हैं। जिन यक्षगानों में नाटककार का परिचय तथा वर्णन कम होता है, वे नाटकीयता के अधिक निकट होते हैं।

जिन मे वर्णन का अश अधिक होता है, वे प्रबन्ध काव्य के अधिक निकट होते हैं।

यक्षगानो मे देशी छन्दो के साथ ताल और लय से युक्त गीत गाये जाते हैं। ये गीत अधिकतर लोक गीतो की परपरा के होते हैं, इनमे माधुर्य गुण की प्रधानता होती है। श्राव्य होने के साथ-साथ भावपूर्ण होते हैं। इसी श्रेणी के वीथि नाटक आन्ध्र देश मे बहुत प्राचीन समय से ही प्रचलित हैं जो बाद को वीथि भागवत नाम से विख्यात हुए। उनमे भक्ति और शृगार की प्रमुखता होती है। इस परपरा के देशी रूपको मे भागवत की कथा मुख्य है। भागवत कथा के प्रदर्शन मे कूचिपूडि भागवतो (भागवत का अभिनय करने वालो) को विशेष आदर प्राप्त हुआ है। कथाओ मे 'पारिजाता पहरणमु' बहुत जनप्रिय हुई। कूचिपूडि भागवतो मे शास्त्रीय नृत्य प्रधान है। यही कारण है कि वे भरत-नाट्य के उत्तम नमूने माने जाते हैं। इनकी विशेषता यह है कि नारी पात्रों का वेष पुरुष धारण करते हैं।

इतिवृत्त अथवा कथावस्तु

यक्षगानो की कथावस्तु मुख्यत पौराणिक होती है। आधुनिक युग मे सामाजिक एव राजनैतिक घटनाओ पर यक्षगान लिखे गये है, किन्तु नब्बे प्रतिशत यक्षगानो की कथावस्तु पौराणिक रहती है। पुराण प्रसिद्ध कथाओ के आधार पर भी यक्षगानो की रचा हुई है। रामायण, भागवत तथा महा-भारत की कथाओ के साथ नल, हरिश्चन्द्र इत्यादि पौराणिक कथाएँ भी यक्ष-गानो का आधार बनी हैं, किन्तु युग का प्रभाव यक्षगानो पर भी परिलक्षित होता है। २० वी शती मे पट्लोरि वीरप्पा ने क्षोधापुरि रैतु विजयमु" (क्षोधा-पुरी के कृषको की विजय) नामक यक्षगान लिखा है, जिसम भारत माता की प्रार्थना, गाँधी जी की स्तुति इत्यादि भी देखी जा सकती है। इसकी कथावस्तु सामाजिक समस्याओ से परिवेष्टित राजनैतिक समस्याएँ है। इससे यह स्पष्ट होता है कि यक्षगान भी युग के अनुरूप अपने स्वरूप को परिवर्तित करते हुए जनता के मनोरजन का साधन बना हुआ है।

रगमच

प्राचीन समय मे आन्ध्र मे रगमच का विकास नही हुआ था। आन्ध्र प्रदेश मे जो भी लोकनाट्य थे वे सब चलते फिरते प्रदर्शन मात्र थे। लोकनाट्य के अभिनेता एक जगह स्थिर रूप से नही रहते थे, उन्हे गाँव गाँव घूम घूम अपने नाटकों का प्रदर्शन करना पडता था। अत रगमच का विकास बहुत

समय तक हो नहीं पाया। वे जिस गाँव में पहुँचते, उस गाँव के मुहाने पर, चौपाल अथवा मंदिर के सामने तत्काल पंडाल डालते। उस पंडाल में ही यक्षगानों का प्रदर्शन होता। पंडाल के सामने और दायें-बायें भी जहाँ तक दृष्टि जाती है, खुला प्रेक्षागार ही होता है।

सामग्री

रंगमंच की साधन-सामग्री क्या थी? यों वे प्रदर्शनकर्ता आवश्यक सामग्री अपने साथ ले जाते थे, फिर भी जिस किसी गाँव में पहुँचते, वहीं उन्हें वह सामग्री उपलब्ध हो जाती। मंच अथवा पंडाल के सामने एक सफ़ेद पर्दा लटकाया जाता, यह पर्दा कोई बड़ा दुपट्टा होता या दो-तीन खादी के दुपट्टों को जोड़कर मंच के अनुरूप बना लिया जाता। पर्दे के दोनों ओर दो मशालें रख दी जातीं, जिनकी रोशनी में यक्षगान का प्रदर्शन होता। क्रमशः मशालों की जगह पेट्रोमैक्स ने ली। पर्दे के पीछे प्रबंधकर्ता या संचालक, गान में साथ देने वाले, ढोल या मृदंग तथा ताटन देने वाले रहते हैं। पर्दे के सामने सूत्रधार होता है, वही प्रदर्शन का प्रवर्तक होता है।

सूत्रधार पात्रों के प्रवेश की सूचना देता है, पात्रों से वार्तालाप करता है, नेपथ्य में गान वाले गायकों को टेक देता है। अभिनय के अनुरूप ताल देता है, संधि-गद्य का वाचन करता है और समय-समय पर हास्य प्रसंग करता है।

समय

यक्षगानों का प्रदर्शन रात में ८–९ बजे प्रारंभ होता है और प्रातः तक चलता रहता है। कुछ ऐसे भी यक्षगान हैं जिनका प्रदर्शन ५–६ दिन तक चलता है। आधुनिक युग के प्रभाव के कारण यक्षगानों के प्रदर्शन का समय भी कम होता जा रहा है, फिर भी रात-भर इनका प्रदर्शन होता है।

रस

यों तो यक्षगानों में शृंगार, रौद्र एवं वीर रसों की प्रधानता रहती है, लेकिन इनके साथ अन्य रस भी आते हैं। यक्षगानों के प्रदर्शन में मंच पर युद्ध आदि भी दिखाये जाते हैं। गिरिजा कल्याणम् (पार्वती परिणय) इस ढंग का एक अद्भुत नमूना है। यक्षगानों में वाचिक तथा आंगिक अभिनयों की प्रधानता होती है। नाटक के संभाषण आदि का सारांश गायक गीतों के रूप में गाते हैं। पात्रों के संभाषण तत्सम शब्दों तथा लोकोक्तियों एवं मुहावरों से पूर्ण होते हैं।

उद्देश्य

यक्षगानों के प्रदर्शन का उद्देश्य मनोरंजन के साथ साधारण प्रजा में उन्नत आदर्शों को प्रस्तुत करने के साथ-साथ उदात्त आध्यात्मिक ज्ञान का प्रबोध करना भी रहा है। मानव जीवन का लक्ष्य, वैदिक ज्ञान तथा जगत के परमार्थ का परिचय कराना भी यक्षगानों का लक्ष्य रहा है। इस दृष्टि से यक्षगानों का प्रदर्शन सफल कहा जा सकता है।

छन्द

यक्षगानों में प्राचीन लोक गीतों की अधिकता रहती है। उन गीतों के राग, ताल इत्यादि का शास्त्रीय दृष्टि से विवेचन हुआ है। १७ वी शती में अप्पकवि नामक रीति शास्त्रकार द्वारा विरचित "अप्प कवीयमु" नामक छद शास्त्र में यक्षगानो के छदो का विवेचन हुआ है। उनकी गति, ताल, आदि यक्षगानो के अनुरूप है।

अप्प कवि ने न केवल यक्षगानो के लक्षण बताये अपितु उनके आधार पर "अविकावाद" नामक यक्षगान भी लिखा। यक्षगानो की कथावस्तु, भाव, भाषा, छद, कविता इत्यादि देशी शैली में निर्मित हैं।

नृत्य

यक्षगान में भाव, राग, ताल के साथ नृत्य, गीत और अभिनय का सुन्दर समन्वय रहता है। समीक्षकों का कथन है कि यक्षगान भी नृत्य नाट्य है। इनमें नृत्य मुख्यत तीन रूपो में प्रयुक्त होता है। गीत के साथ नृत्य तो होता ही है, साथ ही ताल, गमक आदि के अनुरूप दूसरी पद्धति का नृत्य भी होता है। तृतीय दशा में उद्धत नृत्य अथवा ताडव नृत्य होता है। नाट्य शास्त्र प्रणेता भरतमुनि द्वारा निर्देशित प्राचीन ताडव नृत्य के लक्षणो का यक्षगानो के आधार पर उनका पुनरुद्धार करने के इच्छुक नाट्य शास्त्रियो के लिए आवश्यक लोक-नृत्य की सामग्री उपलब्ध होगी। इस कार्य के लिए उपर्युक्त यक्षगान पुराने हस्तलिखित ग्रथो में उपलब्ध हैं। इसमें उषा-चरित्र, उषा परिणय, कालीय मर्दनमु आदि अत्यत उपयोगी सिद्ध हो सकते है।

यक्षगान साहित्य

कुछ विद्वानो का विचार है कि अब तक प्राप्त यक्षगानो में ओबय मत्री कृत "गरुडाचलम्" अत्यत प्राचीन है। कुछ समीक्षको का विश्वास है कि कन्दुकूरि रुद्रय द्वारा विरचित सुग्रीव विजयम्" उपलब्ध यक्षगानो में प्राचीन-तम है। 'सुग्रीव विजय'कर्ता कृष्णदेवराय के समकालीन माने जाते हैं।

सुग्रीव विजय की कथावस्तु रामायण से ली गयी है। वीर हनुमान राम-लक्ष्मण का दर्शन करते हैं, फिर बालि-वध तथा सुग्रीव के पट्टाभिषेक के साथ कथा समाप्त हो जाती है। इसमे बालि-सुग्रीव का युद्ध, बालि-वध, तारा का बालि-वध पर दुखी होना और रामचन्द्र की निन्दा करना अत्यत मनोहर है। वीर और करुण रसो के पोषण मे कवि को असाधारण सफलता प्राप्त हुई है।

तेलुगु साहित्य मे कृष्णदेवराय का युग 'प्रबन्ध युग' के नाम से विख्यात है, फिर भी इस युग मे यक्षगानो के प्रति आदर का भाव था, इतिहास इस बात का साक्षी है कि कृष्णदेवराय की नाट्यशाला मे यक्षगानो का प्रदर्शन होता था। बताया जाता है कि कृष्णदेवराय की पुत्री ने 'मरीचो परिणय' नामक यक्षगान लिखा था। शिलालेखो द्वारा इस बात की पुष्टि होती है कि कृष्णदेवराय की नाट्यशाला मे 'तालुकोड' नामक नाटक का प्रदर्शन होता था और उस युग मे नागय्या नामक नट अपने अभिनय के लिए बहुत ही प्रसिद्ध था।

कृष्णदेवराय के युग के पश्चात् तजाऊर के नायक राजाओ के आश्रय मे यक्षगानो का चरम विकास हुआ। रघुनाथ नायक तथा विजयराघव नायक के राज्यकाल मे असख्य यक्षगानो का सृजन हुआ। इनमे दो यक्षगान अत्यत विख्यात है। इनके प्रणयन के पूर्व पुराण की कथाओ के आधार पर यक्षगान निर्मित होते थे, परन्तु विजयराघव नायक ने प्राचीन परपरा को तिलाजलि दे कर अपने पिता 'रघुनाथ नायक' को ही नायक बना कर 'रघुनाथाभ्युदयम्' नामक यक्षगान की सृष्टि की। इसकी देखादेखी विजयराघव नायक की प्रेयसी रगाजम्मा ने विजयराघव नायक को नायक बना कर 'मन्नारु दास विलास' नामक यक्षगान लिखा। इसमे कथा-चमत्कार की अपेक्षा वर्णन वैचित्र्य अधिक है। इसे प्रबन्ध काव्य भी कहे तो अत्युक्ति न होगी।

रगाजम्मा के यक्षगान का प्रभाव भक्तशिरोमणि गायक त्यागराज तथा नारायण तीर्थ पर पडा। त्यागराज ने 'प्रह्लाद चरित्र' तथा 'नौका भगम' नामक दो यक्षगानो का प्रणयन किया, तो नारायण तीर्थ ने 'पारिजातापहरणमु' का सृजन किया।

त्यागराज भक्तशिरोमणि तो थे ही, साथ ही सगीत सार्वभौम भी थे। 'प्रह्लाद चरित्र' मे भक्त की परवशता तथा ब्रह्मानद देखते ही बनता है। इष्टदेवता की स्तुति से नाटक का शुभारम्भ करके अपने से पूर्ववर्ती कवियों की

प्रहासा के बदले प्राचीन भक्त तुलसीदास, रामदास, नामदेव, ज्ञानदेव, तुकाराम, जयदेव, श्रीनारायण तीर्थ इत्यादि भक्तो का स्मरण किया गया है। इसमे ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति का सगम हुआ है। यह कृति रामचन्द्र को समर्पित है। प्रस्तावना के पश्चात् दौवारिक तथा सूत्रधार का सभाषण होता है। प्रह्लाद को नागपाश मे बाँध कर समुद्र में फेंकने के वृत्तान्त से नाटक प्रारभ होता है। अत मे हरि का साक्षात्कार कराते हैं।

'नौकाभग' अथवा 'नौका विजयमु' भक्ति तथा शृगार का समन्वित रूप है। गोपिकाएँ बालकृष्ण के साथ यमुना नदी मे नौका विहार के लिए चल पडती हैं। सौन्दर्य-गर्विता गोपिकाओ का गर्व भग करते हैं बालकृष्ण। नौका मे पानी आता है, गोपाल उन रध्रो को पहले चोलियो तथा बाद को साडियो द्वारा भरने का आदेश देते हैं। अत मे गोपियाँ अपनी देह का अभिमान त्याग प्राणो की रक्षा के लिए वैसा ही करती है। इस प्रकार भव-सागर के तारनहार कृष्ण अपनी लीला का परिचय देते हैं।

उपर्युक्त श्रेणी की रचनाओ मे 'लेपाक्षिरामायणमु' अत्यत उल्लेखनीय है। इसके प्रारभ मे आराध्य की प्रार्थना, गुरु-वदना, पूर्व कविस्तुति और वश-परिचय है। यह पूर्णत दृश्य काव्य है। प्रदर्शन की दृष्टि से अन्य यक्षगानो की अपेक्षा यह अधिक सफल रहा है।

इस परपरा मे कवि वेंकटदासु कृत 'धेनुकोड विराट पर्व नाटक' अत्युत्तम है। रामदास भी इसी श्रेणी का एक उत्तम यक्षगान है। इनके अतिरिक्त अन्य लोकप्रिय यक्षगानो मे किरातार्जुनीयमु, गगा गौरी विलास, एरुकल वेष कथा, त्रिपुर सहारम्, दारुवन क्रीडा, मृत्युजय विलास, शिव-पारिजात, गोपाल विलास, रगपुरिपारिजात नाटक, तारा शशाक, सीता कल्याण, सुन्दर काड नाटक, तथा ककटि पापराजु कृत विष्णुमाया विलास सुप्रसिद्ध हैं।

तजाऊर के नायक राजाओ के समय मे यक्षगान नाटक अथवा दृश्य-प्रबध के नाम से भी स्मरण किये जाने लगे। क्रमश यक्षगानो मे टेक का स्थान राग लेने लगा। कविता का स्थान पद या गीत लेने लगे। कविता की अपेक्षा गद्य, विषय क्रम को जोडने वाले गद्य के स्थान पर पात्रो का परस्पर सभाषण प्रधान माना गया। उस समय के यक्षगानो मे नायक राजाओ के विवाह, शृगार आदि के साथ आस्थान (दरबार) का वैभव उनके राज्य का प्रजा जीवन, नगर के राज मार्ग पर जुलूस मे जाने वाले नायक अथवा राजा

को देख नायिका का मोहित हो जाना, विरह-वर्णन आदि की अधिकता रहने लगी।

महाराष्ट्र के राजाओ ने भी तेलुगु के यक्षगानो के विकास मे प्रशसनीय योग दिया। शाहजी (१६८४-१७१२) ने ६-७ उत्तम यक्षगानो की रचना की। इनके लिखे यक्षगानो की सख्या ३० बतायी जाती है। इस युग मे कथा का साराश द्विपद छन्द मे बतला दिया जाता था, तदनतर गणेश की स्तुति, कथा-सधान, सूत्रधार के प्रसग, विदूषक इत्यादि की प्रधानता रही। इस प्रकार की रचनाओ मे दर्भा गिरिराजु का स्थान उल्लेखनीय है। इस युग मे कुरवजियो का पुन यक्षगानो मे प्रवेश हुआ। कुरवजि पात्र को प्रधानता दी गयी। मैसूर के कठीरव राजा ने 'आन्ध्र कुरवजि' नामक एक रूपक की रचना की। त्यागराज आदि की श्रेणी के मेलत्तूरु वेंकटराम शास्त्री ने जो रचनाएँ की वे "मेलत्तूरु भागवत मेल नाटक" नाम से विख्यात हैं।

तेलगाने मे १८वी शती मे यक्षगानो की रचना प्रारभ हुई और १०० के लगभग यक्षगान इस प्रदेश मे रचे गये। वहाँ पर यक्षगान पर्याप्त लोकप्रिय भी हुए। १७८० मे शेषाचलकवि कृत 'धर्मपुरी रामायण', १८३४ मे श्रीमुदयकवि द्वारा रचित 'मथेन रामायण' काफी प्रसिद्ध हैं। यहाँ के अन्य नाटककारा मे गोवर्धन नरसिंहाचार्युलु, पट्टे पापकवि, शेपभट्टरु कृष्णमाचार्युलु आदि के नाम आदर के साथ लिये जा सकते हैं।

२० वी शती मे भी तेलगाने मे यक्षगानो का प्रणयन एव प्रदर्शन होता रहा। पौराणिक गाथाओ के साथ लोक-गीत तथा लोक-कथाओ को भी इतिवृत्त बनाकर यक्षगान रचे जा रहे हैं। इस श्रेणी की रचनाओं मे चेविराल भाग्य बेजोड हैं। सख्या की दृष्टि से ही नहीं अपितु उत्तमता की दृष्टि से भी ये परवर्ती तथा समकालीन यक्षगानकर्ताओ के लिए आचार्य माने गये। इनकी रचनाओ म आधुनिक नाटको का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

यो तो तेलगाने म यक्षगानो की रचना विलब से शुरू हुई किन्तु अल्प समय मे ही यहाँ उनका पर्याप्त विकास हुआ। विविधता तथा लोकप्रियता की दृष्टि स सपन्न हो तजाऊर के युग की भाँति तेलगाने का युग भी अति स्मरणीय बन गया है।

आन्ध्र विश्वविद्यालय न यक्षगानो के पुनरुद्धार का बहुत प्रयत्न किया है। अब तक पाँच जिल्दें प्रकाशित हो चुकी हैं। कुल १५ जिल्दें प्रकाशित करने की योजना है। •

३. हिन्दी तथा तेलुगु साहित्य
का
तुलनात्मक अध्ययन

आधुनिक हिन्दी और तेलुगु साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ : उपन्यास और नाटक

श्री जी. सुन्दर रेड्डी

विश्व की प्राय प्रत्येक भाषा मे पहले पद्य का जन्म हुआ था, तदुपरांत गद्य का। सभवत जब लिपि का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था, उस समय लय-प्रधान छदोबद्ध कविता को कठस्थ करना अधिक सरल था। हिन्दी और तेलुगु साहित्य का प्रारभ पद्य से ही माना जाता है।

हिन्दी और तेलुगु की प्रारभिक रचनाएँ राजाओ के दरबार मे लिखी गयी, किन्तु दोनो की परिस्थिति काफी भिन्न थी। हिन्दी साहित्य के प्रारभिक काल मे उत्तर-भारत मे हिन्दू-मुसलमानो के बीच सघर्ष चल रहा था। उस सघर्षपूर्ण युग मे वीर रस प्रधान कविता हो सकती थी। सघर्ष का मूल कारण नारी और राज्याकाक्षा थी। तेलुगु-साहित्य के प्रारभिक-काल मे दक्षिण मे भी सघर्ष चल रहा था, किन्तु वह सघर्ष राजनीतिक न हो कर धार्मिक था। शैव और वैष्णवो के बीच, जैन और बौद्धो के बीच धार्मिक विद्वेष बढता गया। ऐसे समय मे नन्नय ने वैदिक-धर्म की प्रतिष्ठा करने के लिए तेलुगु मे 'महाभारत' की रचना की। उत्तर भारत मे उस समय कई भाषाएँ प्रचलित थी। हिन्दी के आदि महाकाव्य पृथ्वीराज रासो की भाषा डिंगल या राजस्थानी मानी जाती है। ध्यान देने की बात यह है कि तेलुगु द्राविड परिवार की भाषा होते हुए भी उसके प्रारभिक रूप मे सस्कृत के शब्द अधिक प्रयुक्त हुए थे। हिन्दी आर्य परिवार की भाषा होते हुए भी उसके प्रारभिक रूप राजस्थानी मे सस्कृत के शब्द कम प्रयुक्त हुए।

इसके बाद क्रमश तेलुगु के पुराण-युग के कवियो की रचनाओ मे सस्कृत-शब्दो की सख्या घटती गयी और उनके स्थान पर ठेठ तेलुगु शब्द प्रयुक्त होने लगे। राजा कृष्णदेवराय-युग तेलुगु-साहित्य का स्वर्ण-युग कहलाता है। इस युग मे अनेक काव्यो का सृजन हुआ, जिनमे सस्कृत के शब्द अत्यधिक

मात्रा मे प्रयुक्त हुए हैं। इस युग के बाद शतक साहित्य का युग आता है, जिसमे बोलचाल की भाषा को स्थान मिला। शतक या गेय कविता का उद्देश्य सरल एव सुबोध शैली मे भक्ति, नीति एव जीवन का अनुभव बताना रहा है। इसलिए इस काल के कवियो ने लोकभाषा मे अपनी रचनाएँ की।

हिन्दी का प्रारभिक रूप स्पष्ट नही है। वीरगाथाकाल की अधिक रचनाएँ राजस्थानी भाषा मे हुई हैं। भक्तिकाल की रचनाएँ जिसको हिन्दी साहित्य का स्वर्ण-काल कहा जाता है, व्रज और अवधी मे हुई हैं। रीतिकाल की सारी रचनाएँ भी व्रजभाषा मे ही हैं। यहाँ तक कि अट्ठारहवी सदी तक हिन्दी साहित्य राजस्थानी, मैथिली, व्रज एव अवधी भाषाओ मे पाया जाता है। यहाँ पर ध्यान देने की बात यह है कि तेलुगु भाषा के प्रारभिक रूप मे और आधुनिक तेलुगु भाषा के स्वरूप में हम अधिक भिन्नता नहीं पाते, किन्तु हिन्दी के सम्बन्ध मे यह नही कहा जा सकता। वीरगाथा काल की भाषा राजस्थानी, भक्ति और रीतिकाल की भाषा व्रज और अवधी मे, और आधुनिक हिन्दी भाषा के स्वरूप मे बहुत बडा अतर है। आधुनिक हिन्दी भाषा की छाया हम अमीर खुसरो और कबीर की रचनाओं मे पाते हैं किन्तु आधुनिक हिन्दी खडी बोली—का रूप अट्ठारवी सदी के बाद ही हम पाते हैं।

उन्नीसवी शती भारतीय भाषाओ के साहित्य के अभ्युत्थान की शती है। उस समय तक समस्त भारत पर अग्रेजो का आधिपत्य स्थापित हो गया था। अग्रेजी और देशी भाषाओ के पठन-पाठन के लिए स्कूल तथा कालेज खोले गये। पत्र-पत्रिकाओ का जन्म हुआ था। भाषा-कोशों का निर्माण तथा अन्य भाषाओ की उत्तम कृतियो का अनुवाद होने लगा था। साथ ही साथ अपने-अपने धर्म-प्रचारार्थ भारतीय भाषाओं मे गद्य ग्रथ रचे जाने लगे। नये-नये वैज्ञानिक आविष्कारो के कारण तत्सबधी-ग्रथ भी पहले अग्रेजी मे और बाद को भारतीय भाषाओं म लिखे जाने लगे।

राष्ट्रीय जागृति के प्रादुर्भाव के कारण राष्ट्रीय भावो का प्रचार जोरों मे होने लगा। अपनी भाषा, अपना साहित्य, और अपनी सस्कृति के प्रति लोगों का अनुराग बढने लगा। अग्रेजी भाषा की देखादेखी यहाँ की भाषाओं मे भी गद्य के विभिन्न अग विकसित हुए। ईसाई पादरियो ने भारत की विभिन्न भाषाओं के माध्यम से अपना धर्म-ग्रथ बाइबिल का मुद्रण कर जनता मे प्रचार करना प्रारभ किया। तब यहाँ भी आर्य समाज, ब्रह्मसमाज जैसी

संस्थाएँ जन्म ले कर स्वभाषा और निज धर्म की रक्षा करने में तथा कालानुसार, उनमें सुधार एवं परिवर्तन लाने में लग गयी।

लार्ड मेकाले जैसे विद्वानों ने भारतीय जनता को भाषा तथा संस्कृति पर अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य का स्थायी प्रभाव डालने के हेतु अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बना कर अंग्रेजी में शिक्षित व्यक्तियों को अधिकार, और उच्च पद प्रदान कर उनका सम्मान करना प्रारंभ किया। इससे भारतीय जीवन के सभी क्षेत्रों में परिवर्तन हुआ।

दूसरी ओर कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत तथा भारतीय भाषाएँ सीख कर उन भाषाओं की काफी सेवा की। सी पी ब्राउन, बिशप काल्डवेल, कर्नल कालिन मेकजी इत्यादि पाश्चात्य विद्वानों ने तेलुगु भाषा की उन्नति एवं विकास के लिए स्तुत्य प्रयत्न किया। उत्तर-भारत में जान गिल्क्राइस्ट जैसे व्यक्तियों ने हिन्दी की उन्नति एवं विकास के लिए काफ़ी योगदान दिया। इन लोगों ने भाषा का संस्कार किया और साहित्य की वृद्धि के लिए काफी मदद पहुँचायी। कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाओं की छान-बीन की। अनेक प्राचीन ग्रंथों का पता लगाया और उन ग्रंथों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये। मुद्रण-यंत्र के आविष्कार के साथ साथ अनेक हस्तलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो कर पाठकों के हाथों में आ गयी।

औद्योगिक उन्नति के साथ साथ मानव का मस्तिष्क भी विकसित होने लगा। बौद्धिक प्रगति के साथ-साथ गद्य की प्रधानता बढ़ी। लोगों में तार्किक भावना का उदय हुआ। समाचार पत्रों में छोटे-छोटे लेख, कहानियाँ, समीक्षाएँ तथा सामाजिक दशा का वर्णन करने वाली रचनाएँ प्रकाशित हुईं।

आधुनिक हिन्दी और तेलुगु साहित्य का उदय करीब-करीब एक ही समय में हुआ। इसलिए दोनों साहित्यों की प्रवृत्तियों में समानता का होना भी स्वाभाविक है। युग की परिस्थितियों का प्रभाव ज्यों-ज्यों साहित्य पर पड़ता गया त्यों-त्यों युग की भावनाएँ कविता, कहानी, नाटक एवं उपन्यास आदि में मुखरित होती गयीं। बीसवीं सदी के प्रथम दशाब्द में राजा राममोहन राय के मानवतावाद का प्रभाव सभी भारतीय भाषाओं में दिखाई दिया। स्वामी दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द इत्यादि के उपदेशों से हिन्दू जाति में जागृति पैदा हुई और लोकमान्य तिलक ने उन्हें प्राचीन संस्कृति की ओर प्रवृत्त कर आत्मविश्वास एवं आत्माभिमान पैदा किया। उसी समय राष्ट्रीय आन्दोलन ने भी साहित्यकार और कलाकारों को अपनी ओर आकृष्ट किया

और युग की वाणी उनकी रचनाओं में प्रतिध्वनित हुई। परिणाम स्वरूप हिन्दी और तेलुगु, दोनों में, प्राचीन और आधुनिक भावों और विचार-धाराओं का संघर्ष और समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

भारतेन्दु और वीरेशलिंगम पन्तुलु का युग

यह युग हिन्दी और तेलुगु गद्य-साहित्य के विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु के आगमन के पूर्व राजा शिवप्रसाद की फारसी मिश्रित शैली और राजा लक्ष्मणसिंह की संस्कृत गर्भित शैली का जन्म हो चुका था। भारतेन्दु ने मध्यम मार्ग को ग्रहण कर शुद्ध खड़ी बोली-गद्य का निर्माण किया। इन की भाषा में संस्कृत और फारसी के वे सभी प्रचलित शब्द प्रयुक्त हुए हैं जो कि हिन्दी में खप गये थे। भाषा के परिमार्जन में हम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को आधुनिक हिन्दी-गद्य के जन्मदाता कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। इसी समय तेलुगु साहित्य-क्षेत्र में भी एक महापुरुष उदित हुए। उन्हीं का नाम वीरेश लिंगम पन्तुलु है। पन्तुलु ने तेलुगु साहित्य में *पहला नाटक, पहला उपन्यास, पहला प्रहसन, पहली कहानी एवं पहली जीवनी* प्रस्तुत की। कवियों की जीवनियाँ लिख कर तेलुगु साहित्य के इतिहास की नींव डाली। संस्कृत और अंग्रेज़ी के उत्तम ग्रंथों का तेलुगु में अनुवाद किया। महिलाओं की उन्नति के लिए संस्थाएँ खोलीं, पत्रिकाएँ चलायीं। समीक्षा-साहित्य को प्रोत्साहित करने के लिए प्रयत्न किया। संक्षेप में उन्होंने समाज सुधार के लिए, अपनी लेखनी चला कर समाज को स्वस्थ बनाने के लिए, साहित्य का सृजन किया। हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और महावीर-प्रसाद द्विवेदी जी ने जो काम किया वह काम श्री वीरेश लिंगम ने अकेले ही किया। भारतेन्दु ने नाटक लिख कर तथा अनुवाद करके हिन्दी साहित्य की उन्नति में योगदान दिया। रंगमंच पर अभिनय करके और दूसरों से करा कर हिन्दी का प्रचार किया। कविताएँ लिखीं, नाटक और लेख लिखे। श्री वीरेश लिंगम की तरह पत्रिकाएँ सम्पादित कीं। अल्पकाल में ही उन का निधन हुआ वरना वे *भी वीरेश लिंगम की तरह साठ वर्ष तक साहित्य-सेवा* करके हिन्दी को और भी समृद्ध बनाते।

गद्य-काल

गद्य का जन्म और विकास आधुनिक काल में ही हुआ। उपर्युक्त कथन हिन्दी और तेलुगु गद्य-साहित्य के संबंध में ही नहीं, अपितु समग्र भारतीय भाषाओं के लिए भी लागू हो सकता है। गद्य-काल से हमारा

तात्पर्य इतना ही है कि इस समय तक हिन्दी और तेलुगु भाषाओं ने गद्य में एक विशिष्ट-स्वरूप को प्राप्त किया था तथा गद्य के विभिन्न अंग एवं उपांगों की पूर्ति होने लगी। पत्र-पत्रिकाओं के स्तर और मुद्रण में भी काफी विकास हुआ। वैज्ञानिक उन्नति के साथ साथ मानव-समुदाय की आवश्यकताएं बढ़ने लगीं और उनकी रुचि भी परिष्कृत होती गयी। अनेक प्रकार के शास्त्रों का वैज्ञानिक अध्ययन होने लगा। अभिव्यक्तिकरण की पद्धतियां, विषय का प्रतिपादन, विचार-धारा का परिष्कृत रूप लोगों के सामने आया। अनुसंधान, चिंतन, मनन, निरीक्षण तथा सूक्ष्म अध्ययन के प्रति लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ। प्राच्य तथा पाश्चात्य भाषा एवं साहित्यों के अध्ययन के फलस्वरूप भारतीय भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन एवं विवेचन भी होने लगा। फलत, अनेक प्रकार के विचारों के अभिव्यक्तिकरण के लिए भाषा के विविध अंगों को समृद्ध बनाने की आवश्यकता हुई इन सब कारणों से गद्य साहित्य के विभिन्न-अंगों का विकास होता गया।

काव्य धारा की प्रमुख प्रवृत्तियां

श्री वीरेशलिंगम पंतुलु ने जो सुधारवादी आन्दोलन प्रारम्भ किया, उसे काव्य रूप देने वाले श्री गुरजाड अप्पाराव थे। स्वर्गीय गिडुगु राममूर्ति पंतुलु ने जन भाषा का आन्दोलन चलाया। इन त्रिमूर्तियों ने मिल कर आन्ध्र भाषा तथा साहित्य की अपूर्व सेवा की। हिन्दी साहित्य में श्री रामनरेश त्रिपाठी और श्री मैथिलीशरण गुप्त की तरह श्री अप्पाराव ने देशभक्तिपूर्ण कविताएँ लिखीं। इन महानुभावों ने जन भाषा में राष्ट्रीय भावनाओं से पूरित कविताएँ की। अप्पाराव स्वयं अपनी कविता का आशय बताते हैं —

आकुलदुन अणगि मणगि
कवित कोयल पलुकवलेनोय
पल्कुलुनु विनि देशमद—
भिमानमुलु मो लेत्त वलेनोय।

(पत्तों की ओट में छिप कर कविता रूपी कोयल गान करे और उसकी वाणी को सुन कर लोगों के हृदयों में देश प्रेम की भावनाएँ अंकुरित हों)।

देश में कांग्रेस का आन्दोलन ज़ोर पकड़ने लगा। राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार ज़ोरों से हुआ। अपनी भाषा तथा संस्कृति के प्रति लोगों का प्रेम

बढ़ने लगा। प्राचीन और नवीन आदर्शों के बीच संघर्ष हुआ। इस सक्रांति-काल में भारत की भाषाओं में जो साहित्य आया वह प्रबोधात्मक तथा प्राचीनता एवं राष्ट्रीयता का सदेशवाहक था।

इसी समय हिन्दी-साहित्य में छायावाद या रहस्यवाद की कविताओं का प्रादुर्भाव हुआ, तेलुगु साहित्य में भाव-कविता का आगमन हुआ। इस काल के कवियों पर बंगला के प्रसिद्ध कवि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की कविता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। अंग्रेज़ी व फ्रेंच-साहित्य की काव्य-शैली का अनुकरण किया गया। आत्मपरक प्रेम प्रधान इस कविता में गेयता, स्वच्छंदता उल्लेखनीय है।

उमरखय्याम ने फारसी भाषा में रुबाइयाँ लिख कर नयी विधा प्रस्तुत की, उसका प्रभाव संसार की प्राय सभी भाषाओं और साहित्यों पर पड़ा। इस विश्वव्यापी विचारधारा के प्रभाव से हिन्दी और तेलुगु साहित्य कैसे अछूता रह सकता था?

हिन्दी साहित्य में छायावद, रहस्यवाद आदि की प्रतिक्रिया स्वरूप जिस कविता का आविर्भाव हुआ, उसे प्रगतिशील कविता कहते हैं। प्रथम संग्राम के उपरांत पाश्चात्य देशों में औद्योगिक क्रान्ति हुई, इसके परिणाम-स्वरूप आर्थिक-व्यवस्था तथा समाज की मान्यताओं में विशेष परिवर्तन हुआ। इसका प्रभाव क्रमश सभी भाषाओं पर प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से पड़ा। कथा-वस्तु, छंद, अलंकार-योजना, भाव, भाषा शैली सब में परिवर्तन हुआ। हिन्दी में सबसे पहले सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने छंदों के बंधनों को तोड़ा तो तेलुगु में श्रीरंगम श्रीनिवासराव ने। इन दोनों कवियों ने भिक्षुक, विधवा से ले कर प्रत्येक व्यक्ति को काव्य का नायक बनाया। दोनों भाषाओं में अभ्युदय साहित्य या प्रगतिशील-साहित्य को काफी आदर-सम्मान प्राप्त हुआ। उपर्युक्त काव्य धाराओं की प्रमुख प्रवृत्तियों के कवियों के अलावा दोनों साहित्यों में अनेक प्रमुख कवि पैदा हुए जिन की रचनाओं पर यहाँ प्रकाश डालना संभव नहीं है।

गद्य के विविध अंग

काव्य के अंतर्गत गद्य, पद्य और चंपू की गिनती होती है। दृश्य काव्य के अन्तर्गत नाटक गद्य प्रधान होने के कारण गद्य की शाखा माना जा सकता है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य में प्रधानत दो शाखाएँ मानी जा सकती हैं—पद्य एवं गद्य। इन दोनों का सम्मिश्रण ही चंपू कहलाता है।

तेलुगु भाषा मे चपू काव्य की प्रधानता है। अत तेलुगु साहित्य के प्रारम्भिक समय से ही चपू का विकास होता आया है, किन्तु हिन्दी मे चपू नहीं लिखे गये। गद्य की अनेक शाखाएँ मानी जाती हैं, जो क्रमश कहानी, उपन्यास, नाटक, समीक्षा, जीवनी, यात्रा-वृत्तात आदि हैं। हम यहाँ गद्य के दो प्रमुख भेदो पर ही विचार करेंगे और हिन्दी-तेलुगु के इन दोनो अगो की सक्षेप मे तुलना प्रस्तुत करेंगे।

उपन्यास

हिन्दी का प्रथम उपन्यास लाला श्रीनिवासदास कृत "परीक्षा गुरु" माना जाता है, तो तेलुगु मे श्री वीरेशलिंगम पतुलु विरचित "राजशेखर-चरित्र"। "परीक्षा गुरु" की अपेक्षा "राजशेखर-चरित्र" प्रौढ तथा उपन्यास-कला की दृष्टि से उत्तम कहा जा सकता है। बाबू देवकीनन्दन खत्री ने जासूसी उपन्यास लिख कर हिन्दी पाठकों मे उपन्यासो के प्रति रुचि पैदा की तो चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहम पतुलु ने "गणपति" लिख कर तेलुगु पाठको को प्रेरित किया। "गणपति" उपन्यास शिष्ट हास्यप्रधान है। इसको इतनी लोक-प्रियता प्राप्त हुई कि लक्ष्मीनरसिंहम पतुलु उच्च कोटि के लेखकों में गिने जाने लगे। आपने "अहल्याबाई", "हेमलता" आदि ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे। आप के अन्य उपन्यासो मे "सौंदर्यतिलक" पौराणिक और 'रामचद्र विजय" सामाजिक हैं।

श्री उन्नव लक्ष्मीनारायण पतुलु ने "मालपल्ले" (हरिजनो की बस्ती) लिख कर तेलुगु उपन्यास-साहित्य मे क्राति पैदा की। समाज-सुधार एव राष्ट्रीय जागृति से पूर्ण इस उपन्यास का अधिक प्रचार हुआ। इसी जमाने मे प्रेमचन्द जी ने हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र मे प्रवेश किया। युग निर्माता गांधी की वाणी के प्रभाव से भारत के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एव धार्मिक क्षेत्रो मे क्राति की भावनाएँ, उठ रही थीं। जब देश या समाज क्रातिकारी भावनाओं से पूरित हो कर, विभिन्न शक्तियो के सघर्ष से विक्षुब्ध हो उठता है तब उस देश या समाज में ऐसे व्यक्ति पैदा होते है, जो उस जमाने के मूक, अव्यक्त भावो को अपनी वाणी या लेखनी द्वारा प्रकट करते हैं। यही काम प्रेमचन्द ने किया। उन्होंने "सेवासदन" से 'गोदान" तक सभी उपन्यासो मे देश के सजीव चित्र चित्रित किये। उनकी लेखनी से एक ऐसा युग अकित हुआ जिसमे व्यक्तियों की महत्ता न हो कर उनके अदर की विचार-धारा का सजीव चित्र चित्रित हुआ।

प्रेमचन्द से पहले हिन्दी-साहित्य के इतिहास में जन-साहित्य की तरफ़ किसी ने ध्यान नहीं दिया। यदि किसी ने दिया भी है तो केवल नाममात्र के लिए। इसलिए अगर हम यह कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी कि हिन्दी-साहित्य के इतिहास में जन-साहित्य के प्रवंतक प्रेमचद हैं। साहित्य क्षेत्र में उनके आगमन के पहले राजा, नवाब, अमीर और रईसों को ही साहित्य में स्थान मिलता था। हमारे साहित्यकार और कलाकारो की दृष्टि में देश के नब्बे प्रतिशत आदमी, जिन्हें हम जनता कहते हैं, साहित्य या कला में स्थान पाने के योग्य नहीं थे। ऐसे समय में, प्रेमचद साहित्य में नये भाव और नये विचार ले कर आये। जिन्हें हमारा समाज अब तक मूक और गूंगा समझता था, उन्हें जवान दी प्रेमचद ने। ग़रीबों के भी दिल होता है। उनमें भी मुहब्बत की चाह होती है, वे मुहब्बत के लिए कुर्बानियाँ भी करते हैं, उनमें सुख और दुख की अनुभूति होती है, उनमें भी इज्ज़त-बेइज्ज़ती का ध्यान होता है। जिन्हें समाज मिट्टी का माधो समझता है, उनमें भी जोश है, और वलवला है और हैं बग़ावत की उमगें और कुर्बानी का माद्दा। इन सचाइयों को हमने पहले प्रेमचद के उपन्यासों में ही देखा।

प्रेमचद ने जन-साहित्य ही नहीं दिया, वरन् उस साहित्य की भाषा कैसी होनी चाहिए, उसका नमूना भी दिया। जनता में प्रचलित कितने ही शब्दों का, मुहावरों और कहावतों का हिन्दी-साहित्य में उन्होंने प्रयुक्त किया। इस तरह प्रेमचद ने लोगों को विचारधारा में ही परिवर्तन नहीं किया वरन् भाषा-क्षेत्र में भी ऐसी एक शैली प्रस्तुत की जो जनता के लिए आसान है और ज़ोरदार भी।

कला की दृष्टि से "रगभूमि" प्रेमचद का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है, किन्तु उनकी सारी अनुभूति और कल्पना का चित्रपट 'गोदान' है। उसमें 'रगभूमि' की तरह ज़िदगी की फिलासफी नहीं है। "कर्मभूमि" की तरह सामाजिक जीवन के कर्तव्य नहीं हैं। "सेवा सदन" की तरह सेवा की कोई योजना नहीं है। "निर्मला" की तरह अनमेल विवाह की कोई करुण कहानी नहीं है। उसमें सिर्फ़ कुछ चित्र हैं, कुछ समस्याएँ हैं। चित्रों में रग है— और वे ज़िदा हैं। इस उपन्यास के पात्र अपनी समस्याओं की उलझन में पड कर उठते हैं बैठते हैं, बोलते हैं, मौन रहते हैं, हँसते हैं और रोते हैं। इस उपन्यास में ग्राम्य जीवन की आशा और निराशा, प्रेम और द्वेष, त्याग और भोग प्रतिबिंबित हैं। इन प्रतिबिंबों को देख कर हम घबराते हैं। अपन

हृदय पर हाथ रख कर सोचने लगते है कि यह क्या हो रहा है। हम क्या थे और क्या हो गये हैं और शर्म और गम भरे दिलो से सोचते है कि हम ऐसे क्यो हो गये है ? बस, यही प्रेमचद की उपन्यास-कला की विशेषता है। यही उनकी लेखनी की विशेषता है।

प्रेमचद गांधी-युग के युग-प्रवर्तक कलाकार है। गांधीवाद की छाप उनके हृदय पर स्पष्ट है। मगर उनका मस्तिष्क मार्क्स-दर्शन से प्रभावित यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपनाने की प्रेरणा देता है। उनका अतिम उपन्यास "गोदान" एक अच्छा नमूना है। इसलिए प्रेमचद ने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का चित्रण किया है। अर्थात् यथार्थवादी भित्ति पर पैर जमा कर गांधीवादी पखो के सहारे उडे हैं।

तेलुगु के उपन्यासो मे गुडिपाटि वेंकटाचलम का विशेष स्थान है। "मैदानम", "हंपी-कन्चलु", "शशिरेखा" आदि उनके उत्तम उपन्यास है। तेलुगु के विख्यात उपन्यासकारो मे श्री विश्वनाथ सत्यनारायण, अडिवि बापिराजु, नरसिंह शास्त्री, बुच्चि बाबू, कोडवटिगटि कुटुब राव, गोपीचद, मल्लादि वसुधरा उल्लेखनीय है।

हिन्दी के उपन्यासकारो मे श्री जयशकर प्रसाद, डा० वृन्दावनलाल वर्मा, अज्ञेय, भगवतीचरण वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, रागेय राघव, मन्मथनाथ गुप्त, यशपाल, जैनेन्द्र, निराला, गुरुदत्त, नागार्जुन इत्यादि प्रमुख हैं।

तेलुगु मे श्री बुच्चि बाबू और कुटुबराव मनोवैज्ञानिक उपन्यास लिखने मे सिद्धहस्त हैं तो गोपीचद समस्यामूलक उपन्यास। श्री विश्वनाथ सत्यनारायण ने "वेयिपडगलु" नामक एक हज़ार पृष्ठो का वृहत् उपन्यास लिखा है, जिसमे सपूर्ण आध्र की सस्कृति एव सभ्यता का चित्र प्रस्तुत है। इनके अन्य उपन्यासो मे "चेलियलिकट्ट", 'जेबु दोगलु', मा बाबू', 'स्वर्गानिकि निच्चेनलु' प्रमुख हैं।

श्री अडवि बापिराजु के उपन्यास ऐतिहासिक और भावात्मक दोनों है। इनके उपन्यासो मे 'नारायणराव', 'गोन गन्नारेड्डी', 'जाजि मल्ले', 'हिम-बिंदु' विख्यात है। 'हिमबिंदु' ऐतिहासिक उपन्यास है।

श्री नरसिंह शास्त्री ने 'नारायण भट्ट', 'रुद्रमदेवी' और 'मल्लरेड्डी' नामक तीन उपन्यासो की रचना की। इसी समय बगला, अग्रेज़ी और अन्य भाषाओ से सैकडो उपन्यास हिन्दी और तेलुगु मे अनूदित हुए हैं। तेलुगु मे

हिन्दी से प्रेमचद, राहुल साकृत्यायन, जैनेन्द्र आदि के प्रमुख उपन्यास भी अनूदित हुए हैं। तेलुगु से 'नारायणराव' और 'रुद्रमादेवी' जैसे उपन्यासो का अनुवाद हिन्दी मे हो चुका है। इनके अलावा नवीदित लेखको के सैकडो उपन्यास दोनो भाषाओ मे उपलब्ध हैं।

नाटक

हिन्दी का प्रथम अनूदित नाटक राजा लक्ष्मणसिंह का 'अभिज्ञान शाकुतल' माना जाता है। बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी मे पहला मौलिक नाटक लिखा।

उनके नाटको मे 'भारत-दुर्दशा', 'अधेर नगरी', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'नीलम देवी' आदि मुख्य हैं। इनके अलावा सस्कृत और बगला के कुछ नाटको का अनुवाद किया।

तेलुगु का प्रथम और मौलिक नाटक गुरजाड अप्पाराव कृत 'कन्या-शुल्कम्' है। भारतेन्दु तथा अप्पाराव दोनो ने समाज सुधार की दृष्टि से नाटको की रचना की। दोनो को आशातीत सफलता प्राप्त हुई। शिक्षितो और अशिक्षितो मे रगमच द्वारा जो सुधार लाया जा सकता है, वह अन्य साधनो द्वारा सभव नही है। इस बात को ये दोनो भली भाँति जानते थे। श्री वीरेशलिगम पतुलु ने भी कुछ नाटक लिखे थे।

हिन्दी मे श्री जयशकर प्रसाद और तेलुगु मे श्री वेदम वेंकटराम शास्त्री ने नाट्य-साहित्य की जो सेवा की वह अपूर्व है। प्रसाद और शास्त्री जी दोनो ने ऐतिहासिक नाटक लिखे। दोनों सस्कृत के प्रकाण्ड पडित थे। प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त', 'स्कदगुप्त' तथा 'अजातशत्रु' बहुत विख्यात हैं, तो शास्त्री जी के 'बोब्बिलि युद्धमु' और 'प्रताप रुद्रीयमु'। शास्त्री जी ने सबसे पहले पात्रोचित भाषा का प्रयोग कर तेलुगु नाट्य साहित्य मे नया अध्याय प्रारभ किया। प्रसाद और शास्त्री दोनो पडित थे। अत साहित्य को दृष्टि से भी दोनो के नाटक अत्यत महत्त्वपूर्ण हैं। लेकिन रगमच और अभिनय की दृष्टि से तेलुगु नाट्य-साहित्य हिन्दी नाटक साहित्य से अधिक समृद्ध है।

हिन्दी के नाटककारो की कुछ कृतियो का यहाँ उल्लेख करेंगे। श्री सुदर्शन के 'सिकन्दर', 'भाग्य चक्र', चन्द्रगुप्त विद्यालकार के रेवा', 'अशोक', सेठ गोविन्ददास के शेरशाह, कुलीनता, हर्ष, शशिगुप्त, हरिकृष्ण प्रेमी के रक्षा-बधन, शिवासाधना, लक्ष्मीनाराण मिश्र के सन्यासी, राक्षस का

मदिर, मुक्ति का रहस्य, सिन्दूर की होली, जगन्नाथ प्रसाद का प्रताप-प्रतिज्ञा, राकेश का आषाढ का एक दिन, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का जय-पराजय और उदयशकर भट्ट का 'दाहर' उल्लेखनीय हैं।

आध्र नाटक पितामह धर्मवरम् कृष्णमाचार्युलु ने करीब चालीस नाटको की रचना की और बल्लारी मे एक नाटक-समाज की स्थापना कर स्वय अभिनय किया और दूसरो से कराया। इनके नाटको मे चित्र-नलीयमु, पादुकापट्टाभिषेकमु, विषाद सारगधर और सावित्री प्रसिद्ध हैं।

श्री कोलाचलम श्रीनिवासराव नाटककार ही नही कुशल अभिनेता भी थे। इन्होंने करीब तीस नाटक लिखे, जिनमे विजयनगर राज्यपतनमु काफी विख्यात है। इन्होने भी एक नाटक समाज की स्थापना करके नाट्य-कला की अपूर्व सेवा की।

राजमहेंद्रवरम् मे चिलकर्मति लक्ष्मीनरसिंहम जी ने हिन्दू नाटक-समाज की स्थापना की। ये एक अच्छे अभिनेता थे इनका प्रथम नाटक "कीचक वध" है। इसी नाटक के प्रदर्शन मे आध्र के भूतपूर्व मुख्यमत्री आध्र केशरी श्री टी प्रकाशम् ने द्रौपदी का वेष धारण किया था। इस तरह अभिनय को एक विशुद्ध कला मान कर शिक्षित व्यक्तियो ने भी नाटको की श्रीवृद्धि मे योगदान दिया। चिलकर्मति लक्ष्मी नरसिंहम जी का प्रसिद्ध नाटक "गयोपाख्यान' है। इसकी लोकप्रियता का सबसे बडा उदाहरण यह है कि अब तक इस नाटक की क़रीब दो लाख प्रतियाँ बिक चुकी हैं।

तेलुगु के लोकप्रिय नाटककारो मे श्री पानुगटि लक्ष्मीनरसिंहम् का नाम आदर के साथ लिया जाता है। इनके नाटको मे हास्य की प्रधानता रहती है। विप्र नारायण, पादुका पट्टाभिषेकमु, कठाभरणमु, इनके प्रमुख नाटक है।

जब देश मे राष्ट्रीय जागृति की लहर उठी तो युग की चिंतन धारा से प्रभावित हो कर हिन्दी और तेलुगु के नाटककारो ने राष्ट्रीय भावनाओ से पूर्ण नाटको की रचना की। समाज सुधार की आवश्यकता को अनुभव करते हुए कुछ नाटककारो ने सामाजिक नाटक प्रस्तुत किये। आज तो राजनैतिक, सास्कृतिक एव समस्या प्रधान नाटक भी लिखे जाने लग हैं। इस तरह सैकडो नवोदित नाटककार अपने नाटको द्वारा हिन्दी और तेलुगु नाटक साहित्य को समृद्ध बना रहे हैं।

दोनो भाषाओ मे एक ओर मौलिक नाटको की रचना हो रही है तो तो दूसरी ओर अनुवाद किया जा रहा है। हिन्दी मे द्विजेन्द्रलाल राय के सभी

नाटको का अनुवाद श्री रूपनारायण पाडे ने प्रस्तुत किया। देशी और विदेशी भाषाओ से भी अनुवाद होने लगे। आज तो दुनिया की सभी प्रसिद्ध भाषाओ से नाटको का अनुवाद हिन्दी मे हो रहा है।

तेलुगु मे भी बगला और अग्रेजी मे कई नाटको का रूपान्तर हो चुका है। आजकल के नाटककारो मे आचार्य आत्रेय, श्री सुकर सत्यनारायण, बासिरेड्डि भास्करराव, डी. वी. नरसराजु, अनिसेट्टि, पिनिसेट्टि, रामचन्द्र, नार्ल वेंकटेश्वरराव, राजमन्नार, गोरा शास्त्री, कुटंबराव, विश्वनाथ सत्यनारायण, मुद्दुकृष्ण, बुच्चि बाबू इत्यादि बीसों नाटककार तेलुगु नाटक-साहित्य को समृद्ध बनाने मे योगदान दे रहे हैं।

नाटक के अन्य रूपो मे 'नाट्यरूपक' और 'गीति-रूपक' उल्लेखनीय हैं। तेलुगु मे स्वामी शिवशकर शास्त्री, देवुलपल्ली कृष्ण शास्त्री, डा गोपाल रेड्डी, सो नारायण रेड्डी और दाशरथी और हिन्दी मे सुमित्रानदन पत और भगवती-चरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा आदि के नाम इस दिशा मे आदर के साथ लिये जा सकते हैं।

उपर्युक्त विवेचन मे यह स्पष्ट है कि भारतीय भाषाएँ, भिन्न-भिन्न होते हुए भी उनकी आत्मा एक है। भारतीय सस्कृति की एकता का यह एक उत्तम उदाहरण है। उपर्युक्त विवेचन से यह भी स्पष्ट होता है कि आज की परिस्थितियो का प्रभाव समस्त भारतीय साहित्य पर प्रतिबिंबित है। लेखक जिन परिस्थितियो से प्रभावित होता है, उन्ही का चित्रण अपनी कृतियो मे करता है। लेखक पर प्रभाव डालने वाली अनेक परिस्थितियाँ हैं, उदाहरण के लिए धर्म, समाज, अर्थ-व्यवस्था तथा राजनीतिक व्यवस्था तथा अन्यान्य विचार-धाराएँ, इसके अन्तर्गत मानी जा सकती हैं, अत विभिन्न भाषाओं के तुलनात्मक-अध्ययन मे इन विभिन्न विषयो का ध्यान रखना आवश्यक है। सक्षेप मे आज हिन्दी और तेलुगु साहित्य के विभिन्न क्षेत्रो मे होने वाली वर्तमान गतिविधि को देख कर आशा की जा सकती है कि दोनो भाषाओ के सम्मुख उज्वल भविष्य है।

—

तुलसीदास एवं त्यागराज की भक्ति-पद्धति का— तुलनात्मक अध्ययन

श्री ए. सी. कामाक्षिराव

हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य कवि भक्तशिरोमणि तुलसीदास की भाँति भक्त त्यागराज दक्षिण की भक्त परम्परा मे श्रेष्ठ राम भक्त कवि थे। यद्यपि ये दोनो समकालीन नही थे, तथापि उनमें कई प्रकार के साम्य विद्यमान हैं। दोनो प्रतिभा-सम्पन्न कवि थे, भावुक भक्त थे और लोक-कल्याण की भावना से परिपूर्ण सत पुरुष थे। दोनो राम के अनन्य भक्त होते हुए भी दूसरे देवी-देवताओ का आदर करते थे। त्यागराज के भक्तिपूत कीर्तन आज भी समस्त दक्षिण भारत मे प्रसिद्ध हैं अवश्य, किन्तु अपने सगीत-माधुर्य के कारण। विडबना यह है कि त्यागराज की भक्ति की ओर लोगो का ध्यान उतना नही गया जितना अपेक्षित है। इसका कारण यह है कि त्यागराज तमिल प्रदेश के केन्द्रस्थ स्थान मे जन्मे थे और वही उनके कीर्तनों की रचना हुई थी। उनके सभी गीत उस समय की लोक भाषा तेलुगु मे लिखे गये थे। उनके सगीत से प्रभावित एव आकृष्ट शिष्यों मे अधिकतर लोगो की मातृभाषा तमिल थी, इसलिए गीतों का सही-सही अर्थ समझने मे उन्हे सहज ही कठिनाई हुई होगी। यदा कदा तेलुगु के सगीतज्ञ एव साहित्य-वेत्ताओं का ध्यान उस ओर अवश्य गया, किन्तु सगीतज्ञो मे अधिकतर लोग उनकी संगीत सुधा का ही आस्वादन करने से सतुष्ट हो गये और साहित्य-मर्मज्ञ उनकी कविता को कदाचित लोकगीतो के अतर्गत मान कर उसके मूल्याकन करने से उदासीन रहे। यही कारण है कि त्यागराज को ले कर श्रद्धेय श्रीविस्सा अप्पाराव द्वारा प्रकाशित एक ग्रथ को छोड कर कोई दूसरी प्रामाणिक पुस्तक तेलुगु मे प्रकाशित नही हुई। दुर्भाग्य है कि वह ग्रन्थ भी आज उपलब्ध नही है।

भक्ति की सामान्य परिभाषा है—'परानुरक्तिरीश्वरे'। ईश्वर मे प्रकृष्ट अनुराग ही भक्ति है। इसके दो रूप हैं—वैधी भक्ति और रागात्मिका भक्ति। विधिविधानमयी, शास्त्र सम्मत भक्ति पद्धति वैधी भक्ति कहलाती है और यह मदश्रद्धा वालो के लिए है। इसे हम आगम भक्ति कह सकते हैं। तीव्र श्रद्धावालो के लिए रागात्मिका भक्ति अनुकूल है, उसे निगम भक्ति कह सकते हैं। यह विधि विधानो का आश्रय कम लेती है। इसके लिए भगवत् प्रेम ही सर्वस्व है। इस पद्धति का भक्त भगवत् प्रेम की प्राप्ति के लिए उसी प्रकार व्याकुल रहता है, जैसे जल से बिछुडी हुई मछली तडपती है। श्रद्धालु की प्रकृति एव परिस्थिति के अनुसार इसके हृदय मे ईश्वर के प्रति जैसा आसक्ति उदित होती है, उसी का सहारा ले कर वह भगवान से प्रेम करने लगता है। नारद ने इन भगवत् सबधी आसक्तियो के ग्यारह प्रकार माने हैं—गुण माहात्म्य, रूप,पूजा, स्मरण, दास्य, सख्य, वात्सल्य, कान्ता, आत्म निवेदन, तन्मय और परम विराग। तुलसी तथा त्यागराज ने प्रधानत दास्य को और गौण रूप मे अन्य आसक्तियो का आश्रय ले कर श्रीरामचन्द्र से भक्ति की।

तुलसी एव त्यागराज ने रामचन्द्र जी को अपना इष्टदेव माना और अनन्य भाव से उनकी भक्ति की। तुलसी की चातक भक्ति तो विख्यात है—

एक भरोसो एक वल एक आस विस्वास,
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास॥

श्रीराम के प्रति त्यागराज की अनन्य भक्ति निम्नलिखित पक्तियो मे द्रष्टव्य है—

(१) निन्ने नेर नम्मिनानु, नीरजाक्ष ननु ब्रावुम,
कन्न वन्न वारिनि वडूकोग्रानु फलमु लेदनि ने ॥ निन्ने ॥

(२) निन्ने भजन सयुवाडनु
पन्नगशायी परल्वेडलेनु ॥

तुलसी ने यद्यपि सगुण तथा निर्गुण ब्रह्म मे कोई भेद नही माना, फिर भी ब्रह्म के अनन्त शक्ति शील-सपन्न सगुण राम को ही अपना आराध्य चुना, जिन्होने लोकहिताय मानव रूप ले कर मनुज-अनुहारी कार्य किये थे। त्यागराज ने भी ब्रह्म के लोक कल्याणकारी सगुण रूप की आराधना की।

(१) जगदानदकारक जय जानकी प्राणनायक
गगनाधिप सत्कुलज राजराजेश्वर
सगुणाकर सुजनसेव्य भव्यदायक

(२) वग वगगा भुजियिचेवारिकि तृप्ति यौ रीति
सगुणध्यानमु पैनि सौख्यमु
घनुलैन अतन्नानुलकेरन गानि।

तुलसी ने अपनी भक्ति का भव्य भवन विरति विवेक की सुदृढ नीव पर निर्मित किया है। उनकी भक्ति का स्वरूप इस प्रकार है—

श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ सजुत विरति विवेक

इसके अनुसार तुलसी की भक्ति एक ओर श्रुति सम्मत अर्थात् वेद आदि धर्म ग्रंथों से परिपुष्ट है और दूसरी ओर वैराग्य एव विवेक (या ज्ञान) से अनुप्राणित है।

त्यागराज की भक्ति का स्वरूप भी यही था। हरि कीर्तन स्वरूप की चर्चा करते हुए त्यागराज कहते हैं—

निगम शिरोर्थमु गलिगन निज वाक्कुलतो, स्वर शुद्धमुतो
यति, विश्राम, सद्भक्ति, विरति, द्राक्षारस, नवरसयुत
कृति भजियिचु

(निगमो के सच्चे अर्थ से भरे स्वर, यति, लय से युक्त, वैराग्य एव भक्ति से परिपूर्ण नवरसो से भरे कीर्तनों से (तुम्हे भजने वाला ही धन्य है)।

विवेक (ज्ञान), भक्ति एव वैराग्य बिना प्रयत्न के साध्य नही है। इसके लिए अनवरत कठोर साधना अपेक्षित है। शकराचार्य जी ने साधक की साधना-सपत्ति मे चार मुख्य साधनो का उल्लेख किया है। वे हैं—नित्यानित्य वस्तु विवेक, वैराग्य, शम-दमादि अर्थात् उपरति, तितिक्षा, समाधान, श्रद्धा और मुमुक्षु। भागवत पुराण ने भक्ति के नौ साधन माने हैं—श्रवण कीर्तन विष्णो स्मरण पादसेवन, अर्चन, वदन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदनम्। इनमे पहले तीन साधन श्रवण, कीर्तन, स्मरण ईश्वर के नाम से सबध रखते है और श्रद्धा एव विश्वासवर्द्धन मे योग देते हैं। चौथा, पाँचवाँ और छठा (पादसेवन, अर्चन और वदन) ईश्वर के रूप से सबधित है और वैधी भक्ति के विशिष्ट अग हैं। अन्तिम तीन साधन (दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन) भाव सबधी है और रागात्मिका भक्ति से सबधित हैं। इस तरह भक्ति के ये साधन क्रमश एक-दूसरे के विकसित रूप है—पहले नाम, फिर रूप और तत्पश्चात् भाव। इसके अनुकरण पर अध्यात्म रामायण मे एक स्वतत्र नवधा

भक्त त्यागराज ने हमे तीन निधियाँ प्रदान की हैं—भक्ति, कविता एव सगीत। उनमे से केवल एक का—भक्ति का—सक्षिप्त विवेचन एव मूल्याकन करना इस लेख का उद्देश्य है।

त्यागराज श्रीराम के अनन्य भक्त होने के साथ-साथ श्रेष्ठ वाग्गेयकार थे। शार्ङ्गदेव ने अपने 'सगीत रत्नाकर' नामक ग्रन्थ मे वाग्गेयकार के लक्षण यो बताये है—

वाच गेयच कुरुते यः स वाग्गेयकारक

वाग्गेयकार के लिए यह आवश्यक है कि वह सगीत का लक्षणकार भी हो और उदाहरणकार भी। त्यागराज सगीत-कला के निष्णात विद्वान् और प्रतिभा-सपन्न कवि भी थे। राम की भक्ति ने इन दोनो गुणों को अधिक गरिमामय बनाया है।

त्यागराज की बाल्यावस्था के सस्कारो ने उनमे राम-भक्ति का बीज बाया ही नही, अपितु उसे पल्लवित एव पुष्पित भी किया। उनका जन्म स्मार्त परिवार मे हुआ था, जो शकराचार्य के अद्वैत मार्ग का अनुयायी था। इसीलिए उस परिवार मे शिव-केशव, लक्ष्मी पार्वती आदि सब देवताओ की उपासना होती थी। ऐसी पृष्ठभूमि मे राम के प्रति अनन्य भक्ति का निर्वाह असभव नही तो कष्ट साध्य अवश्य था। इसके लिए कठोर साधना की आवश्यकता होती है और ऐसी साधना मे थोडे लोग ही सफल हो सकते हैं, किन्तु त्यागराज के लिए यह सहज था। उन्होंने गुरूपदिष्ट राम-तारक मत्र का जप विधिवत किया और अततोगत्वा अपनी साधना मे सफलता प्राप्त की।

अद्वैतवाद के प्रतिपादक शकर भगवत्पाद ने जहाँ आत्मा और परमात्मा मे अभेद की कल्पना की, वहाँ उन्होने भक्ति का तिरस्कार नहीं किया। उन्होने अनुरागात्मिका भक्ति को साध्य नही बल्कि साधन माना। आचार्यपाद के नाम मे प्रचलित कई स्तोत्रो मे भक्ति भावना का बडा ही भव्य रूप दृष्टिगत होता है। वे भावद्वैतता चाहते थे, क्रियाद्वैतता नही। "भावाद्वैतम् सदाकुर्यात् क्रियाद्वैतम् न कर्हिचित्"। यही नही, वे चित्त शुद्धि के लिए भक्ति को परमावश्यक साधन मानते हैं। भक्त त्यागराज शकराचार्य के इसी पथ के अनुयायी थे। वे शरीर की दृष्टि से परमात्मा का दासत्व, जीव दृष्टि से विश्वात्मा का अशत्व और विशुद्ध आत्म-दृष्टि से अद्वैत मे विश्वास रखते थे। भक्त पोतना भी इसी पथ के अनुगामी थे और त्यागराज पोतना के श्रद्धालु अनुयायी थे।

प्रात स्मरणीय गोस्वामी तुलसीदास राम के अनन्य भक्त थे। वे परम वैष्णव थे और भगवान रामानुज की शिष्य परम्परा मे थे। सहज ही उन्हे ब्रह्म एव जगत दोनो को सत्य मानना चाहिए था, किन्तु उनकी रचनाओ मे यत्र-तत्र ऐसे उद्गार मिलते हैं, जो इस बात की ओर सकेत करते हैं कि उन्होने शकराचार्य के मायावाद का सर्वथा तिरस्कार नही किया। उन्होने ससार को 'मृगजल', 'रज्जु सर्प' आदि कह कर उसे भ्रम रूप बताया। उनका विचार था कि जीव ईश्वर का अश है, अत अमल, चैतन्य और अविनाशी है—

ईश्वर अश जीव अविनासी,
चेतन अमल सहज सुखरासी।

किन्तु जीव माया के अधीन है और माया ईश्वराधीन है—

मायावस्य जीव अविनासी
ईस वस्य माया गुनखानी॥

जब जीव अपने सच्चे स्वरूप को पहचानता है तब वह स्वत परमात्मा हो जाता है, फिर उसका जीवत्व नही रहता।

जानत तुम्हहि, तुम्हहि होइ जाई

किन्तु विशिष्टाद्वैत के अनुसार जीव का व्यक्तित्व नष्ट नही होता। जीव के परब्रह्म हो जाने की बात के अलावा, तुलसीदास ने कई स्थानो पर ससार को मिथ्या भी कहा है—

(१) गो गोचर जहँ लगि मनु जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥

(२) सपने होइ भिखारि नृप, रक नाकपति होइ
जागे लाभ न हानि कछु तिमि प्रपचु जिमि जोइ॥

(३) बूड्यो मृग-वारि खायो जेवरी को साप रे।

तुलसीदास के इन वक्तव्यो के सबध मे यद्यपि कुछ विद्वानो का मत है कि तुलसी ने हरिशून्य जगत को ही ऐसा कहा है, हरिमय जगत को नही, और तुलसी का मायावाद नैतिक है, दार्शनिक नही, फिर भी हमे यही लगता है कि तुलसी के दार्शनिक सिद्धान्त शकराचार्य के सम्प्रदाय के अधिक निकट पडते हैं या यो कहे कि तुलसी ने रामानुज के भक्ति-सिद्धान्त एव शकराचार्य के अद्वैत सिद्धान्त मे समन्वय साधने का सफल प्रयत्न किया। यही भागवत पुराण के व्याख्याता श्रीधर ने भी किया था, पोतना ने भी यही किया और भक्त त्यागराज ने भी इसी प्रयास मे सफलता पायी।

भक्ति का उल्लेख है, जिसकी तुलसीदास ने अपनी रामायण में चर्चा की है। उसके अनुसार भक्ति के ये नौ साधन हैं—सत-संगति, हरि-कथा, आसक्ति, गुरुसेवा, हरिगुण-गान, मंत्र जाप, शम-दम एवं विरति, संसार में सर्वत्र ईश्वर दर्शन, संतोष एवं पर दोष दर्शन से विमुखता, और ईश्वर में अखण्ड विश्वास। उपर्युक्त तीनों का समन्वय करने से भक्ति के साधनों में नाम जप, गुरु-कृपा, ईश्वर पर विश्वास, शम-दम एवं वैराग्य और सत-संगति ये प्रधान दिखायी पड़ते हैं। इन साधनों के अपनाने पर भी हरि-कृपा के बिना भक्ति दुर्लभ है। हरि-कृपा की प्राप्ति के लिए ईश्वर पर अटल विश्वास, निश्छल मन से हरि भजन और शरणागति परमावश्यक है। तुलसी तथा त्यागराज दोनों ने भक्ति के इन सभी साधनों का आश्रय लिया। तुलसीदास की विनयपत्रिका एवं त्यागराज के अनन्य गीत भव विह्वल भक्तों के हृदय के उद्गार हैं। अब हम उक्त साधनों में प्रत्येक की चर्चा करेंगे।

तुलसी बार-बार अपने मन को सलाह देते हैं कि तुम राम नाम का जप करो —

राम जपु, राम जपु, राम जपु बावरे।
घोर भव नीर निधि नाम निज नाव रे।

त्यागराज भी अपने मन से विनय करते हैं —

(१) भजन सेयवे मनसा, परम भक्ति तो
अज रुद्रादुलकु भूसुरादुलु कर्दन राम॥

(२) भज रे भज मानस राम
अज मुख शुक विनुत, शुभ चरित
निर्मित लोक, निर्जित शोक।

राम नाम की महिमा गाते हुए तुलसीदास कहते हैं —

राम नाम महामनि, फनि जग जाल रे।
राम नाम काम तरु देत फल चारि रे।
राम नाम प्रेम परमारथ को सार रे।

त्यागराज कहते हैं —

दरितेल्यिन अज्ञानलकु
भव नीरधि दाटि मोक्षमदुटकु
नीरज घरुडु उपदेशिंचिन
तारक नाममु तोनु वलसिन ¹

त्यागराज राम को तारक नामधेय कहते हैं और बराबर राम शब्द के बदले उसी का प्रयोग करते है। उनकी दृष्टि मे राम नाम ही वेदो का सार रूप है और शिव पचाक्षरी एव नारायण अष्टाक्षरी का समन्वित रूप है। वे कहते है—

शिव मत्र मुनकु 'म' जीवमु
माधव मत्र मुनकु 'रा' जीवमु
ई विवरमु तेलिसिन धनुलकु मोक्षेद

यह नाम सकीर्तन कोई यात्रिक क्रिया नही है। उसके लिए मन की पवित्रता एव एकाग्रता, सच्ची श्रद्धा, इद्रिय-निग्रह, नित्यानित्य वस्तु विवेक, यथालाभ सतोष आदि सत गुण आवश्यक हैं। सच्चा भक्त ईश्वरसबधी वाद-विवाद मे नही पडता। उसका ज्ञान अहकार प्रेरित तर्क पर आश्रित नही बल्कि अनुभूति पर निर्भर है। वेद, उपनिषद एव पुराणो मे निष्णात पडित बनने मात्र से वह ज्ञानी नही बन सकता। उसका ज्ञान वाक्य ज्ञान मात्र है। तुलसी ने ठीक ही कहा है—

वाक्य ज्ञान अत्यत निपुण
भव पार न पावै कोई।

तुलसी ईश्वर स्वरूप सबधी भिन्न-भिन्न वादो को निरर्थक मानते हैं—

केसव कहि न जाय का कहिए
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहि मन रहिए
....
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल कोउ मानै
तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहचानै।

अद्वैतवादी ससार को अनित्य, द्वैतवादी एव विशिष्टाद्वैतवादी कर्म प्रधान जगत को सत्य मानते हैं, जब कि योग शास्त्र के अनुयायी पतजलि आदि ससार को सत्य एव असत्य दोनो मानते हैं, इसलिए इन तीनो मतो को छोड जो राम की शरण मे जाता है, वह अपने स्वरूप को ठीक तरह से पहचानता है।

त्यागराज भी अनुभूति-हीन, भक्ति रहित, एव अहकार मूल तर्कजन्य ज्ञान का तिरस्कार करते हैं—

(१) अनुरागमु लेनि मनसुन सुज्ञानमु रादु

(२) पदवि नी सद्भक्तियु गलुटे
चदिवि वेद शास्त्रोपनिषत्तुल
सत्त तेलिय लेनिदि पदवा ?
(३) *भक्ति रहित शास्त्रविदितदूर*
मामव सतत रघुनाथ !

(भक्तिरहित शास्त्रो के लिए दुर्लभ, हे रघुनाथ मेरी रक्षा करो)

गुरु की कृपा ही भक्त के चचल मन को स्थिरता प्रदान करती है, उसके सभी सदेहो का निराकरण करके उसे विवेक प्रदान करती है। तुलसी कहते हैं—

(१) *तुलसीदास हरि गुरु करुना बिनु बिमल विवेक न होई।*
(२) गुरु कह्यो राम भजन नीको, मोहि लागत राज डगर सो।

त्यागराज भी यही कहते हैं—

गुरु लेक येटुवटि गुणिकि देलियग बोदु
करुकैन हृद्रोग गहनमुनु गोट्टनु ॥

त्यागराज तथा तुलसीदास दोनो, सत-सगति एव सतो का-सा स्वभाव, राम *भक्ति* के लिए आवश्यक *साधनो* मे श्रेष्ठ मानते है। तुलसी कहते हैं—

(१) रघुपति-भक्ति सत-सगति बिनु को भव त्रास नसावै।
(२) कबहुक हो यहि रहनि रहौगो
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा से सत सुभाव गहौगो
जथा लाभ सतोष सदा, काहू सो कछु न चहौगो।
परहित निरत निरतर मन क्रम-वचन-नेम निवहौगो
विगत मान सम सीतल मन पर-गुन नहि दोष गहौगो
परिहरि देह जनित चिन्ता दुख-सुख समबुद्धि सहौगो
तुलसीदास प्रभु यह पथ रहि अविचल हरिभक्ति लहौगो

त्यागराज भी सत-सगति का महत्त्व यो उद्घाटित करते हैं—

बुद्धिरादु बुद्धिरादु पेद्दल सुद्दुल विनक
बुद्धिरादु बुद्धिरादु भूरि विद्यलु नेर्चिन
धान्य धनमुल चेत धर्म मेतगु जेसिन
यनन्य चित्त भक्तुल यागमृतपानमु सेयक
त्यागराजनुतुडैन रामदासुल चेलिमि सेयक

त्यागराज कहते हैं कि राम-भक्त बनने के लिए संतो का जीवन विताना आवश्यक है। वे कहते हैं कि राम भक्त को—

कपटात्मुडु मनमै वल्कगरादु
भव विभवमु निजमनि येंचगरादु, मारि
शिव माधव भेदमु जेयकरादु
भुवनमदु ताने योग्युडनि
बोंकि पोट्ट साकग रादु
पवनात्मज धृतमौ सीतापति
पादमुलनु येमर रादु

संत स्वभाव का वर्णन त्यागराज यों करते हैं—

अनृतवाडडु अल्पुल वेडडु
मासमु मुट्टडु, मधुवनु त्रागडु
परहिंसल जेयडु, येरुकनु मरवडु

विरति या वैराग्य को तुलसी एव त्यागराज दोनों ने अपनी भक्ति का आधार माना। विषयो से अनासक्ति, व्यक्तित्वाभिमान या अहकार का त्याग, सुखदु ख, राग-द्वेष आदि द्वद्वो मे निर्लिप्तता आदि वैराग्य के अतर्गत आते है। कितने ही मनीषी इस साधना मे विफल हो जाते हैं। जन्मजन्मान्तरो के सस्कारो की जो परतें हमारे हृदय पर जमी हुई हैं, उन्हे धो देना अत्यत कठिन साधना है, फिर भी इसमे सिद्धि प्राप्त किये बिना कोई मार्ग नही है। बार-बार मन को सचेत करते हुए सतत हरि भजन मे उसे प्रवृत्त करके ही कोई अनासक्त रह सकता है। तुलसी एव त्यागराज का यह प्रयत्न अत्यत मर्मस्पर्शी है। तुलसी अपने मन को बार-बार समझाते हैं कि हे मन, तुम सासारिक विषय वासनाओ से दूर रह कर राम का भजन करो—

जागु जागु जीव जड जोहै जग जामिनी
देह गेह नेह जानि जैसे घन दामिनी
तुलसीदास जागे ते जाइ ताप तिहु ताइ रे
राम नाम सुचि रुचि सहज सुभाय रे

त्यागराज भी अपने मन को बार-बार समझाते हैं—

(१) चेडे बुद्धि मानुरा
इडे पान मेवरी जूडरा

(२) विनवे ओ मनमा विवरवुग ने देलिपेद
मनसेरिगि कुमार्गमुन मरि पोरलुचु चेडवलदे

(३) मेनु जूचि मोस पोकुमी मनसा
लोनि जाड लीलागु कादा
होन मैन मलमूत्र रक्तमुल
किरवचु मायामय मैन, चान

किन्तु मन इतना हठी है कि वह किसी प्रकार का अनुरोध नहीं मानता। भक्त तब लाचार हो कर अपने प्रभु से अपने मन की शिकायत करता है कि हे स्वामी, तुम्हारी कृपा के बिना मेरा मन मेरे वश मे नहीं आ सकता। तुलसीदास अपने मन की चचलता से क्षुब्ध हो कर कहते हैं—

मेरो मन हरिजू हठ न तजै
निसिदिन नाथ देउ सिख बहुविधि करत सुभाउ निजै
हौं हार्यो करि जतन विविध विधि अतिसै प्रबल अजै
तुलसीदास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै

त्यागराज की आर्तध्वनि भी सुन लीजिए—

मनसु चाल विसदुरा, ना
तनुवु नीदनि विनुति जेसेद

तुलसी की भाँति उन्हे भी विश्वास हो गया कि राम की कृपा के बिना भक्ति दुर्लभ है। वे कहते हैं—

(१) भक्ति बिच्चमीयवे, भावुकमगु सात्विक
मुक्ति कखिल शक्तिकि त्रिमूर्तुलकति मेलिम

(२) नी पादमुल भक्ति निडारग नोसगि
कापाडु ना पाप मे पाटि राम

शरणागति के छहों प्रकार के कई उदाहरण तुलसी तथा त्यागराज के गीतो मे मिलते हैं। किन्तु विस्तार भय स हम उनको उल्लेख करने के लोभ का सवरण कर लेते हैं।

त्यागराज एव तुलसी के गीतो मे भक्ति का ऐसा परिपाक मिलता है कि हम भक्ति रस की दृष्टि स उनका निरूपण कर सकते हैं। मधुसूदन सरस्वती ने भक्ति रस क लक्षण बताते हुए कहा है कि जैसे रति शृगार रस का स्थायी भाव है, भगवदाकारता भक्ति रस का स्थायी भाव है। तुलसी

एव त्यागराज दोनो के इष्टदेव राम, भक्ति रस के आलबन हैं। उनके रूप, गुण एव कार्य उद्दीपन हैं। गुण-कीर्तन, कथा श्रवण, अर्चना, वदना आदि भक्ति के विविध प्रकार के अनुभाव है। औत्सुक्य, निर्वेद, आत्मगर्हण, दैन्य, अमर्ष, रोष, रोषोक्ति, स्वयोग्य कथन, मानस सबोधन आदि सचारी भाव है। अनुभावो मे कइयो की चर्चा हम पहले कर चुके हैं। सचारी भावो मे औत्सुक्य, निर्वेद, आत्मगर्हण, मानस सबोधन आदि सचारी भावो के उदाहरण तुलसी एव त्यागराज दोनो की रचनाओ मे समान है, किन्तु अमर्ष, रोष एव रोषोक्ति के उदाहरण सिर्फ त्यागराज के गीतो मे ही मिलते है, तुलसी मे नही। कदाचित तुलसी की प्रकृति एव वैष्णव प्रपत्ति भाव मे इसके लिए स्थान नही रहा हो। यही अतर तुलसी एव त्यागराज की भक्ति मे हमे दृष्टिगोचर होता है।

अपने इष्टदेव को द्रवित होते न देख कर त्यागराज कहते है—

(१) मरियाद गादय्या, मनुपवेदेमय्या
सरिवारिलो नन्नु चौक चेयुटेल्ल
श्रीहरि हरिनीवटि गुण निधिकि
(२) युक्तमु गादु ननु रक्षिचक युडेदि
(३) तनवारितनमु लेदा ? तारकाधिपानना, वादा ?
(४) नी दास दासुडनि पेरे, येमि फलमु ?
पेद सादलदु नीकु प्रेम लेक पोये !
(५) अन्यायमु सेयकुरा राम
नन्युनिग जूडकुरा
(६) नम्मिनवारिनि मरचेदि न्यायमा ?

निश्चय ही ये उद्‌गार प्रेम जन्य स्वतत्रता के कारण ही है, क्योकि त्यागराज ने राम को अपने माता पिता तथा गुरु के समान मानने के अलावा उनसे मधुरा भाव से भक्ति की थी। किन्तु रोष से कुछ कहने के तुरत बाद वे दीनातिदीन होकर अपने प्रभु से कृपा याचना करते हैं। तुलसी के लिए यह असह्य सा दीखता है। 'विनय पत्रिका' के केवल एक पद म वे रामचन्द्र के मौन से खीज उठते से दिखाई देते है—

पद्यपि नाथ ! उचित न होत अस प्रभु सो करौं ढिठाई
तुलसीदास सीदत निसिदिन देखत तुम्हार निठुराई

अन्य सचारी भावो का सविस्तार वर्णन यहाँ असभव है। केवल दैन्य का दिग्दर्शन मात्र करावे हम आगे बढ़ेंगे। त्यागराज एव तुलसी प्रधानत

दास्य भाव के भक्त हैं अत उनकी दीनता बहुत ही हृदयस्पर्शी है। तुलसी कहते है—

(१) बारक बलि अवलोकिये कौतुक जन जी को
(२) कहाँ जाउ कासो कहौं और ठौर न मेरो।
जनम गवायो तेरे ही द्वार मे किंकर तेरो॥
(३) कहाँ जाउँ कासो कहौं को सुनै दीन की
(४) देव दूसरो कौन दीन को दयालु

अब त्यागराज का अतर्नाद सुनिए—

(१) कट जूडमि ओक्सारि कौगट चूडुमी
(२) एट्टु बोदु नेनेमि चेयुदुनु
एच्चोटनि मारे बेट्टुदनु
(३) जगमेले परमात्मा एवरितो मोरलिडवु
(४) ए पापमु जेसितिरा राम नो
कोपार्ट न दयरादु

ऐसे कई कीर्तन त्यागराज के दैन्य को भली भाँति दर्शाते हैं।

त्यागराज की भक्ति पद्धति की एक और विशेषता है। वे सगीत को अपनी साधना म सहायक हा नही सिद्धि भी मानते है। भारतीय सगीत कला म प्रत्येक राग की एक आत्मा होती है, उसका अपना व्यक्तित्व होता है। "शोभिल्ल सप्त स्वर शीषक गीत म वे कहते हैं—सातो स्वरो की अधिष्ठात्री दवियों की उपासना करो। त्यागराज के इष्टदेव 'गाधर्वेच भुविश्रेष्ठ बभूव भरताग्रज' थे। सगीत मे राम निष्णात थे। इसलिए त्यागराज अपने प्रभु को सगीतलोल, राग रसिक आदि विशेषणो से विभूषित ही नही करते, उन्ह नाद सुधारस का नर रूप मानते हैं।

नादसुधारसविलनु नराकृति याय, मनसा
वेद पुराणागम शास्त्रादुल्काधारमौ

वे अपने इष्टदेव राम मे गीता का भाव एव सगीत का आनद दोनो का सामजस्य पाते हैं—

(१) सगीतज्ञानमु भक्ति विना
सन्मार्गमु कलदे मनसा ।

(२) स्वराग सुधारस युत भक्ति
स्वर्गापवर्गमुरा मनसा

इसलिए वे बारबार अपने मन को समझाते है—

रागसुधारस पानमु जेसि
राजिल्लवे ओ मनसा ।
नाद योग त्याग भोग
फल मोसगे
सदाशिव मयमगु नाद ओकार स्वरविदुलु
जीवन्मुक्तुलनि त्यागराजु देलियु

त्यागराज सगीत को योग की उच्च स्थिति मानते हैं—

नाद लोलुडै ब्रह्मानद मदवे मनसा

यद्यदि तुलसी की सभी रचनाएँ गेय हैं और तुलसी स्वय सगीत कला के श्रेष्ठ विद्वान थे फिर भी त्यागराज की भाँति उन्होंने सगीत को न योग के रूप मे देखा न नाद ब्रह्म के रूप मे राम की उपासना की।

हम अत मे यही कह सकते है कि भगवद् भक्तो, साहित्य रसिको एव सगीत मर्मज्ञो के लिए तुलसी एव त्यागराज की रचनाएँ महदानद प्रदान करने वाले अक्षय भडार हैं।

सगीतमपि साहित्य सरस्वत्या स्तनद्वयम्
एकमापात मधुर अन्यदालोचनामयम् ॥

तेलुगु और हिन्दी के काव्य साहित्य में वैष्णव-भक्ति

डाक्टर चावलि सूर्यनारायण मूर्ति

"सा परानुरक्तिरीश्वरे" (शाडिल्य सूत्र, २) के अनुसार ईश्वर मे प्रकृष्ट अनुराग ही भक्ति है जो अपने विशुद्ध रूप म निर्हेतुक और निष्काम होती है। उसमे तैलधारावत् नैरतर्य की भी आवश्यकता है।

अहैतुक्यव्यवहिता या भक्ति पुरुषोत्तमे। (भागवत ३/२९ १२)
सा तैलधारासम सस्मृति सतान रूपेशि परानुरक्ति ।
(श्री वैष्णव मताब्ज भास्कर पृ १०)

ईश्वर के त्रिविध रूपो मे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर मुख्य हैं। विष्णु के प्रति जो भक्ति होती है वह वैष्णव भक्ति के नाम से अभिहित है। विष्णु वेद प्रशस। देवता हैं जिन की भक्ति को चर्चा ऋग्वेद से ले कर समस्त वैदिक साहित्य मे की गई है।

प्र तद्विष्णु स्तवते वीर्येण मृगो न भीम कुचरो गिरिष्ठा
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियति भुवनानि विश्वा॥ ऋक् १/१५४/२

इस मत्र का अर्थ यह है कि जिस ईश्वर के सत्व, रज और तम इन तीनो से बने सर्गों में समस्त भुवन आश्रय पाते हैं, जो सिंह समान बल, पराक्रम और शक्ति से पापियो का भय देता है, जो पर्वत या मघ के समान सर्वोच्च स्थान मे स्थित और सर्वव्यापी है वह विष्णु भली भाँति स्तुति करने योग्य है।"

ब्राह्मण ग्रथो मे विष्णु को परम श्रेष्ठ देवता कहा गया है—
"अग्निर्वै देवानामवमो विष्णु परम तदतरण सर्वा अन्या देवता"
(ऐतरेय ब्राह्मण १/१)

वेदो के समान ब्राह्मणो मे भी विष्णु को सर्वशक्ति सपन्न कहा गया है—
एतरेय ब्राह्मण ६/३/१५, शतपथ ब्राह्मण १/९/३/९।

पुराण साहित्य मे तो विष्णु की महिमा और भक्ति के अनेकानेक आख्यान भरे पडे हैं। इन्ही आधारो पर परवर्ती सस्कृत साहित्य और आधुनिक देशी भाषाओ के साहित्य मे वैष्णव-भक्ति का विपुल साहित्य निर्मित हुआ है।

वैष्णव भक्ति का प्रधान ग्रथ है भागवत पुराण, जिसमे भक्ति नौ प्रकार की मानी गयी है।

"श्रवण कीर्तन विष्णो स्मरण पादसेवनम्
अर्चन वदन दास्य सख्यमात्मनिवेदनम्।" भा ७/५/२३

भक्ति के ये रूप बीज रूप मे वैदिक साहित्य मे मिलते हैं—

"य पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति
यो जातमस्य महतो महि ब्रुवत् सेदु श्रवोभिर्युज चिदभ्यसत्॥"

ऋ १/१५६/२

जो पुरुष सर्वप्राचीन, नित्य नूतन, जगत् के सृष्टिकर्ता तथा स्वयभू और ससार को मस्त बनाने वाली लक्ष्मी के पति विष्णु को सब कुछ दान करता है, उसका कीर्तन या उपदेश करता है वह यशस्वी और सपन्न हो कर परमपद को प्राप्त कर लेता है।—इसमे विष्णु नाम के श्रवण, कीर्तन तथा आत्मार्पण का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

"तमुस्तोतार पूर्व्य यथाविद ऋतस्य गर्भ जनुषा पिपर्तन।
आस्य जानतो नामचिद्विविक्तन महस्ते विष्णो सुमर्तिभजामहे॥

ऋ १/१५६/३

इसका भाव यह है कि ससार के कारणरूप उस विष्णु की स्तुति करो जो वेदात वाक्यो का प्रतिपाद्य है। स्तुति जब नही की जा सकती तब उसका नाम स्मरण करो। हम लोग विष्णु के तेजोमय और गुणातीत रूप का भजन करते हैं। इसमे विष्णु के नामस्मरण का स्पष्ट निर्देश है।

भागवत और अन्यान्य पुराणो म सुविकसित रूप मे पायी जाने वाली विष्णु भक्ति आगे चल कर रामानुजाचार्य के समय मे साप्रदायिक विशिष्टाद्वैतमूलक भक्ति के रूप मे परिणत हुई। अपने पूर्ववर्ती शकराचार्य के अद्वैतवाद का खडन करके उन्होने चिदचिद्विशिष्ट अद्वैत ब्रह्म की स्थापना की जिसकी भक्ति के लिए ब्रह्म के विष्णु रूप को ग्रहण किया गया। यहाँ इस साप्रदायिक वैष्णव भक्ति का थोडा सक्षिप्त परिचय अनावश्यक न होगा। रामानुजाचार्य के अनुसार चित्, अचित्, और ईश्वर तीन तत्व हैं। चित् (जीव) और

अचित् (जगत्) दोनो ईश्वर के अश हैं, अत दोनो नित्य हैं। ईश्वर इन दोनो मे अतर्यामी हो कर व्याप्त रहता है। इसलिए चित् तथा अचित् ईश्वर के शरीर या प्रकार माने जाते हैं' । अत अगभूत चिदचिद् की अगीभूत ईश्वर से पृथक् सत्ता न होने के कारण ब्रह्म अद्वैतरूप है। इसी कारण इस मत को विशिष्टाद्वैतवाद कहा जाता है। जीव अज्ञान के वश हो कर सासारिक बन्धनो मे पडा रहता है। भक्ति के साधन से भगवान विष्णु का प्रसाद पा कर मुक्त हो जाता है। इस दशा मे वह ब्रह्मानद का अनुभव करता रहता है। *विष्णु-भक्ति प्रधान और लक्ष्मी के द्वारा उपदिष्ट होने के कारण यह मत* श्रीवैष्णव मत कहलाया। इसके अनुसार भगवान का प्रीतिपूर्वक ध्यान करना ही भक्ति है (स्नेहपूर्वमनुध्यान भक्ति), जिसकी चरम परिणति प्रपत्ति (आत्म-समर्पण) है। अत भगवत् कैंकर्य या दास्य भक्ति इसका प्रधान रूप है। प्रपत्ति की भावना भी वैदिक साहित्य मे मिलती है।

यो ब्रह्माण विदधाति पूर्वं यो वेदाश्च प्रहिणोति तस्मैं।
त ह देवात्म बुद्धि प्रकाश मुमुक्षुर्वै शरणमह प्रपद्ये ॥

श्वेत, ६/१८

इसमे ब्रह्म और उसके निर्मित वेदो का आविर्भाव करने वाले, अपनी बुद्धि मे *प्रकाशित* होने वाले देव की शरण मे जाने का वर्णन है। अत रामानुज की वैष्णव भक्ति वैदिक विष्णु भक्ति का विकसित रूप है। इसके, तीव्रता की दृष्टि से वैधी रागात्मिका तथा रागानुगा आदि भेद हैं। विष्णु के साथ साधक की सम्बन्ध-भावना की दृष्टि से इसके दास्य, वात्सल्य, सख्य, माधुर्य आदि रूप होते हैं।

तेलुगु और हिन्दी साहित्य मे भक्ति के उक्त दोनो रूप मिलते हैं जिन पर आगे विचार किया जाएगा। विषय के अत्यधिक विस्तृत होने के कारण *दोनो भाषाओ के मध्यकाल के कतिपय प्रधान ग्रथो का ही इस निबध मे विचार* किया गया है।

वैष्णव भक्ति को साप्रदायिक अर्थ मे न ले कर विस्तृत अर्थ मे यदि ग्रहण करें तो उसको हम सवप्रथम तेलुगु के महाभारत मे पाते हैं जो तेलुगु का अब तक उपलब्ध आदि ग्रथ है। उसमें विष्णु के अवतार कृष्ण का महान् राजनीतिज्ञ और अतुलित महिमान्वित लोकरक्षक रूप चित्रित है और वही

---

१ सर्वं परम पुरुषेण सर्वात्मना स्वार्थे नियाम्य धार्यतच्छेषतैक-स्वरूपमिति सर्वं चेतनाचेतन तस्य शरीरम्। —(*श्री भाष्य २-१-९*)

वैष्णव भक्ति का आलवन बना है। अपनी तीर्थ-यात्रा के सिलसिले मे अर्जुन जब द्वारका जाने की बात सोनता है तब कवि नन्नय यो कहते हैं—

"परम ब्रह्मण्यु जगद्गुरु गरुडध्वजु ननतगुणु नेकाग्र
स्थिर मतिर्यै निज हृदयातर सुस्थितुजेसि भक्तिदल्चुचु नुडेन् ॥
"नरुनुनिकि येरिगि कृष्णुडु तिरमुग दयतोप्रभास तीर्थमुनकु नो
ववकरुण्ड चनुदेंचे सर्वेश्वरुडेप्पुडु भक्तुल्कुप्रसनुड काडे ॥

'अर्जुन परब्रह्म, जगद्गुर, गरुडध्वज और अनत गुण भगवान कृष्ण को अपन हृदय मे अकित करके भक्ति के साथ स्मरण करता रहा। सर्वेश्वर कृष्ण अपन भक्तो से बहुत प्रसन्न रहते है, इसलिए अर्जुन का आगमन सुन कर अकेले उससे मिलने प्रभास तीर्थ गये।' इसम अर्जुन की जो भक्ति वर्णित है वह भागवतोक्त नवधा भक्ति मे स्मरण भक्ति कही जा सकती है। भावना की दृष्टि से यह सख्य भक्ति है। ये पद्य मूल महाभारत मे नही हैं।

अरण्यपव मे अर्जुन और द्रौपदी के द्वारा कृष्ण का यज्ञ पुरुष और विश्वरूपधारी के रूप मे वर्णन किया गया है। द्रौपदी कृष्ण को प्रणाम करके कहती है कि हे भगवान् प्रजा की सृष्टि करने के कारण देवल ने आपको प्रजापति कहा, सत्य के द्वारा यज्ञ की रक्षा करने के कारण कश्यप ने आपको सत्यस्वरूप यज्ञ पुरुष कहा, आपके सिर मे आकाश चरणो मे पृथ्वी, नेत्रो म सूर्य और अन्य अगो मे समस्त लोको के व्याप्त रहने के कारण आपको नारद ने सर्वव्यापी बताया और सब मुनियो ने आपको अक्षय ज्ञान की निधि बतलाया (आ भा अ १ १३३)। आगे चल कर द्रौपदी अपने अपमान का दुःख प्रकट करती है। द्रौपदी मे यहाँ भगवद्गीतोक्त चतुर्विध भक्तो म[1] ज्ञानी और आतभक्त का रूप झलकता है। विदुर की भक्ति दास्य भक्ति है जिसमे ज्ञान गभीरता पायी जाती है। आन्ध्र महाभारत मे अन्य प्रसगो मे भी इसी प्रकार की ज्ञान-गभीर कृष्णभक्ति मिलती है जो वैदिक विष्णुभक्ति का ही रूप है। परवर्ती तेलुगु कृष्ण साहित्य म ऐसी ही ज्ञानमूलक भक्ति प्रतिपादित है, जो कही अद्वैतपरक और कही विशिष्टाद्वैतपरक है।

आन्ध्र महाभागवत मे वैष्णव भक्ति अपने विभिन्न रूपो म प्रतिपादित है। स्वय भागवत तो वैष्णव भक्तिशास्त्र का ग्रथ है। उसम

---

१ चतुर्विधा भजते मा जना सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ गी० ७-१६।

भक्ति के नौ भेदों में ज्ञान और आसक्ति मूलक दास्य भक्ति की प्रधानता है, यद्यपि उसके अन्य भेद भी पर्याप्त मात्रा में प्रतिपादित हैं। प्रपत्ति या शरणागति भक्ति की चरम सीमा के रूप में दिखायी पड़ती है। इस दृष्टि से सिद्धान्त वह भक्ति विशिष्टाद्वैत दृष्टिकोण को अधिक मानती है। सप्तम स्कंध का प्रह्लाद चरित्र और अष्टम स्कंध की गजेन्द्रमोक्ष की कथा इसके उज्ज्वल प्रमाण हैं। प्रह्लाद अपने पिता के सम्मुख विष्णु-भक्ति की जो महिमा गाता है वह वैधी-भक्ति का सुन्दर उदाहरण है। (आ भा. ७-१६१-१७१) हिरण्यकश्यप के वधानंतर प्रह्लाद भगवान् विष्णु के नृसिंहावतार की स्तुति करके अंत में जो याचना करता है, उसमें वही प्रपत्तिमूलक विशिष्टाद्वैती दृष्टिकोण स्पष्ट है, यह श्रीवैष्णव संप्रदाय की प्रधान विशेषता है। वह भगवान से वर माँगता है कि आपकी कृपा से मुझे भवदीय दास्य का योग प्राप्त हो। (आ. भा. ७-३६८) प्रह्लाद कहता है कि सब कामनाओं से मुक्त पुरुष भगवान के समान हो जाता है। (आ. भा ७-३७१) भगवान नृसिंह भी प्रह्लाद को वर देते हैं कि तुम देहावसान के बाद बंधन मुक्त हो कर मेरे निकट रहोगे। (आ. भा ७-३७३) इसमें सामीप्य मुक्ति प्रतिपादित है जो मध्वाचार्य के द्वैतवाद के अनुसार मुक्ति का एक भेद है। प्रह्लाद की यह भक्ति ज्ञानमूलक है और वह ज्ञानी-भक्त है।

मकर से पीडित गजेन्द्र भगवान विष्णु की जो स्तुति करता है वह भी तात्विक दृष्टि से विशिष्टाद्वैत परक है। (आ भा ८,७३-९२) वह कहता है कि भगवान से जगत् का जन्म होता है और उसी में उसका लय होता है। जैसे अग्नि से किरणें और सूर्य से प्रकाश निकलता है उसी प्रकार परब्रह्म से ब्रह्मादि देवताओं और मनुष्यों की सृष्टि होती है। गजेन्द्र की स्तुति सुनकर विश्वमय विष्णु उसकी रक्षा के लिए आते हैं। गजेन्द्र की यह भक्ति आर्तभक्ति है जो तात्विक दृष्टि से विशिष्टाद्वैत-प्रधान और ज्ञानमूलक है। इसी प्रकार दशम स्कंध के उत्तरार्ध में वेदों की कृष्ण-स्तुति में भी विशिष्टाद्वैत प्रधान भक्ति लक्षित होती है। वेद कहते हैं कि हे भगवन्, जिस प्रकार सोना कंकण, मुकुट, कुंडल आदि आभूषणों का रूप धारण करके भी सोना ही बना रहता है उसी प्रकार तुम सृष्टि के विकारानुवर्ती होकर भी कल्याण गुणात्मक हो। (आ भा १०-उ-१२२०) इसमें द्वैताद्वैत भावना का पुट है, क्योंकि भेदाभेदवादी विचारधारा के अनुसार कारणात्मना जीव तथा ब्रह्म की एकता है, परन्तु कार्यरूप में दोनों की अनेकता है जिस प्रकार कारणरूपी सुवर्ण की एकता बनी

रहने पर भी कार्यरूप कटक, कुडलादि रूप मे भिन्नता रहती है। (भा रा पृ ३३५)

दशमस्कध के पूर्वार्ध मे गोपिकाओ की माधुर्य भक्ति सबसे अधिक प्रतिपादित है, जिन्होंने कृष्ण का सयोग सुख और वियोग दोनो पाये थे। गोपिकाओ की यह भक्ति केवल रागात्मिका है। उनकी अनुरागपूर्ण भक्ति से प्रसन्न हो कर कृष्ण उनसे आत्माराम बनकर क्रीडा करते हैं। गोपिकाओ की रागात्मिका माधुर्य भक्ति के मूल मे कृष्ण के अवतारी पुरुष होने का ज्ञान निहित है। वे कृष्ण से कहती हैं कि तुम केवल यशोदा के पुत्र नही हो। सब जतुओ की चेतना मे व्याप्त और ज्ञात प्रभु हो। ब्रह्मा की प्रार्थना के अनुसार, तुमने पृथ्वी पर सत्कुल मे मनोहर आकार से जन्म लिया है। गोपिका-गीतो मे गोपियो की वियोग व्यथा भक्ति का पुट लिये हुए वर्णित है। (आ भा १० पृ, १०३९–१०६१) वे कहती हैं कि हे धर्मज्ञ कृष्ण, आपने देहधारिणियो के लिए पति, पुत्र और बधुओ की सेवा करना धर्म बताया। किन्तु पति-पुत्रादि के रूप मे भासित तुममे पति पुत्रादि सबधी इच्छा से तुमको सभावित करना क्या अन्याय है? (आ भा पृ ९९०) गोपिकाओ की इस भक्ति मे शुद्धाद्वैत परिलक्षित होता है, जिसके अनुसार अपनी आत्मा मे आतरिक रमण करने वाला ईश्वर आत्माराम कहलाता है। भ्रमर गीतो मे भी उसी प्रकार की रागात्मिका भक्ति के दर्शन होते हैं।

कतिपय स्थानो मे अद्वैत भावनामूलक भक्ति मिलती है। "समस्त भूतो के शरीरातर्गत आत्मा ही ईश्वर है।" ' हे देव, रस्सी मे सर्प की भ्राति के समान द्रव्यातर से तुम ब्रह्म मे ससार का भ्राति होती है" (आ भा ६–२०१, ३४३) 'भोक्ता जीव को वासुदेव ब्रह्म ही जानो"। (आ भा २ ८४) "ईश्वरेतर पदार्थ कोई नही है। (आ भा २–८५) इत्यादि उद्धरणो म अद्वैत भावना ही लक्षित होती है, अत सक्षेप मे यह कहा जा सकता है, आध्र भागवत मे प्रतिपादित वैष्णव भक्ति कही विशिष्टाद्वैत परक है तो कही अद्वैत-परक और कही शुद्धाद्वैत प्रधान है तो कही द्वैत और द्वैताद्वैत की झलक भी मिलती है। इस प्रकार भागवतोक्त वैष्णव भक्ति मे प्राय सब दार्शनिक वादो का समन्वित रूप मिलता है जिससे यह सिद्ध होता है कि मुक्ति प्राप्त करने मे भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ साधन है। इसकी रचना प्राय मूल भागवत के अनुसार ही हुई है यद्यपि कही-कही परिवर्द्धन तथा सक्षिप्तीकरण भी किया गया है।

नारायण तीर्थ और सिद्धेन्द्र योगी की कृष्णभक्ति कीर्तन पद्धति की है जिसमे सख्य और माधुर्य भावना की प्रधानता है। उनके यक्षगानों—पारिजातापहरण, गोल्ल कलाप और भामा कलाप मे इस का दर्शन होता है। नारायण तीर्थ अपने को कृष्ण के रूप मे भी देखते हैं जो अद्वैत भावना के अनुकूल पड़ता है। साथ-साथ अपने को कृष्ण की प्रेमिका भी मानते हैं। कहते हैं "नारायण तीर्थ नामक गोपाल कितना उद्दंड और नटखट है। वह उसके प्रेम और विलासविभ्रमो के वश हो गया है। यह देख कर मुझसे रहा नही जाता।"

यह साम्प्रदायिक वैष्णव भक्ति आगे चल कर तजाउर राजाओ के समय के तेलुगु साहित्य मे अतिशय और मोहक शृगार के रूप मे परिणत हो गई। इस काल के साहित्य म कृष्ण के शृगारी रूप की ही प्रधानता है, भक्ति की नहीं।

विशुद्ध विशिष्टाद्वैतवादी दृष्टिकोण से लिखा गया प्रसिद्ध प्रबंध है "आमुक्त माल्यदा", जिस पर रामानुजाचार्य के श्री वैष्णव सप्रदाय का बहुत प्रभाव है। इसका नायक विष्णुचित्त प्रसिद्ध वैष्णव भक्त पेरियाल्वार ही है, जिनके पद तमिल साहित्य मे बहुत प्रसिद्ध हैं। उनकी वैष्णव भक्ति प्रपत्ति-प्रधान और अतएव दास्य भावना मूलक है। धार्मिक दृष्टि मे साप्रदायिक वैष्णव धर्म का प्रचार इसका मुख्य उद्देश्य है। विरागी बने हुए पाड्यराजा को वैष्णव बनाने के लिए मन्नार स्वामी विष्णुचित्त मे उसकी धार्मिक सभा मे जाने का कहते हैं (आ ७–८९)। तब विष्णुचित्त कहता है—

'गृह सम्मार्जनमो जलाहरणमो शृगार पल्यकिका
वहनबो कन मालिकाकरणमो वाल्लभ्यलभ्यध्वज
ग्रहणबो व्यजनातपत्रवृतियो प्राग्दीपिकारोपमो
नृहरी वादमुलेल्ल न्रेरे यितरुल् नीलीलकु वात्रमुल ॥ (आ २–९२)

'हे नृसिंह ! या तो आपके मंदिर म सफाई करना या जल लाना, या आपकी पालकी ढोना, या तुलसी माला बना कर आपको समर्पित करना, या आपकी ध्वजा को हाथ मे ले कर चलना, या छत्र चामर आदि ग्रहण करना अथवा आपके सम्मुख दीप जलाना, आदि सेवा कार्य मरे योग्य हैं। वाद प्रतिवाद के द्वारा तत्व निरूपण करने के लिए क्या आपकी लीलाओ के पात्र अन्य भक्त नहीं है ?'—इसमे विष्णुचित्त की बँधी दास्य भक्ति स्पष्ट है। आगे चल कर वह भगवान की कृपा से पाड्यराजा की सभा म अन्य मतो का खडन करके

विशिष्टाद्वैत मत की स्थापना करने मे सफल होता है, (आ ३–९) उसकी भक्ति भी ज्ञान मूलक है। इसमे चमार (मालदासरी) की भक्ति भी दास्य भक्ति है जिसकी गान-कैंकर्य-पद्धति से वह एक ब्रह्म-राक्षस को मुक्त करने मे समर्थ होता है।

विष्णुचित्त की पुत्री गोदा ने श्री रगनाथ को अपना पति मान लिया और तदनुरूप भक्ति की, जिसमे माधुर्य भावना की प्रधानता है। उसकी रागात्मिका माधुर्य भक्ति रागानुराग भक्ति मे परिणत हो जाती है और वह अपने को कृष्ण की प्रेमिका गोपी मान कर उसके विरह मे तपते हुए और राधा को उपालभ देते हुए कहती है—'हे राधे! क्या तुम्हारे लिए यह उचित है कि कृष्ण का वेणु निनाद सुन कर अपने पति, सास, ससुर आदि की सेवा भी छोड कर हरिणियो के समान उसके पास दौड कर आई हुई विरहिणी गोपिकाओ को और भी तपाते हुए कृष्ण के साथ भोग का ठेका तुम्ही ने ले लिया है?" वह कृष्ण के सौन्दर्य से इतनी मोहित हो कर विरहिणी बन जाती है कि विरह वेदना की तीव्रता से कृष्ण को उपालभ देने से भी नही चूकती। वह कहती है कि विष्णु ने सुर-मुनि और राजाओ का शरीर धारण कर अपने सौन्दर्य से अनेक कामिनियो का जो मोहित और वियोग पीडित किया उससे अच्छा होता यदि वह युग-युग मत्स्य, कूर्म, वराह, सिंह आदि ही बना रहता। वह कभी सखियो के द्वारा स्मरण दिलाये जाने पर अपने को सत्यभामा मानती है और कृष्ण के साथ पूर्व जन्म मे प्राप्त किये भोग-विलासो का सद्य अनुभव करती हुई सी मूर्च्छित हो जाती है। (आ ५, ७४–७६) उसकी इस रागानुगा माधुर्य भक्ति की चरम परिणति उसके साथ विवाह मे दिखायी पडती है। गोदा की यह भक्ति भी प्रपत्ति मूलक, अतएव विशिष्टाद्वैत प्रधान वैष्णव भक्ति का उज्ज्वल उदाहरण है। 'पाडुरग माहात्म्य' भी विष्णु के एक रूप "पाडुरग विट्ठल' की भक्ति का प्रतिपादन करने वाला महाकाव्य है।

वैजयती विलास मे विप्रनारायण की श्री रगनाथ के अर्चन और पाद-सेवन की वैधी भक्ति रागात्मिका हो कर वर्णित है जिसका फल विष्णु के सामीप्य की प्राप्ति के रूप मे उसको मिलता है। यह भी वैष्णव भक्ति का उज्ज्वल रूप है। क्षेत्रय्या के पदो मे कहीं अद्वैत और कहीं विशिष्टाद्वैत भावना युक्त रागानुगा भक्ति शृगारी रूप म दिखाई पडती है।

वैष्णव भक्ति का दूसरा प्रसिद्ध रूप है रामभक्ति। तेलुगु साहित्य मे इसका दास्य रूप अधिक मिलता है, जो मायामैनुपविग्रह और मर्यादा पुरुषोत्तम

राम के व्यक्तित्व के सर्वथा अनुकूल है। रामभक्ति साहित्य में रामदास (गोपन्न) कृत दाशरथी शतक और कीर्तन उल्लेखनीय हैं। रामदास की रामभक्ति नवधा भक्ति में दास्य पद्धति की है, जिसके वैधी और रागात्मिका दोनों रूप पाये जाते हैं। *दाशरथी शतक में कहा गया है :*

चिक्कनि पाल पै मिमिमि जॅदिन मीगड पचदारतो
मेचिन मगि मी विमल मेचक रूप सुधा रसवु ना
मक्कुव पक्केरवुन समाहित दास्य मनेटि दोयिटन्
दक्केनिटचु जुर्रेदनु दाशरथी। करुणापयोनिधी।" (दा. श ३०)

"हे करुणानिधि दाशरथी, गाढ़े दूध पर जमी मलाई शक्कर के साथ जैसे चाव से खायी जाती है वैसे ही मैं आपके नील श्यामल रूप का सुधारस अपने प्रेम *रूपी थाली में भर कर दास्य रूपी चुल्लू के द्वारा पी लूँगा।" दाशरथी शतक* में रामनाम की महिमा भी गायी गई है। कहा गया है कि "रा" हृदय के सब पापों को बाहर कर देता है और "म" किवाड बन कर मुँह बन्द कर देता है कि वे फिर अन्दर न आ सकें। (दा श २६) दास्य भक्ति मे रामदास की आर्ति भी दिखाई पडती है जिससे त्राण पाने के लिए वे माता सीता से प्रार्थना करते हैं कि राम से मेरा रक्षा की सिफारिश करें (ननुब्रोवुमनि चेप्पवे सीतम्म तल्लि")। उनके साहित्य मे विदित होता है कि उनकी भक्ति नाम स्मरण और कीर्तन की भी है। तात्विक दृष्टि से रामदास मानते हैं कि भ्रमर कीटक न्याय से जीव भक्ति युक्त हो कर भव दुखो से त्राण पाता है और *विश्व रूप का तत्व धारण कर लेता है (दा श १००)। यह दृष्टिकोण* द्वैताद्वैतवाद के अनुकूल पडता है। इसके अतिरिक्त विस्तृत शतक साहित्य मे वैष्णव भक्ति उज्ज्वल रूपों म पायी जाती है।

महात्मा त्यागराज की रामभक्ति भी दास्य और कीर्तन पद्धति की है और विशिष्टाद्वैत परक है। उनकी भक्ति की सर्वाधिक विशेषता यह है कि उसमे संगीत की प्रधानता होने के कारण नाद ब्रह्मोपासना का सुन्दर समन्वय हुआ है। उनके अनुसार पिपीलिकादि ब्रह्म पर्यंत सृष्टि म राम की गति है। रामदास और त्यागराज की भक्ति में प्रपत्ति की भावना सर्वप्रधान है। तेलुगु के राम काव्यो मे भक्ति तत्व गौण है, साहित्यिक सौन्दर्य मुख्य है। फिर भी उनमें प्रतिपादित भक्ति राम के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों को लेकर चली है और राम का परब्रह्मत्व स्वीकार करती है।

तेलुगु के वैष्णव भक्ति साहित्य मे तीसरी धारा है वेंकटेश्वर भक्ति की जिस मे अन्नमाचार्य सर्व प्रसिद्ध हैं। भावना की दृष्टि से उनके कीर्तनो मे

दास्य और माधुर्य भक्ति लक्षित होती है जो अभिव्यक्ति की दृष्टि से सकीनन शैली की है। उनके अनुसार सारा ससार विष्णुमय है। ऐसा कोई नही है जो वैष्णव नही हो। किसी की उपासना वेंकटेश्वर रूपी विष्णु की उपासना बन जाती है। "आकाशात् पतित तोय यथा गच्छति सागरम्, सर्व देव नमस्कार केशव प्रति गच्छति" के अनुसार उन्होंने वेंकटेश्वर मे सब देवो का समाहार कर दिया। ये अपने को भगवान की प्रेमिका मानते थे। इस भावना से उन्होंने अनेक पद लिख कर भगवान श्रीनिवास (वेंकटेश्वर) को समर्पित किये। इनकी भक्ति के वैधी और रागात्मिका दोनो रूप पाये जाते हैं। तात्विक दृष्टि से ये श्रीवैष्णव सप्रदाय से प्रभावित हैं।

तरिकोंड वेंकमाबा की वेंकटेश्वर भक्ति भी इसी धारा की है, जिसमे माधुर्य की प्रधानता है।

हिन्दी साहित्य मे यह वैष्णव भक्ति भागवतोक्त रूप मे प्रधानत विष्णु के सगुण रूप को ले कर चली जिसकी दो मुख्य धाराएँ हैं। कृष्ण भक्ति और राम भक्ति। इनमे कृष्ण भक्ति राम भक्ति की अपेक्षा अधिक सगुणता सापेक्ष है, यद्यपि कृष्ण का निर्गुण रूप भी माना गया, किंतु गौणरूप मे। यह बात कृष्ण भक्ति साहित्य के मूर्द्धन्य भक्त कवि, जो अष्टछाप के सर्वप्रथम कवि थे, महात्मा सूरदास के इस गीत से प्रमाणित होती है—

"अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यो गूँगेहि मीठे फल को रस अतरगत ही भावै
परम स्वाद सबही जु निरतर अमित तोष उपजावै
मन–बानी को अगम अगोचर, सो जानै, जो पावै।
रूप रेख गुन जाति जुगति बिनु निरालब मन चक्रत धावै।
सब विधि अगम विचारहि तातै सूर सगुन लीला पद गावै॥

—सूरसागर

सूरदास की भक्ति शुद्धाद्वैत भावना प्रधान है जिसके प्रवर्तक महात्मा वल्लभाचार्य थे। इस भावना के अनुसार माया के सबध से रहित और अलिप्त विशुद्ध ब्रह्म जगत् का कारण माना जाता है। जगत् और जीव उस ब्रह्म के ही परिणाम हैं और इसलिए उनकी भी सत्ता है। श्रीकृष्ण ही परब्रह्म है और उनका शरीर सच्चिदानद मय है। जब वह अपनी अनत शक्तियों के द्वारा अपनी आत्मा मे आतरिक रमण करता है तब आत्माराम कहलाता है और जब बाह्य रमण की इच्छा से अपनी शक्तियों को अभिव्यक्त करता है तब वह

पुरुषोत्तम कहलाता है। इस इच्छा से वह अपने आनद आदि गुणों को तिरोहित कर स्वय जीव रूप ग्रहण करता है। इसमे माया का सबध नहीं होता। सच्चिदानद भगवान के अविकृत चितन से जड का निर्गमन होता है और अविकृत चिदश से जीव का आविर्भाव। जीव तीन प्रकार के है— शुद्ध, मुक्त और ससारी। निर्गुण सच्चिदानद ब्रह्म ही अधिकृत भाव से जगद्रूप मे परिणत हो जाता है। साधना पक्ष मे इनका माग "पुष्टि मार्ग" कहलाता है जिसके अनुसार जीवों की सेवा से भगवान की स्वाभाविक दया प्राप्त होती है। तब उनमे तिरोहित आनन्द का अश पुन प्रादुर्भूत होता है और मुक्त दशा में जीव स्वय सच्चिदानदमय बन जाता है और भगवान मे अभेद प्राप्त कर लेता है। यह मुक्ति केवल भगवान के अनुग्रह से प्राप्त हो सकती है जिसे पोषण कहा जाता है— (पोषण तदनुग्रह भागवत (२–१०)। प्रेम भक्ति के क्षेत्र म वल्लभाचार्य जाति और धर्म का भेद–भाव नही मानते थे।

सूरसागर मे पुष्टि मार्ग की अहैतुकी प्रेम-लक्षणा भक्ति प्रतिपादित है जिसके प्र गनत तीन रूप—सख्य, वात्सल्य और माधुर्य, परिलक्षित होते है, यद्यपि विनय के कतिपय पदो मे दास्य भावना भी व्यक्त हुई है, जैसे—

मेरी कौन गति ब्रजनाथ ?
भजन विमुख अरु सरन नाहीं, फिरत विपयनि साथ
हौ पतित अपराध पूरन भर्यो कर्मविकार।
काम क्रोध रु लोभ चितवौ नाथ तुमहिं विसार।
उचित अपनी कृपा हरिहौ तवै तौ वनि जाइ।
जोद करहु जिहिं चरन सेवैं सूर जूठनि खाइ॥ (सू सा १२६)

सूरदास की भक्ति पद्धति की विशेषता यह है कि उसमे अहैतुक प्रेम की प्रधानता होने के कारण तत्व चिंतन या निरूपण गौण हो गया है, यद्यपि कहीं-कहीं उसका भी मूल भागवत म होने के कारण, थोडा बहुत वर्णन मिलता है। किन्तु ऐसे स्थानों म भी बहुत ही सक्षिप्त रूपमे मिलता है जैसे द्वितीय स्कध के आत्मज्ञान (सू सा २–२५, २६) और विराट–रूप वर्णन के प्रसगो मे (सू सा २ २७)। तात्विक दृष्टि स सूरदास कृष्ण को परब्रह्म मानते हैं

'तुम परब्रह्म जगत् करतार। नर तनु धर्यो हरन भुव भार॥
(सू सा १० ४२ ९९)

दशमस्कध की नारद स्तुति मे कहा गया है कि जगत बुदबुद प्राय है

"ज्यों पानी मे होत बुदबुदा पुनि ता माँहि समाइ
त्योंही सब जग प्रगटत तुमतैं, पुनि तुम माँहि बिलाइ ॥ (४३०, ३)

कृष्ण की असख्य बाल–लीलाओ के वर्णन में सूरदास की सख्य तथा वात्सल्य भक्ति दर्शित होती है। जहाँ मूल भागवत मे ज्ञान मूलक भक्ति का वर्णन है वहाँ सूर सागर मे प्रेम मूलक भक्ति का प्रतिपादन है—जैसे, माटी खाने के प्रसग मे कहा गया,

अखिल ब्रह्माड खड की महिमा दिखराई मुख माँहि
सिंधु सुमेर नदी वन पर्वत चकित भई मन चाहि
कर तै साटि गिरत नहिं जानी भुजा छाडि अकुलानी
सूर कहैं जसुमति मुख मूँदौ बलि गई सारग पानी ॥

(सू सा १०-२५५)

मूल मे सात आठ श्लोको में यशोदा की ज्ञान मूलक भक्ति का वर्णन किया गया है (भा १०-८,३७-४५)। यह सूरदास की भावना प्रधान भक्ति का प्रमाण है। यहाँ तेलुगु भागवत मे मूल भागवत का अनुसरण करके कहा गया है कि यशोदा कृष्ण के मुख मे समस्त विश्व को देख कर आश्चर्य चकित हो जाती है और निश्चय करती है कि यह मेरा पुत्र नही अपितु सर्वात्मा आदि-विष्णु है और इसलिए इसी की शरण मे जाऊँगी (आ भा १०-पू ३४३-३४९)। स्पष्ट है कि यहाँ भक्ति के साथ ज्ञान का समावेश हो गया है।

गोपिकाओं की भक्ति माधुर्य भक्ति है जिसका वर्णन सूरसागर मे बहुत अधिक किया गया है। इसमे भी ज्ञान की अपेक्षा भावना की अतिशयता मिली है। सूरदास की गोपियाँ सयोग या वियोग दशा मे इस बात का ध्यान नही करती कि कृष्ण विष्णु के अवतार हैं, उनको तो उनके प्रेम से मतलब है, किन्तु तेलुगु भागवत की गोपियाँ मूल के अनुसार ज्ञान प्रधान भक्ति करती हैं। इस प्रेम लक्षणा भक्ति का प्रतिपादन ज्ञान और योग के खडन के द्वारा भ्रमर गीतो के प्रसग मे सूरदास ने भाव विभोर किया है जो विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि से भी सुन्दरतम है। सूरसागर की गोपियाँ उद्धव के ज्ञानोपदेश से प्रभावित नहीं होती, बल्कि उद्धव पर अपनी प्रेम भक्ति का प्रभाव डाल कर उसे प्रेम के रग मे रँग देती हैं। तेलुगु भागवत मे गोपियाँ मूल के अनुसार उद्धव के ज्ञानोपदेश से प्रभावित हो कर उसकी पूजा भी करती है और अपने प्रेम का प्रभाव भी उद्धव पर डालती हैं।

मूल भागवत मे कहा गया है

तस्ता कृष्ण सदेशैर्व्यपेत विरह ज्वरा
उद्धव पूजया चक्रुर्ज्ञात्वाऽऽत्मानमधोक्षजम् ॥ भा १०.८०.५३ ।

इसमे गोपियाँ अपने को ही कृष्ण जान कर विरह दुःख से मुक्ति पाती हैं और उद्धव की पूजा करती हैं। तेलुगु भागवत मे तो इतना ही कहा गया है कि उद्धव से कहे गये कृष्ण सन्देश को सुन कर विरह वेदना से मुक्त हो कर गोपियों ने उद्धव की पूजा की। मूल का "ज्ञात्वाऽऽत्मानमधोक्षजम्" का भाव तेलुगु मे छोड दिया गया है। फिर भी सूरसागर की अपेक्षा तेलुगु भागवत मे मूल का अनुसरण अधिक हुआ है।

सूरसागर की प्रेम-लक्षणा भक्ति की एक और विशेषता गोपियों के प्रेम गर्व मे दिखाई पडती है जिसके प्रभाव मे आ कर कोई गोपी रासक्रीडा के समय कृष्ण से कहती हैं—

कहै भामिनी कत सो मोहि कध चढावहु।
नृत्य करत अतिश्रम भयो ता श्रमहि मिटावहु॥
घरनी घरत बनै नही पग अतिहि पिरान।
तिया वचन सुनि गर्व के पिय मन मुसुकाने॥
मैं अविगत, अज, अकल हों यह मरम न पायो।
भाव वस्य सब पै रहौं निगमनि यह गायो॥
एक प्रान द्वै देह हैं, द्विविधा नहिं या मैं।
गर्व कियो नर देह तैं, मैं रहौं न यामैं॥
सूरज प्रभु अतर भये सग तैं तजि प्यारी।
जहँ की तहँ ठाढी रही, वह घोष कुमारी॥

गोपियों की ऐसी गर्व भरी उक्तियाँ उनके प्रेमाधिक्य और मर्यादा हीनता को व्यक्त करती हैं, जो न तो मूल भागवत मे है और न उसके अनुसरण पर लिखी गयी तेलुगु भागवत मे। इसका कारण यह है कि जहाँ सूरदास की भक्ति भावना मूलक और मानव सुलभ अनुभूति को ले कर चली है वहाँ तेलुगु भागवत की भक्ति ज्ञान गरिमा को लिये हुए है जिसमे दार्शनिक दृष्टि का अधिक समावेश है।

सूरसागर मे वैष्णव भक्ति के रागात्मक और रागानुगा रूप ही सर्वाधिक लक्षित होते हैं, बल्कि यों कहा जा सकता है कि उनके सम्मुख वैधी भक्ति का कोई स्थान नही है। दशम स्कध ही क्यों, पूरा सूरसागर रागात्मिका भक्ति का उज्ज्वल रत्न है। सूरदास की यह रागात्मिका भक्ति अन्त मे रागानुगा

में परिणत होती दिखाई पड़ती है, जब अंतिम समय मे वे अपने को कृष्ण सौन्दर्य दर्शनाभिलाषिणी गोपी मान कर कहते है—

"खजन नैन रूप रस माते।
अतिसय चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते।
चलि चलि जात निकट स्रवननि कें उलटि पलटि ताटक फँदाते।
'सूरदास' अजन गुन अटके नतरु अबहि उडि जाते।।

अष्टछाप के द्वितीय प्रसिद्ध कवि नददास की प्रसिद्ध रचनाओ, 'रास पचाध्यायी' और 'भँवर गीत' मे यही प्रेम-लक्षणा भक्ति प्रतिपादित की गयी है जो वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत भावना मूलक पुष्टि मार्ग के अनुरूप है। इसमे भी सस्कृत भागवत के समान कहा गया है कि कृष्ण आत्माराम हो कर क्रीडा करते है।

"बिहँसि मिले नँदलाल निरखि व्रजबाल बिरह बस।
जदपि आतमाराम रमत भये परम प्रेम बस।। रा प. १-११०

प्रेम से ही भगवान वश मे होते हैं। वे कहते हैं—
"सकल बिस्व अपबस करि मो माया सोहति है।
प्रेम मई तुम्हारी माया मो मन मोहति है।।"

रास-पचाध्यायी का गान करने वालो को प्रेम-भक्ति प्राप्त होती है (रा ५-७३)। भँवर गीतो मे गोपियाँ उद्धव के ज्ञानवाद का अपने प्रेम वाद से खडन करती है, किन्तु सूरदास की गोपियो के समान भावना प्रधान हो कर नही, वल्कि बुद्धि प्रधान हो कर।

इसी प्रकार अष्टछाप के अन्य कवियों के साहित्य मे भी शुद्धाद्वैत भावना मूलक प्रेम-लक्षणा पुष्टि भक्ति प्रतिपादित्त की गयी है। उसमे ज्ञान मूलकता बहुत ही गौण है क्योंकि ये सब कवि वास्तव मे प्रेमी भक्त थे।

यही प्रेम-लक्षणा-भक्ति राधा कृष्ण की केवल शृंगार लीला के वर्णन मे निंबार्क मतानुयायी घनानद, रसखान, रसिकगोविंद आदि वैष्णव कवियो मे दिखाई पडती है। राधाकृष्ण के प्रति यह प्रेम, भक्ति, ध्यान या उपासना रूपी नही है, केवल अनुराग स्वरूप है। (हि सा वृहत इतिहास १ भाग– पृ. ५४३-५४५)।

रसखान कहते हैं—
"ब्रह्म मे ढूँढ्यो पुरातन गानन वेद रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यौ सुन्यो कबहूँ न कितू वह कैसे सुरूप औ कैसे सुभायन।

टेरन टेरत हारि परी रसखान बतायो न लोग लुगायन।
देखो, दुर्यो वह कुज कुटीर मे बैठ्यो पलोटतु राधिका पायन।

(सुजान-रसखान)

रसखान का कृष्ण प्रेम इतना उत्कट है कि वे उनके वश हो कर ब्रज मडल के पर्वतों, पशुपक्षियो आदि के रूप मे भी जन्म लेने की अभिलाषा करते हैं। शरीर के अवयवों की सार्थकता, कृष्ण की सेवा मे ही वे मानते हैं।

नैन वही, उनको गुन गाइ औ कान वही उन बैन सो सानी
हाथ वही उन गात सरै अरु पाय वही जु वही अनुजानी।
जान वही उन प्रान के सग औ मान वही जु करै मनमानी
त्यो रसखान वही रसखान जु है रसखान सो है रसखानी॥

(सुजान-रसखान)

ऐसा ही भाव तेलुगु भागवत के प्रह्लाद चरित्र मे मिलता है। प्रह्लाद अपने पिता से कहता है कि विष्णु की पूजा करने वाले हाथ ही सच्चे हाथ है। *उनका वर्णन करने वाली जिह्वा ही सच्ची जिह्वा है,* उनका दर्शन करने के नेत्र ही सच्चे नेत्र है, उनको नमन करने वाला सिर ही सच्चा सिर है; उनका गुण-गान सुनने वाले कान ही सच्चे कान हैं...आदि (आ भा. ७. १६९)। रसखान जाति से पठान होते हुए भी अपने उत्कट कृष्ण प्रेम के कारण हिन्दी के सब वैष्णव कवियो के सिरमौर बन गये हैं। हिन्दी मे ऐसे अनेक मुसलमान कवि हुए जिनसे प्रभावित हो कर भारतेन्दु हरिश्चद्र ने कहा...

"इन मुसलमान हरिजनन पै कोटिन हिन्दू वारिये।"

कृष्ण के प्रति माधुर्य भक्ति का प्रोज्ज्वल उदाहरण मीराबाई के पदो मे मिलता है, जिन्होने कृष्ण को अपना पति मान कर उनसे भक्ति की और अन्त मे जनश्रुति के अनुसार उन्ही मे लीन हो गयी। *उनकी भक्ति रागात्मिका* और रागानुगा है जो कृष्ण के लिए लोक-लाज आदि सब छोडने और अपने *को पूर्व जन्म की गोपी मानने मे लक्षित होती है।*

"मीरा कूं प्रभु दरसण दीज्यो, पूरव जनम को कौल"

इस कथन मे इसी की ओर सकेत है। उनका कृष्ण केवल सगुण ही नही निर्गुण अविनाशी भी है, जो आत्मा से अभिन्न है और हृदय मे वास करता है। मीरा की माधुर्य भक्ति पर सत परपरा की योग-साधना और रहस्यात्मक अनुभूति का पर्याप्त प्रभाव पडा है, क्योकि सत कवि रैदास से

उनको दीक्षा मिली। इसीलिए वे निर्गुण राम और कृष्ण मे अभिन्नता मानती थी। सत साहित्य मे राम का निर्गुण रूप गृहीत हुआ है।

हिंदी का यह उत्कट प्रेम-लक्षण-भक्ति का साहित्य आगे चल कर राधाकृष्ण के नाम पर अतिशय शृंगारी और गीति प्रधान साहित्य में परिणत हो गया। यही बात रीतिगत थोडे अतर के साथ तेलुगु साहित्य मे भी मिलती है जैसा कि पहले सकेत किया गया है।

हिंदी साहित्य मे वैष्णव भक्ति की दूसरी धारा राम-भक्ति के रूप मे प्रवाहित हुई, जिसके मूर्द्धन्य कवि थे महात्मा तुलसी दास। उनकी राम भक्ति यद्यपि सवधर्म समन्वयवादी है, तथापि रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत भावना का विशेष प्रभाव लक्षित होता है जो रामानद सप्रदाय के द्वारा उन पर पडा। स्वय रामानद रामानुजाचार्य के मतानुवर्ती थे। दोनो मे अन्तर इतना ही है कि यदि श्रीवैष्णव सप्रदाय मे लक्ष्मीनारायण या विष्णु को आराध्य माना गया है तो रामानद ने सीताराम को अपना इष्टदेव स्वीकार किया, जो मर्यादा पुरुषोत्तम, लोकरजक, तथा शील, शक्ति और सौदर्य के निकेतन हैं। रामानद से जो सम्प्रदाय चल पडा उसमे श्री सप्रदाय के नियमो और विधि-विधानो के प्रति विशेष आग्रह नही किया गया।

तात्त्विक दृष्टिकोण से तुलसीदास यद्यपि रामानदी सप्रदाय के थे तथापि वर्णाश्रम धर्म के प्रति अपनी अटल आस्था दिखा कर उन्होने अपनी विशेषता भी रखी। उनके "राम चरित मानस" और "विनय पत्रिका" उनके भक्ति तत्व के परिचायक ग्रथ हैं जिनमे भक्ति का सागर लहराता है। उनकी रामभक्ति केवल दास्य भक्ति है जिसे वे ससार सागर को पार करने का एकमात्र साधन मानते है।

"सेव्य सेवक भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।"

उनकी भक्ति विरतिविवेक युत और श्रुति सम्मत हरिभक्ति है जिसमे सब दार्शनिक वादो और राम के निर्गुण और सगुण रूपो का समन्वय हो गया है। उनके राम शिव के भक्त है और शिव राम के। जिस प्रकार कृष्णभक्ति साहित्य मे विष्णु के अवतार कृष्ण को परब्रह्म माना गया है उसी प्रकार रामभक्ति साहित्य म विष्णु के अवतार राम को माना गया है जो "विधि हरि शभु नचावनहारे" हैं। तुलसीदास ने राम के लोकरक्षक रूप को ग्रहण कर उनकी भक्ति का प्रचार किया जिसमे वैधी और रागात्मिका तथा भागव

जीवन नवधा भक्ति का भी समन्वय हो गया है। यद्यपि सब दार्शनिक वादों का इनकी भक्ति में समन्वय हो गया, तथापि ज्ञान की अपेक्षा प्रपत्ति मूलक भक्ति प्रधान होने के कारण उनकी साधना प्रणाली विशिष्टाद्वैत की ओर अधिक झुकती है, जिसका परिचय उनकी 'विनय पत्रिका' के अध्ययन में मिलता है। दास्य पद्धति प्रधान होने के कारण उनकी भक्ति मर्यादा पूर्ण है। भक्ति तत्व की दृष्टि से तेलुगु के रामदास और हिन्दी में तुलसीदास समकक्ष हैं। दोनों की भक्ति प्रपत्ति प्रधान है। दोनों की आर्त भक्ति में एक समानता यह मिलती है कि दोनों भक्त आर्त-भक्ति के आवेश में आ कर बडी स्वतन्त्रता के साथ अपने आराध्य देव पर खीझ उठते हैं कि—

दाल्नि चुट्टमासगरि दानि दयामति नेल्निाव नी
दासुनि दासुडा गुड तावक दास्यमोसगिनावु ने
चेसिन पापमो विनुति सेसिन गावबु गावुमय्य नी
पासुलखोन नेनोकड दाशरथी करुणापयोनिधी।

हे दाशरथी ! क्या शबरी में आपका कोई रिश्ता है कि आपने उसको अपनाया ? गुह क्या आपके दोनो का दास है कि आपने अपने दास्य का सुख उसे प्रदान किया ? मैंने कौन-सा पाप किया है जो आप मेरी रक्षा नहीं करते ? मैं तो आपके दासो मे दास हूँ। इसी प्रकार तुलसी भी कहते है

केसव, कारन कौन गुसाईं।
जेहि अपराध असाधु जानि मोहिं तजेहु अग्य की नाईं
परम पुनीत सत कोमल चित तिनहिं तुमहिं बनि आई
तौ कत बिप्र ब्याध गनिकहिं तारेहु कछु रही सगाई ?

हिन्दी मे राम भक्ति का माधुर्य रूप भी विकसित हुआ जो अधिकतर साधना सापेक्ष्य है। इस सप्रदाय को रसिक सप्रदाय कहा जाता है जिसके साहित्य पर माधुर्य भक्ति पूर्ण कृष्ण साहित्य का प्रभाव परिलक्षित होता है। इस रसिक सप्रदाय के साहित्य मे राम का केवल शृगारी रूप ही गृहीत हुआ जो राम के परपरागत और भारतीय जनता के हृदय मे प्रतिष्ठित व्यक्तित्व के अनुकूल नही पडता।

दोनो भाषाओ के वैष्णव भक्ति साहित्य के इस सक्षिप्त विवेचन के *उपरात हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचते हैं* —

१. दोनो भाषाओ म प्रतिपादित वैष्णव भक्ति सस्कृत साहित्य से प्रभावित है।

२. हिन्दी की वैष्णव भक्ति, तुलसीदास की भक्ति को छोड कर, अधिक प्रेम-भावना प्रधान है जहाँ तेलुगु भाषा मे प्रतिपादित वैष्णव भक्ति ज्ञान गम्भीर और मर्यादापूर्ण है।

३. तेलुगु के कृष्णभक्ति साहित्य मे उनका लोक-रक्षक और राजनीतिक रूप गृहीत हुआ है तो हिन्दी मे उनका लोकरजक बाल और युवक रूप चित्रित है।

४ दोनो भाषाओ मे कृष्ण भक्ति साहित्य की अन्तिम परिणति अतिशय शृगारी काव्यो के रूप मे हुई है किन्तु शैलीगत अन्तर के साथ ।

५ तेलुगु मे अधिकतर प्रबध काव्यो मे वैष्णव भक्ति प्रतिपादित है तो हिन्दी मे मुक्तक काव्यो मे।

६ दोनो भाषाओ मे प्रतिपादित भक्ति के रूप एक-दूसरे के पूरक माने जा सकते हैं।

हिन्दी और तेलुगु की आधुनिक कविता

श्री वैरागी

हिन्दी और तेलुगु की आधुनिक कविता मे पर्याप्त साम्य पाया जाता है। इन दोनो भाषाओं की कविता मे ऐसी क्षीण एव स्पष्ट रेखाएँ वर्तमान है, जिन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दोनों भाषाओ की काव्य-धाराओ की गतिविधि एक ही प्रकार की है। अध्ययन की सुविधा के लिए हम *हिन्दी और तेलुगु की आधुनिक कविता को तीन प्रधान भागो मे विभक्त करेंगे।*

१ भारतेन्दु-युग तथा वीरेशलिंगम्-युग से ले कर द्विवेदी-युग तथा तिरुपति वेंकटकवुलु-युग तक की आधुनिक कविता–(सन् १८७०–१९१४ तक)

२ हिन्दी की छायावादी कविता तथा तेलुगु का भावकवित्वमु लगभग (सन् १९१५–१९३५)

३ हिन्दी-कविता में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद तथा तेलुगु का अभ्युदय कवित्वमु (सन् १९३६–१९५०)

१. भारतेन्दु युग तथा वीरेशलिंगम्-युग से ले कर द्विवेदी-युग तथा तिरुपति वेंकट कवुलु-युग तक की आधुनिक कविता—

हिन्दी और तलुगु कविता के लिए यह काल संक्रान्ति काल कहा जा सकता है। इस का कारण यह है कि इस काल तक रीतिकाल तथा प्रबन्धकाल का ह्रास हो चुका था। कविता का आश्रय देने के लिए न तो कोई राजदरबार थे, न विलासी वातावरण। इस समय तक कविता एक प्रकार से मर चुकी थी। केवल समस्यापूर्ति के रूप मे ही इस का अस्तित्व दिखाई पड़ता था। कविता के ऐसे निष्प्राण एव नीरस वातावरण मे पुन जीवन-स्पन्दन लाने का कार्य हिन्दी तथा तेलुगु म क्रमश भारतेन्दु और वीरेशलिंगम् पतुलु ने किया। इन दिनो बहुमुखी प्रतिभा रखने वाले साहित्यिको ने पाश्चात्य विचारधारा के

संपर्क मे आ कर अपनी भाषाओं की कविता को नवीन चेतना एवं प्रेरणा प्रदान की। परन्तु इन दोनों साहित्यिकों के काल में वास्तव में गद्य का विकास अत्यधिक हो गया, कविता या पद्य का विकास अत्यन्त कम हुआ। इन दोनो साहित्यिकों के प्रभाव मे जितने अन्य कवि आये, उनकी कविता मे भी प्राचीन कविता की झंकृति मात्र सुनाई पड़ती थी। लगभग अठाहरवीं शताब्दी के अंत तक हिन्दी और तेलुगु की कविता में प्राण भरने वाले कुछ ऐसे कवियों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने भाषा एव भावना को एक नवीन वातावरण, एक नवीन चित्र-पट पर अंकित कर दिया। ऐसे कवियो में श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त तथा तिरुपति वेंकट कवुलु प्रमुख हैं। इस समय एक ओर जहाँ श्रीधर पाठक अपने खण्डकाव्यों के द्वारा मृत कविता मे प्राण फूंक रहे थे, 'हरिऔध', मैथिलीशरण पुराणो एव इतिहास से कथावस्तु ले कर भारतीय संस्कृति की प्राण प्रतिष्ठा कर रहे थे, तो दूसरी ओर तेलुगु कविता के क्षेत्र मे तिरुपति वेंकट कवुलु ने कविता को एक आन्दोलन के रूप में परिवर्तित किया। उन्होने अपने खण्डकाव्य तथा मुक्तको के द्वारा सम्पूर्ण तेलुगु भाषी प्रान्त मे कविता को अत्यन्त लोकप्रिय बनाया। इस प्रकार हम देखते है कि इस समय तक हिन्दी और तेलुगु की कविता राजदरबारो के अंधकार को चीरकर जनता के सम्मुख आ गयी। जनता ने इनकी कविता को पसन्द किया। और इन कवियो का प्रचार तथा प्रसार सामाजिक स्तर पर अधिक रहा। इस काल की कविता मे इतिवृत्तात्मकता, आदर्शवादिता एव चमत्कार प्रदर्शन का आधिक्य था। तेलुगु की अपेक्षा इस काल की हिन्दी कविता मे राष्ट्रीय भावना अत्यधिक काम कर रही थी।

२. हिन्दी की छायावादी कविता तथा तेलुगु का भावकवित्वमु (लगभग सन् १९१५–१९३५)

उन्नीसवी शती के आरम्भ से ही हिन्दी और तेलुगु की कविता मे एक नवीन परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देने लगा। हिन्दी की द्विवेदी-युगीन कविता तथा तेलुगु के तिरुपति वेंकट कवुलु-युग की कविता की निस्सारता, उपदेश-प्रवणता तथा इतिवृत्तात्मकता के प्रति काव्य-क्षेत्र मे एक आन्दोलन बना जिस को हम स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन कह सकते हैं। दोनो काव्य-साहित्यो में इस आन्दोलन के लिए आवश्यक वातावरण प्रस्तुत था। सामयिक परिस्थितियो ने (पाश्चात्य विचारधारा का प्रभाव, अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम का प्रभाव) इस काव्य-धारा को अपनाने के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार की। अंग्रेजी

साहित्य एव भाषा के द्वारा हिन्दी और तेलुगु मे नवयुवक कवियो में एक स्फूर्ति एव उत्साह का सचार हुआ। अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी वर्ड्सवर्थ कालिरिज, शेली, बायरन तथा कीट्स आदि प्रमुख कवियों के काव्य-पठन से हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्द प्रवृत्ति के तरुण कवियो को उसी प्रकार की नवीन कविता लिखने की अदम्य प्रेरणा मिली। महाकवि रवीन्द्रनाथ ने ऐसी स्वच्छन्दतावादी कविता को पहले ही अपना कर इन कवियों का पथ-प्रदर्शन किया। रवीन्द्र भारत के प्रथम स्वच्छन्दतावादी कवि थे।

कवींद्र रवींद्र का जैसा प्रभाव हिन्दी के प्रमुख छायावादी कवियो पर दिखायी देता है, वैसा ही प्रभाव तेलुगु के भाव कवियो पर भी। हिन्दी के छायावादी कवियों मे प्रसाद, पत, निराला और महादेवी वर्मा का नाम लिया जा सकता है। वैसे तेलुगु मे श्री विश्वनाथ सत्यनारायण, देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री, रायप्रोलु सुब्बाराव, नायनि सुब्बाराव, रामकृष्णाराव वगैरह का नाम लिया जा सकता है।

प्रसादजी की तरह श्री विश्वनाथ सत्यनारण की प्रतिभा भी बहुमुखी है, लेकिन दोनों मे एक अन्तर है। जहाँ प्रसादजी काव्य के सप्रदाय की छाप के साथ-साथ नूतनता का पुट ज्यादा लिए हुए है, वहाँ विश्वनाथजी नूतन परिवर्तनवादी आदोलन के साथ-साथ थोडी दूर तक चल कर परम्परा की ओर मुड गये। प्रतिभा दोनो की अत्युच्च कोटि की रही है, इसमे कोई सदेह नही।

श्रीकृष्ण शास्त्री मे गीति-काव्य की मधुरता ज्यादा है। शब्द-चयन और पद-गुफन मे वे अपना सानी नही रखते। वे तेलुगु के मधुर-कवि हैं। मात्रा मे अल्प होने पर भी उन्होंने जो कुछ भी लिखा है वह अद्वितीय है।

श्री रायप्रोलुजी की कविता मे परम्परा और मौलिकता का बहुत सुन्दर सतुलन दिखायी देता है।

नायनि सुब्बाराव मे भावो की गभीरता और हृदय का आवेग एक प्रलयकर आप्लावन का रूप धारण कर लेते हैं। उनकी कविता सीधे हृदय का छूती है।

मैंने युग के प्रतिनिधि स्वरूप इन कवियो का नाम लिया है। इनके अतिरिक्त और भी कवि हुए हैं।

नदूर सुब्बाराव का 'एङ्कुचाटलु' गीति-काव्य का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण माना जा सकता है। यह एक अपूर्व सृष्टि है। वेदुल सत्यनारायण, इदुकटि और मल्लवरपु भी इसी धारा के अन्तर्गत आते हैं।

उमर खय्याम की रुबाइयो का जितना सुन्दर अनुवाद बच्चनजी ने किया है उतना ही सुन्दर श्री दुव्वूरि रामिरेड्डी ने भी। यह अनुवाद पानशाला के नाम से विख्यात है। इस अनुवाद मे मूल की गध आती है।

इसी युग मे कुछ ऐसे कवि हुए जो परम्परा का पल्ला पकडे रहे। उनमे श्री त्रिपुरने रामस्वामी की व्यग-प्रधान रचना उल्लेख-योग्य है। उन्होंने अपने काव्यो के द्वारा नास्तिकता का प्रचार किया और पुराण-पथियो की खिल्ली उडायी। इस तरह का कवि हिन्दी मे कोई नही हुआ।

छायावाद और भाव-कविता के अत के साथ साथ हिन्दी और तेलुगु का प्रगति-युग शुरु हुआ, जिसे हम नयी कविता का युग कह सकते हैं। इस युग के तेलुगु के एक प्रमुख कवि श्री श्री हैं जिन की रचनाओ मे युग-सधि के स्पष्ट दर्शन होते हैं, जैसे दो नदियो के सगम स्थान पर दो तरह का पानी मिलता है किन्तु उनका स्पष्ट पृथक् व्यक्तित्व भी दिखायी देता है। श्री श्री का व्यक्तित्व जितना ऊँचा है, उतनी ऊँची कोटि का कोई कवि हिन्दी के प्रगतिशील कवियों मे नही हुआ। दुर्भाग्य ही कहिए, रोग और मृत्यु ने निरालाजी के जीवन के अन्तिम दशक को ग्रसित कर लिया अन्यथा हमे हिन्दी मे भी एक श्री श्री मिल जाता। दिनकरजी महान् क्रातिदर्शी कवि हैं लेकिन शैली और वस्तुचयन मे वे परम्परा की छाप लिए हुए है। निराला और दिनकर का व्यक्तित्व कविता की दृष्टि से श्री श्री से कुछ कम महत्व नही रखता, लेकिन धारा का भेद है। वैसे तो यह परिवतन पतजी मे भी स्पष्ट रूप से दिखायी देता है। अपने परिवर्तित रूप मे उन्हो ने लिखा भी काफी है, लेकिन वे सच्चे अर्थ मे नयी कविता की धारा मे मग्न नही हो सके।

हिन्दी में प्रगतिशील कवियो मे शिवमगलसिंह 'सुमन', गजानन मुक्तिबोध, रागेय राघव, नरेश मेहता, नागार्जुन, नीरज, शम्भूनाथसिंह, केदारनाथ अग्रवाल, प्रभात राकेश, शमशेर बहादुरसिंह वगैरह के नाम उल्लेख योग्य है।

तेलुगु के कवियो मे नारायण बाबू, शिष्ट्ला उमामहेश्वर, आग्नेय, बैरागी, पठाभि अनिसेट्टी, कुदुति, नारायणरेड्डी, दाशरथी, कालोजी, रमणारेड्डी, सोमसुन्दर, तिलक, केशवराव के नाम उल्लेखनीय हैं।

अज्ञेय द्वारा सपादित तारसप्तक के प्रकाशन के साथ-साथ हिन्दी में प्रयोगवाद नाम की एक धारा चल पडी। इन कवियों में सर्व श्री अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, धर्मवीर भारती, भवानी प्रसाद मिश्र प्रमुख हैं।

प्रयोग तो साहित्य का धर्म है, लेकिन अज्ञेय से प्रेरणा प्राप्त युवकों ने उसे विशेष महत्त्व दिया। कहा जा सकता है कि प्रगतिवाद और प्रयोगवाद एक तरह से सम्मिलित धाराएँ है। प्रगतिवादी भी प्रयोग करते रहे है और प्रयोगवादी भी प्रगतिशील कविता लिखते रहे है।

हिन्दी के दो प्रमुख कवि जो किसी धारा मे सम्मिलित नही हुए और अन्त तक अपनी अलग सत्ता बनाये रहे, दिनकर और बच्चन है। इन दोनो कवियो का ऐसा उच्च व्यक्तित्व रहा है कि कोई भी धारा उनको आत्मसात् करने मे असमर्थ रही।

इसी तरह तेलुगु मे भी कुछ कवि ऐसे है जो किसी धारा में सम्मिलित न हो कर स्वतत्र व्यक्तित्व रखते है। उनमे श्री जाषुआ, पिगलो काटूरी, तुम्मल सीताराममूर्ति, दुवकूरी रामिरेड्डी, कट्टमची रामलिगारेड्डी वगैरह के नाम उल्लेख योग्य है।

तेलुगु की नयी कविता म नारायण बाबू का एक खास व्यक्तित्व रहा। वे अधिवास्तविकवाद के जन्मदाता कहे जा सकते है।

शायद उनका छोड कर किसी न पूर्णरूप से अधिक वास्तविक कविता लिखी भी नही। आरुद्र और वैरागी न अपने ढग के कुछ प्रयोग किये। आरुद्र का 'त्वमेवाहम्' और वैरागी का 'नूतिलानि गोतुकलु' उल्लेखनीय हैं।

नारायणरेड्डी और दाशरथी बहुत लोकप्रिय कवि हैं जिन्होंने परम्पराबद्ध कविता लिखी है और नयी कविता भी। नारायणरेड्डी में गीति-काव्य की मधुरता पाई जाती है। अनिसेट्टि सुदुर्ति, रमणारेड्डी, सोमसुन्दर और तिलक ने समाज के अत्याचारों के प्रति विद्रोह की आवाज उठाकर प्रगतिशील कविता लिखी है। इन कवियो म सामाजिक चेतना विशेष रूप से पायी जाती है। केशवराव एक होनहार कवि हैं जिन्होने अत्यत आधुनिक शैली में लिखा है। इनमे से ज्यादातर कवि आज भी लिख रहे हैं और हम उनसे बहुत आशा रखते हैं।

नई कविता हिंदी और तेलुगु मे प्राय मुक्तछद म ही लिखी जाती है। फिर भी दोनो भापाओ म कुछ लोग परम्परागत छदो म लिखते रहे है। आलोचकों के भ्रूभग के बावजूद यह स्पष्ट है कि मुक्तछद का स्थान सुरक्षित हो चुका है।

स्थानाभाव के कारण मैं दोनो भापाओ के कई कवियो का उल्लेख नही कर पाया हूँ। प्रमादवश भी कुछ लोगो के नाम छूट गये होंगे। मैं उनक प्रति क्षमा प्रार्थी हूँ। इस लेख म म हिंदी और तेलुगु की आधुनिक कविता पर एक सरसरी नजर भर डाल पाया हूँ। इसम ज्यादा कुछ करना सभव भी नही था।

तदनुरूप ही एक विशिष्ट आदर्श की प्रतिष्ठा मे मनुष्य का सगठन किया गया। ऐसे मनुष्यो मे राम, युधिष्ठिर, कृष्ण आदि पुराण पुरुष मुख्य है। काव्य की दृष्टि से यह, महा काव्य-काल की प्रारभिक स्थिति है। वाल्मीकि से प्रारभित किया गया यह काव्य रूप कालिदास के काल में आ कर पूर्णत्व को प्राप्त हुआ। इस समय कवि, केवल कथक के रूप मे नही रह सका—वह कल्पना की ओर भी ताकने लगा। साधारण घटना चक्र से ऊपर उठकर वह बाह्य घटनाओ को वर्णन के रूप मे और अतर्वृत्ति को शील चित्रण के रूप मे प्रस्तुत करने लगा। इसलिए ही वाल्मीकि, कालिदास आदि कवियो के काव्य मे वर्णन और शील चित्रण सामानान्तर दृष्टिगत होते हैं। मानव विकास के साथ काव्यो का विकास क्रमबद्ध है, कोई आकस्मिक घटना नही। महा-काव्य काल तक आने पर जीवन के साथ काव्यत्व का अच्छा मेल बैठ गया। इसलिए उस समय के काव्य विश्व-इतिहास मे अत्युत्तम रहे। बाद मे अति काव्यत्व जब प्रबन्ध शैली के रूप मे विकसित हुआ तो वह कवि का केवल हस्त कौशल मात्र रह गया, वास्तविक जीवन से बहुत दूर जा पडा। अति भावुकता, कल्पना की अतिरजना, विद्वत्ता के शाब्दिक चमत्कार, सुदीर्घ वर्णन, जटिल समास बन्धन आदि ने काव्य के अन्य पक्ष पीछे छोड दिये, केवल कला पक्ष ही बारीकी के साथ तराशा गया। काव्य के ऐसे कोमल प्राणो को बाद के आधुनिक काल मे सामाजिक आँच लगने लगी, फिर जीवन के साथ काव्य के मूल्य भी बदल गये। प्राचीन काल मे अब तक काव्य के इतिहास को उन उन विषयो और अधिकारियो की दृष्टि से परखने पर बडी ही रोचक तालिका प्राप्त होगी।

कथक से कवि बन कर प्रबन्धकाल मे कविता करने वाला रस प्रधान या कल्पना प्रधान हो गया तो उस समय का पाठक श्रोता न रह कर सहृदय बना। छायावादी काल म कवि शैलीकार था, वह ज्यादातर गायक जैसा था और उसका पाठक भावुक। प्रगतिकाल में कवि विज्ञान और यथार्थ के निकट आ कर जीवन का व्याख्याता बन गया, और उसका पाठक विज्ञ। इस तरह काव्य के निरन्तर विकास के चक्र मे कवि, विषय, और पाठक भिन्न-भिन्न रूप धारण करते रहे। कविता के इस क्रमिक विकास मे प्रबन्धो का शुद्ध काव्य गत विकास तेलुगु प्रबन्धों म ही देख सकते हैं। हिन्दी के प्रबन्ध इस दृष्टि से इतिवृत्तत सूफी कवियो के प्रेम काव्यों के रूप मे और शैली की दृष्टि से रीतिकालीन काव्यो के रूप मे द्विधा विभक्त हैं। सूफी कवियो के प्रेम काव्यो मे भले ही इतिवृत्त

हिन्दी और तेलुगु में प्राचीन प्रबन्ध काव्य

श्री दुर्गानन्द

प्रबन्ध का अर्थ है भावुक मन की वाचिक रति। रति रति ही थी, पर वाचिका परिष्कृत थी। गुफाओं को, गोष्ठियों को लाँघ कर महफिलों में जो आ बैठा, उस मनुष्य का, चिर जागृत वासना का, पर अत्यंत परिमार्जन का वह कौशल जो आनंद और सौंदर्य के अध्यवसाय में क्लेश ग्रस्त था, वह शब्द में योजनाबद्ध था, वह प्रबन्ध था। किसी समय शब्द के साथ केवल अर्थ था पर कालान्तर में वह ध्वनियुक्त भी हुआ। जब वाक्य केवल शब्दार्थयुक्त रहा तब मनुष्य, मात्र घटनाओं के पुंज के अतिरिक्त कुछ न रहा, वह खाता, पीता, सोता, उठता, बैठता। ये तो घटनाएँ नहीं, चेष्टाएँ हैं। पर उन चेष्टाओं में से ऐसी ही कुछ चेष्टाओं ने, जिनमें भाव का अधिक उत्पीडन रहा, घटनाओं का रूप धारण किया। जब मनुष्य का जीवन, भाव और विचार की दृष्टि से निर्विशेष था और वह केवल डायरी का जीवन व्यतीत करता था, उस समय की ऐसी ही कुछ बातें, जो दिल को पकड लेती थीं, क्रम बद्ध बनायी जा कर कहानियों के रूप में बखेर दी गयीं। हमारे सारे पुराण ऐसी ही कहानियाँ थीं। हम उनको कहानी-काव्य कह सकते हैं। उनमें कवि केवल कथक-सा रह जाता और पाठक श्रोता-सा, जब मनुष्य घटना प्रधान रहा तब कवि को कथक बनने की अपेक्षा और कुछ बनने को क्या रहा। इसीलिए हमारे पुराणों में कहने सुनने की रीति कुछ उस समय की काव्य प्रक्रिया जैसी ही हमारे सामने आयी। सूत कहानियों को कहता चला जाता था, और शौनक आदि मुनि सुनते जाते थे। इसके पश्चात धीरे धीरे मानव के मन मस्तिष्क के विकास के साथ काव्यत्व का भी विकास हुआ। एक तीव्र भावना से उत्पीडित हो कर वाल्मीकि ने रामायण की रचना की थी। रामायण काल तक आते-आते घटना प्रधान मनुष्य भावना प्रधान हो गया। नीति नियमों के रूप में सामाजिक संवेदना का भी अनुभव होने लगा। व्यक्ति- वेदना एक विशाल समष्टि रूप धारण करने के कारण तत्कालीन गुण-गरिमा से प्रेरित हो कर

तदनुरूप ही एक विशिष्ट आदर्श की प्रतिष्ठा मे मनुष्य का सगठन किया गया। ऐसे मनुष्यो मे राम, युधिष्ठिर, कृष्ण आदि पुराण पुरुष मुख्य है। काव्य की दृष्टि से यह, महा काव्य-काल की प्रारंभिक स्थिति है। वाल्मीकि से प्रारंभित किया गया यह काव्य रूप कालिदास के काल मे आ कर पूर्णत्व को प्राप्त हुआ। इस समय कवि, केवल कथक के रूप मे नही रह सका—वह कल्पना की ओर भी ताकने लगा। साधारण घटना-चक्र से ऊपर उठकर वह बाह्य घटनाओ को वर्णन के रूप मे और अतर्वृत्ति को शील चित्रण के रूप में प्रस्तुत करने लगा। इसलिए ही वाल्मीकि, कालिदास आदि कवियो के काव्य मे वर्णन और शील-चित्रण सामानान्तर दृष्टिगत होते है। मानव विकास के साथ काव्यो का विकास क्रमबद्ध है, कोई आकस्मिक घटना नही। महा-काव्य काल तक आने पर जीवन के साथ काव्यत्व का अच्छा मेल बैठ गया। इसलिए उस समय के काव्य विश्व-इतिहास मे अत्युत्तम रहे। बाद मे अति काव्यत्व जब प्रबन्ध शैली के रूप में विकसित हुआ तो वह कवि का केवल हस्त कौशल मात्र रह गया, वास्तविक जीवन से बहुत दूर जा पडा। अति भावुकता, कल्पना की अतिरजना, विद्वत्ता के शाब्दिक चमत्कार, सुदीर्घ वर्णन, जटिल समास बन्धन आदि न काव्य के अन्य पक्ष पीछे छोड दिये, केवल कला पक्ष ही बारीकी के साथ तराशा गया। काव्य के ऐसे कोमल प्राणो को बाद के आधुनिक काल मे सामाजिक आँच लगने लगी, फिर जीवन के साथ काव्य के मूल्य भी बदल गये। प्राचीन काल से अब तक काव्य के इतिहास को उन उन विषयो और अधिकारियो की दृष्टि से परखने पर बडी ही रोचक तालिका प्राप्त होगी।

कथक से कवि बन कर प्रबन्धकाल म कविता करने वाला रस प्रधान या कल्पना-प्रधान हो गया तो उस समय का पाठक श्रोता न रह कर सहृदय बना। छायावादी काल मे कवि शैलीकार था, वह ज्यादातर गायक जैसा था और उसका पाठक भावुक। प्रगतिकाल मे कवि विज्ञान और यथार्थ के निकट आ कर जीवन का व्याख्याता बन गया, और उसका पाठक विज्ञ। इस तरह काव्य के निरन्तर विकास के चक्र मे कवि, विषय, और पाठक भिन्न-भिन्न रूप धारण करते रहे। कविता के इस क्रमिक विकास मे प्रबन्धो का शुद्ध काव्य गत विकास तेलुगु प्रबन्धो मे ही देख सकते हैं। हिन्दी के प्रबन्ध इस दृष्टि से इतिवृत्तत सूफी कवियो के प्रेम काव्यो के रूप मे और शैली की दृष्टि से रीतिकालीन काव्यो के रूप मे द्विधा विभक्त हैं। सूफी कवियो के प्रेम काव्यो मे भले ही इतिवृत्त

पद्मावत

में प्रबोन्धोचित कल्पना आयी हों, पर काव्य कौशल को दृष्टि से वे बहुत अधूरे हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो रीतिकालीन कविता ही प्रबन्धोचित कौशल का निखार है। हिन्दी के इन दोनो सम्प्रदायों का, एक साथ सम्मिलन यदि हम देखना चाहें तो केवल तेलुगु प्रबन्धो मे ही देख सकते हैं। किसी सूफी प्रेम-काव्य पर रीतिकालीन शिल्प का आरोप कर दिया जाय तो सभव है तेलुगु प्रबन्धो का सा रस मिल सके।

कवि के लिए कथा प्रधान नही, कथन ही प्रधान है। कथन माने अभिव्यक्ति या भाव उद्गार। कहानियो को बनाना कवि कर्म नही। कहानियाँ जनता बनाती है। कहानियो मे तथाकथित पात्र घटनाएँ और वर्णन अनिवार्य हैं। वे घटनाओ के चक्र हैं। उस चक्र मे घुस कर कवि उनकी कलात्मक व्याख्या करता है। वर्णन, अलकार, रस, भाव आदि एक प्रकार से कलात्मक व्याख्याएँ है। यह सामग्री प्रबन्ध काव्यो के लिए प्राण हैं, कवि को कहानी से बढकर उसके पीछे बहुत कुछ कहने को रहता है। यह बात कालिदास ने मेघदूत के द्वारा और आधुनिक काल मे रविबाबू ने गीताञ्जलि के द्वारा साबित कर दी है। मेघदूत मे पात्र तो हैं पर वे नाम मात्र के, गीताञ्जलि मे वे भी नही। वहाँ केवल वक्ता ही दिखाई देता है। प्रबन्ध काव्यो मे भी हम वक्ता अर्थात् कवि को ही देख पाते हैं। रामायण, महाभारत आदि मे भले ही हमे राम, युधिष्ठिर आदि दिखाई दें, पर मेघदूत मे यक्ष से बढ कर कालिदास ही अधिक दृष्टिगत होता है। प्रबन्ध काव्यो की भी यही स्थिति है। परवर्ती छायावादी कविता मे जो आत्मनायक प्रवृत्ति जागृत हुई, उसका प्रारभ, मेरे विचार मे प्रबन्ध के अतगत कवि की स्वच्छन्द प्रवृत्ति से ही हुआ।

हिन्दी साहित्य मे कबीर का ज्ञान-मार्ग, सूफो कवियो के प्रेम काव्य, और मीराबाई की कृष्ण भक्ति डिंगल की वीर रसात्मक कविताएँ अन्य भाषा-भाषियो के लिए भी रोचक सामग्री हैं। उत्तर भारत के इतिहास मे जो समकालीन सामाजिक व राजनीतिक उथल-पुथल देखी, उस सबका सास्कृतिक या साहित्यिक स्वर भग इन्हीं प्रचेता मनस्वियो की साधना मे प्रस्फुटित हुआ। हिन्दू और मुसलमानो के निरन्तर घर्षण से जब समाज के स्तभ हिलने लगे तो उसके अनुरूप ही वीरगाथा काल का आरभ हुआ और उस काल के समाप्त होते ही दोनो जातियो के लिए एक समन्वय का आधार आवश्यक हुआ। वह आधार जो कि दोनो जातियो से उत्पन्न हो कर और दोनो के बाहरी वैषम्यो को भुला कर दोनो की पारस्परिक सात्वना मे विलीन करता, यह नितात आवश्यक

था। पहले पहल कबीर ने ही ज्ञान मार्ग के द्वारा उस खाई को पाटने का प्रयत्न किया और उनके अनुसरण मे नानक, रहीम, दादूदयाल आदि संतो ने शान्ति आन्दोलन की तरह उस महान् समन्वय आन्दोलन को अविचल रूप से निभाया। यह सब ज्ञान सबधी आन्दोलन है, धार्मिक है, पर कविता के परिधान मे।

दूसरे प्रकार का समन्वय सूफी कवियो की प्रेममार्गी शाखा से सपन्न हुआ। जायसी, कुतुबन, मंजन आदि सूफी कवियो ने अपने सूफी वेदात को उन कथाओ मे सन्निविष्ट कर प्रचार किया, जो भारतीय जनता मे चिर प्रचलित हैं। शिल्प की दृष्टि से इनके लिखे काव्य प्रबन्ध-काव्यो के अतर्गत आते हैं। केवल काव्य या सास्कृतिक दृष्टि से यह समन्वय शुरू हुआ। १५०० ई से प्रारभ किया गया, यह काव्य-विधान उसी समय प्रचलित उस तेलुगु प्रबन्ध काव्य युग से साम्य पाता है जो कृष्णदेव राय के शासनकाल मे पल्लवित तथा पुष्पित हो कर स्वर्ण-युग कहलाया। हिन्दी म स्वर्ण युग भक्ति युग था। तुल्सी, सूर आदि कवियो तक आते-आते हिन्दी साहित्य ने वस्तु और अभिव्यक्ति मे परिमार्जन और सतुलन पाया। इस समय का साहित्य वस्तु मे, शिल्प मे और आदर्श म पूरे का पूरा भारतीय रहा। इसलिए ही इन कवियो के काव्यो को भारतीयो ने विशेष ममता के साथ हृदय के अदर स्थान दिया। पर सूफी काव्य वस्तुरीत्या भारतीय होते हुए भी कला की दृष्टि से अपरिपक्व थे। विजातीय कवियो स इससे अधिक आशा नही की जा सकती थी। फिर भी उन्होने भारतीय जनता के अन्तरग मे जो आध्यात्मिक सत्ता की अतस्सरिता बहाई, प्रेम का जो आलोक दिया, वह न केवल हिन्दी साहित्य के लिए ही, अपितु समस्त भारतीयो के लिए अनुकरणीय है। उनकी विरह विह्वलता और अनत सृष्टि व्यापिनी करुणा की पुकार ने भारतीय साहित्य के लिए नूतन परिवेश दिया। सूफी कवियो के द्वारा प्रसारित आध्यात्मिक प्रेम की साकेतिक प्रणाली प्रकट-अप्रकट रूप मे हिन्दी माध्यम द्वारा पूरे देश म व्याप्त हुई। सूफी सप्रदाय की विरह विह्वलता ही एक प्रकार से मीरा की वीणा को छू कर कृष्ण भक्ति मे झकृत हुई। वही रवीन्द्र की गीताजलि म भीनी सुगधि लिये हुए है। शायद प्रसाद के आँसू और कामायनी के औपनिषदिक परिवेश मे भी वही स्वर गूँज उठा हो। लेकिन यह प्रभाव इतना सूक्ष्म है कि बाहरत उसे पहचाना नही जाता।

सूफी कवियो ने जो कथानक लिये वे अर्ध ऐतिहासिक और अर्ध काल्पनिक हैं। तेलुगु कवियो ने प्रबन्ध रचना के लिए वैसी ही काल्पनिक

कथाएँ ली। पर वे पौराणिक थीं। इसलिए उनमें पुराण-जीवन गत प्राचीन परिपाटी की रक्षा हुई। किसी पुराण से अत्यन्त अल्प मात्रा में कहानी ली जाती थी, और सुदीर्घ वर्णनों और रस भावों के परिपोषण के साथ काव्य वैदग्ध्य को चरम-सीमा तक पहुँचाया जाता था। इनके निर्वाह में केवल कला दृष्टि ही थी, लेकिन हिन्दी की पद्मावत, मधुमालती, मृगावती जैसे सूफी काव्य अधिकतर घटना प्रधान हैं, यद्यपि बीच-बीच में आध्यात्मिकता की सुंदर अभिव्यक्तियाँ हैं फिर भी इन कथानकों को हम जनपदीय लोककथा ही कहेंगे। इनके निर्वाह में तेलुगु कवियों की-सी न आलंकारिक शैली है, न वैसा शिष्टजन मान्यता का आग्रह। लोकप्रिय कहानियों में स्वच्छन्द प्रेम निर्भर आत्म वेदना या प्रणय सूफ़ी कवियों का लक्ष्य रहा। इसलिए ये काव्य, वस्तु में और भाव-उद्गार में जन-जीवन के निकट रहे। सूफी सम्प्रदाय नामक एक विशिष्ट तात्विक सम्प्रदाय ने भी इस प्रदक्षिणा में आ कर निरभ्र और निर्द्वन्द्व प्रेम की एक ऐसी निसर्ग ज्योति जलायी जिससे हिन्दी साहित्य को नव्य आलोक मिला। इतना सब कुछ होने पर भी इनके बारे में एक बात कहनी ही पड़ती है। अभिव्यक्ति और आत्मवेदना में शक्तिशाली होते हुए भी ये काव्य, साधारण दंतकथाओं पर अवलंबित होने के कारण शिष्ट भारतीय साहित्य के लिए जो गांभीर्य चाहिए, उससे वंचित रह गये। सूफी कवियों की कहानियाँ जैसी कहानियाँ तेलुगु में 'काशी मजली' जैसी कहानियों के नाम से विख्यात हैं। वे गद्य में लिखी जाती और साधारण जनता द्वारा पढ़ी भी जाती पर तेलुगु साहित्य में ऐसा कोई शिष्ट कवि नहीं जिसने इनके आधार पर प्रबन्ध रचना का महल खड़ा कर दिया हो, हाँ, पिंगलि सूरना की बात अलग है। अनुपम प्रतिभावान इस प्रबन्ध कवि ने ऐसी ही एक कहानी पर इतना उत्तम प्रबन्ध लिखा कि उस समय के सारे प्रबन्धों में वह अत्यन्त विलक्षण रहा। उसका नाम है 'कलापूर्णोदय'। काव्य शैली की दृष्टि से इसमें और सूफी काव्यों में बहुत अन्तर है। जहाँ सूफी काव्य, जनतत्व, आध्यात्मिकता और विजातीय काव्यत्व का सम्मिश्रण है, वहाँ कलापूर्णोदय लाक्षणिकता, कलातत्व और संस्कृत परिपाटी का अभंग आत्मैक्य। कलापूर्णोदय में कथोपकथाओं का अद्भुत ताना-बाना है, औचित्य का पालन है, और चरित्र विकास में मानसिक दाँव-पेच हैं। बौद्धिक और हार्दिक व्याकुलताओं के कितने अच्छे समाधान उसमें भरे पड़े हैं! कुछ समालोचकों का कहना है कि मानसिक द्वंद्वों में पिंगलि सूरना ने शेक्सपियर की-सी कुशलता दिखाई है। तब तो इस दृष्टि से सूफी काव्य इसके समकक्ष मुश्किल

से ठहरते। सूफी काव्यों में असाहित्यिक अतिरजनाएँ, अस्वाभाविकताएँ और अनौचित्य कही ज्यादा हैं। असल मे इन काव्यो को जाँचने का मापदड ही अलग होना चाहिए। दोनो प्रबन्ध दो अलग-अलग विलक्षणताएँ रखते हैं। तेलुगु प्रबन्ध भारतीय कला कौशल का अतिम निखार है तो सूफी काव्य अनत जीव-वेदना की अनवरुद्ध पुकार है। सचमुच सूफी साहित्य ने निश्चल, प्रशात तथा गहन गभीर भारतीय साहित्य के लिए वह भाव विह्वलता दी, जो उसके शरीर और प्राण मे मधुर कपन जैसी एक सुमधुर गूंज छेड कर समय-समय पर उसे झकृत करती रही।

मुसलमान या अन्य विजातीय कवियो के द्वारा दिये गये ऐसे आलोक पुज तेलुगु साहित्य के लिए अप्राप्य थे। इस तरह के प्रेम काव्य भी तेलुगु साहित्य मे नही मिलते, तेलुगु मे जो कुछ है, वे शृगार-काव्य हैं। वास्तव मे भारतीय परपरा मे प्रेम काव्यो की सी कोई चीज नही है। शृगार-काव्य, प्रेम काव्य नही हो सकते। प्रेम काव्य केवल अरबी-फारसी और अग्रेजी की उपज हैं। वास्तविक जीवन प्रसूत प्रेमी युगल अपनी इच्छाओ की अतृप्ति मे तिलमिला कर किसी भयानक प्रहार से जीवन का अत कर लेते है। इस दुर्दम अवसान मे जो घोर वास्तविकता छिपी है, वही प्रेम काव्यो की स्वाभाविकता है। यह स्वाभाविकता भारतीयो के लिए अशुभ सूचक है, कभी ग्राह्य नही हुई। भारतीय प्रेम-ग्रहण मे अस्वाभाविकता है, किन्तु उसमे उत्तम आदर्श की प्रतिष्ठा है। कण्वाश्रम म शकुन्तला को देख कर दुष्यत ने मन मे इस तरह कहा—"इस स्त्री को देख कर मुझ क्षत्रिय म अकारण ही रागोदय क्यो हो रहा है ? शायद यह भी क्षत्राणी हो। मुनिकन्या हो नही सकती।"

यहाँ क्षत्रियत्व की सजातीयता प्रेमोदय का कारण है। इससे स्पष्ट है कि भारतीयो का प्रेम व्यापार पूर्व सबद्धता के बिना स्वीकृत नही किया जाता। और इसी तरह उस सकारण प्रेम को जब तक विवाह जैसे बन्धनो से सुसगठित नही किया जाता, तब तक सुखात भी नही होता। इसकी स्वाभाविकता चाहे कैसी भी हो पर ऐसे प्रेम-व्यापार मे जो काव्य के स्तर तक लाया जाता है, पवित्र आदश देखना भारतीय काव्यो के लिए चिर मान्य परिपाटी रही। राजा-महाराजा परकीय नायिकाओ के साथ जो सम्बन्ध स्थापित करते थे वे भी एक प्रकार से विधिविहित थे। ऐसे ही भारतीय आदर्शों को सामने रख कर तेलुगु कवियो ने प्रबन्धो की सृष्टि की। ये पूणत भारतीय है, वस्तु मे, शिल्प मे, आदर्श मे और अ य सभी बातो म।

• •

हिन्दी के सूफी काव्य, रूप मे भारतीय हैं, रस मे विजातीय हैं और गध मे न भारतीय हैं न विजातीय। फिर भी वे भारत के ऐतिहासिक आन्दोलन के क्रम के विकास के परिणाम हैं, जहाँ तेलुगु के प्रबन्ध-काव्य एव सुदीर्घ साहित्य-इतिहास के क्रम विकास के चिह्न हैं।

आन्ध्र भोज उपाधिधारी अजेय पराक्रमी विजयनगर के सम्राट् श्री कृष्णदेवराय ने खड्ग और लेखनी एक साथ चला कर आन्ध्र का मुख उज्ज्वल किया—इनके शासन काल मे प्रबन्ध काव्यो के प्रमुख आठ कवि "अष्ट दिग्गज" नाम स विख्यात थे। उनका काल १५ वी सदी से प्रारभ होता है। अल्लसानि पेद्दना, नदि तिम्मना, रामराज भूषण, तेनालि रामकृष्ण, पिंगलि सूरना, अय्यल राजू, रामभद्र, धूर्जटी आदि अष्टदिग्गजों मे थे। इन कवियो का युग स्वर्ण युग इसलिये माना जाता है कि इस काल से तेलुगु साहित्य सस्कृत का अनुसरण छोड कर मौलिक उद्भावनाओ की ओर उन्मुख हुआ। कवियो के कठो मे नये स्वर, नये काकु, ध्वनि, चमत्कार फूटने लगे। उन सब उद्भावो को प्रबन्ध के रूप मे ढालने की शक्ति भी प्राप्त हुई।

हिन्दी के वीर रस का औचित्य और भक्ति का उत्कर्ष एक उदाहरण मे एक उक्ति म हम बता सकते हैं, पर तेलुगु के इन प्रबन्ध काव्यो की मनोज्ञता एक उदाहरण मे देना सभव नही। क्योकि इन प्रबन्धो को उनकी वस्तुओ स अलग नहीं किया जा सकता, उन वस्तुओ को उन भावो से अलग नही किया जा सकता और उन भावो की भाषाशैली से। यह सब एक कुशल कारीगर के हस्त की बनी रसभीनी मखमल की चादर है, जिसका कोई भी रेशा अलग नही देखा जा सकता। हम अजन्ता की चित्रशाला मे जाकर किसी एक चित्र के पास खडे हो कर उसकी विशेषता गिन सकते हैं, लेकिन ताजमहल के किसी भाग के पास खडे होकर तमाम ताजमहल स उस खड को अलग कर तारीफ नही कर सकते, क्योकि उसकी सुदरता की स्वच्छता उसकी बुनियाद, उस के परिसर, उसके शरीर, प्राण पूरे भवन मे व्याप्त हैं। यही स्थिति तेलुगू प्रबन्धो की है।

हिन्दी ने विजातीयो की विविध काव्य रीतियो से कितना ही वैविध्य क्यो न पाया हो फिर भी उन सब से पृथक् करके हम हिन्दी साहित्य मे तुलसीदास की रामायण और प्रसाद की कामयानी को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। इस सर्वश्रेष्ठता का रहस्य हमे मालूम हो सके तो तेलुगु के प्रबध काव्यो की विशेषता भी प्रकट हो जाएगी। क्योकि इन दोनो की मान्यता का रहस्य

एक ही है। 'रामचरित मानस' और 'कामायनी' ने विजातीय प्रभावों से दूर रह कर बहिरंतर दोनों तरह भारतीयता में और स्वजातीयता में अपने को इतना अधिक निमज्जित कर दिया कि प्रत्येक देशीय व्यक्ति उनको अपनी ही चीज मानता है और अपने ही रंग में रंगी-सी देख हर्ष पाता है। भारतीय साहित्य की भित्ति पर खड़े हो कर भारतीयता के मूल्य पर तुल कर भारतीयता प्रतिष्ठित करने में वे सर्वथा सफल हुए। हमारी आत्मा उनमें गूँजती है। यही बात तेलुगु प्रबन्धों के विषय में भी घटती है।

इतना होने पर भी तेलुगु का इतिहास हिन्दी से कहीं ज्यादा विस्तृत और दीर्घ है। इस भाषा की सपन्नता हिन्दी से अधिक है। १३ वीं शताब्दी में अर्थात् तिक्कना के समय में ही इसकी प्रकाशन शक्ति काफी मज गई। शैली और सज्जा की दृष्टि से यह सुगठित है। ऐसी शक्ति हिन्दी को सोलहवीं शताब्दी तक भी प्राप्त नहीं हुई। जब तेलुगु भाषा पूर्ण नवयौवना हो कर अपने भ्रूविक्षेप और समग्र लास्यों से कविवृन्द का मन ललचाने लगी, तब हिन्दी भाषा मेले में खोई उस बच्ची की तरह थी जिसके माँ-बाप का पता न चलने के कारण अड़ोसी पड़ोसी लोगों ने उसे कुछ समय तक पाला-पोसा। उन लोगों ने भ्रमवश उसे अपना समझ लिया था। फिर जब यथार्थ मालूम हुआ तो वह छोड़ दी गई, आखिर इस खींचातानी में जब उसने होश सभाला तब हिन्दी कहलाने लगी। फिर भी वह शीघ्र ही क ख ग घ सीख कर सर्वशास्त्र विदुषी बन गई। उसके सामने तेलुगु प्रबन्ध की नायिका सचमुच अब भी नव लावण्यवती और लाजवती है। इस लाजवती प्रबन्ध नायिका की कुछ अनुपम छटाएँ आगे हम देखेंगे।

प्रबन्ध युग में वयसा तथा कृतिना वृद्ध अल्लसानि पेद्दना को ही हम पहले स्मरण करेंगे। इनकी पालकी को विजयनगर के राय ने कंधा लगाया। पेद्दना रचित मनुचरित्र सब प्रबन्धों में अग्रस्थानीय है। मनुचरित्र के प्रथम तीन आश्वास रस की गगरियाँ हैं। एक विप्र सनातन धर्मी, यज्ञ-याग की दीक्षा से दीक्षित, पुण्यव्रती, सदाचारी, सुन्दर युवक किसी सिद्ध पुरुष के दिये पादलेपन के प्रभाव से अकस्मात् उड़ कर अभ्रभेदी सुदूर हिमालय की गोद में जा गिरा। उस गिरिवर के नयनाभिराम दृश्यों को देखने में आत्मविस्मृत उस भोले विप्र ने यह भी नहीं समझा कि उसके पादलेपन का क्या हाल रहा। पिघलते हिम उपलों में वह न जाने कब का पिघल चुका था। विप्र ने घर जाने के लिए आँखें मूँद ली, पर आसन न उठा। जाने का रास्ता न पा कर वह

घाटियों में, गिरि-कंदराओं में घूम फिर कर थक जाता, आक्रन्द करता, पश्चात्ताप करता—निकट के लाखों तीर्थों का छोड़ मैंने इतनी दूर का स्वप्न क्यों देखा ? काश, कोई जीव रास्ता बताने वाला मिल जाता तो कितना अच्छा होता ? इस तरह पथभ्रष्ट, श्रमित, निरुपाय, दिशाहीन ब्राह्मण को कुछ समय के बाद गिरिकंदराओं की निस्तब्धता को चीर कर आती हुई वीणा की सुमधुर ध्वनि सुनाई दी। ध्वनि की लहरों का पकड़ कर वह मार्ग में अग्रसर हुआ। विप्र वहाँ जा कर क्या देखता है ? एक अति प्रशान्त बहुत ही मनोज्ञ विजन प्रान्त है, आम्र तरु मूल में एक चन्द्रकान्त वेदिका थी, हाथ में वीणा लिये अपनी धुन में लीन, सौंदर्य-विह्वला एक अप्सरा, विप्र युवक को देख कर अपने संगीत के साथ सहसा मौन हो गयी। वह उस मानव सौंदर्य पर मुग्ध हो गई। एक अप्सरा स्त्री मुझ पर मुग्ध है, विप्रवर को इसका पता नहीं चला। वह स्वदेश जाने की व्यग्रता में करुण याचना करता है—'देवि, मुझे घर जाने का रास्ता बता दो।' किन्तु देवी कामिनी बन कर पंचशर जाल पसारे खड़ी थी। तरह-तरह के इंगितों को अपने हाव भाव से प्रकट करते हुए चारों ओर से घेर रही थी। पर युवक अपने घर का रोना रो रहा था। यह विषम द्वन्द्व कब तक चलता ? आखिर कामिनी ने उस मानव पर अपने कोमल बाहुओं का ऐसा प्रबल आक्रमण किया कि भोला विप्र सिहर उठा, एक धक्के से उस आलिंगन को तोड़ कर बाहर निकल आया और घर की ओर भाग पड़ा।

इस सुन्दर, पर विषम स्तरों वाले सन्निवेश को पेद्दना ने इतना सरस बनाया कि पाठक का मन आनंद, कौतूहल जिज्ञासा आदि कई सबल भावों में चक्कर खा-खा कर थक जाता है। मानव और देव, स्त्री और पुरुष, राग और विराग के संघर्ष को दिखा कर देव पर मानव की, स्त्री पर पुरुष की, और राग पर विराग की विजय एक साथ प्रस्तुत की। कवि ने इस संघर्ष को इतने कौशल के साथ निभाया कि प्रवर और वरूथिनी के चित्र हमारी आँखों से कभी ओझल नहीं होते। हिमालय की गोद में एक मणि मंदिर का प्रांगण, एक आम्र वृक्ष मूल में चन्द्रकांत शिला की वेदिका उस पर मधुर वीणा की तान छेड़ती हुई एकान्त वासिनी अप्सरा वरूथिनी। वरूथिनी का चित्र खड़ा करने के लिए पेद्दना ने जो पार्श्व-सज्जा तैयार की वह अत्यन्त मनोज्ञ है। उस पार्श्वसज्जा और वातावरण की विशुद्ध चमक के कारण वरूथिनी की प्रतिमा हमारे मन में भुलाये नहीं भूलती। पेद्दना का यह काव्य, तेलुगु साहित्य भंडार में मणि जैसा उज्ज्वल है।

मनुचरित्र के बाद उल्लेखनीय काव्य वसुचरित्र है जिसे रामराज के दरबार में रहने वाले भट्टमूर्ति ने लिख कर प्रबन्ध शैली को चरम सीमा दिखाई। अल्प मात्रा में कथानक महाभारत से लिया गया है। शुक्तिमती नामक नदी पर कोलाहल नामक पर्वत गिर जाता है, जिससे प्रवाह रुक जाता है। वसुराजा ने इससे क्रुद्ध हो कर उस पर्वत को पदाघात से दूर फेंक दिया और शुक्तिमती को उस गिरि के आक्रमण से बचाया। कुछ समय के बाद शुक्तिमती और कोलाहल से गिरिका नामक एक पुत्री पैदा हुई। उससे वसुराजा का प्रणय हो गया और दोनो का पाणिग्रहण देवताओ के सम्मुख वैभव के साथ सम्पन्न हुआ। इस छोटी-सी प्रतीकात्मक कहानी को रामराज भूषण ने जो शिल्प दिया, जो अलंकार दिये, जो भाव-व्यंजना की रीतियाँ दी, वे आश्चर्यजनक हैं। भट्टमूर्ति उस समय के बडे ही विद्वान् कवि थे। वैसे तो कृष्णदेवराय भी प्रकाण्ड विद्वान् थे, फिर भी राय की विद्वत्ता पाठकों को डराती है, पर भट्टमूर्ति की विद्वत्ता बिलकुल नही डराती, प्रत्युत कवि ने उस विद्वत्ता के सहारे अपनी कृति को बहुत गभीर, अर्थवती, सरस और संगीत-मधुर बनाया है। साधारण व्यक्ति, भट्टमूर्ति का पद्य पढ कर कहता है "ओह, कितना अच्छा पद्य", विद्वान् आदमी पढ कर कहता है "ओह कितना कठिन", यही उनकी विद्वत्ता का रहस्य है। उनकी कविता तरंगविहीन उस क्षीरसागर की तरह है जिसके मथने पर हमे पग-पग पर अमृत की गगरियाँ, मणियाँ, परियाँ और चाँदनियाँ मिलेंगी।

रामराज भूषण ने कवि-कर्म से मानो होड लगाई, उस होड मे कविता के साथ इतनी दौड लगायी कि आखिर कविता ने ही हार मान कर आत्म समर्पण कर दिया। भाव को शब्द के साथ, शब्द को संगीत के साथ, संगीत को हृदय के साथ मिला कर उन्होंने जो रस तैयार किया उसके आस्वादक एक वर्ग के या एक रुचि के नही बल्कि भिन्न स्तरो के, भिन्न रीतियो के भिन्न रसास्वादन करने वाले विभिन्न श्रेणियो के हैं। विद्वान् श्रोता, गायक, पाठक, भावुक ये सब उनकी कविता का समान रूप से आस्वादन कर सकते हैं। एक एक पद्य काव्य की प्रतिमा है, जिसके सामने खडा प्रेक्षक अंग-प्रत्यंग निहारता हुआ अपने को भूल घंटो लगा देता है। अब तक शब्दार्थ बताने वाले कोश तैयार हुए हैं, पर रामराज भूषण के 'वसुचरित्र' को पढेंगे तो यह बात मालूम होगी कि शब्द से अर्थ और नानार्थ ही नही, स्वारस्य के, ध्वनि के, श्लेष के उक्ति वैचित्र्य के, कितने ही निघण्टु बनाये जा सकते हैं। कवि

प्रत्येक पद्य मे पाठकों को छेडता है। आनद की उमग जागृत करता है, फिर उस छेडछाड और उमग के समाधान मे ऐसा पद्य गढ देता है कि पाठक का विह्वल हृदय उसे पा कर वैसे ही शान्त हो जाता है जैसे पानी पडने पर भभकती आग शान्त हो जाती है। हर पद्य मे ऐसा लगता है मानो कवि बहुत जागरूक हो कर हमे पद्य सुना रहा है। यह जागरूकता ही कवि का प्राण है। इस शक्ति से प्रदीप्त कवि सर्वदा जागृत है। इससे पाठक को हर समय स्फूर्ति, चेतना, सजीवता मिलती है। वसु चरित्र की ऐसी प्रगल्भता हम उस समय के किसी काव्य मे नही देख सकते। उसकी उत्कृष्टता का प्रमाण इससे अधिक क्या हो सकता है कि उस काल मे ही इस अमूल्य ग्रथ का सस्कृत मे अनुवाद किया गया। इतना ही नही वसुचरित्र की देखादेखी परवर्ती आठ प्रसिद्ध कवियो ने आठ प्रबध काव्य लिखे जो मजाक मे "शिशु वसुचरित्र" कहलाये। इतने उज्ज्वल गुणो से सपन्न वसुचरित्र की झाँकी एकाध उदाहरणो के द्वारा अन्य भाषियो को कैसे दी जा सकती है? भले ही जायसी की पद्मावत जैसे कथानक पर तुलसी के शील-चित्रण और औचित्य पालन का सम्मिश्रण कर मनुचरित्र की झाँकी दिखाई जा सकती है किन्तु वसुचरित्र का दिग्दर्शन किसी भी तरह सभव नही। सूफी कवियो की कोई मनोज्ञ कहानी लीजिये, उस पर केशवदास की अलकार शैली का समावेश कीजिये, उस पर विहारी के रस भावो का मधुर सिंचन कीजिये, फिर उसमे आवश्यकता हो तो नददास के रासपचाध्यायी की सगीत लहरियाँ भी घोलिये। देखिए अब हिन्दी मे वसुचरित्र का स्वाद आया कि नही, मेरी बात हास्य सी लगे, पर यह हास्य नही यथार्थ है। सचमुच रामराज भूषण ने वसुचरित्र लिख कर तेलुगु कविता के क्षेत्र मे एक प्रयोगशाला ही स्थापित की। ऐसे अन्य तेलुगु प्रबन्ध काव्य भी अपने ढग मे अद्वितीय और अगाध हैं।

विजय नगर के सार्वभौम श्री कृष्णदेवराय की आमुक्तमाल्यदा जन जीवन के वर्णनो से और अगाध पाडित्य से विजयनगरम् के दुर्ग की तरह अभेद्य हो कर भी भोज चपू की तरह अपनी विलक्षणता लिये हुए है। नदी तिम्मना रचित पारिजातापहरण म सत्यभामा का प्रणय दर्शनीय है। तेनालि रामकृष्ण कवि द्वारा लिखित पाडुरग माहात्म्य के अन्तर्गत निगम शर्मा का आख्यान तेलुगु साहित्य के शील चित्रण का अच्छा नमूना है। इनमे सर्वत्र काव्य-कल्पना का प्रज्ञा विकास देखने को मिलता है। पौराणिक धार्मिक काव्यो के निर्वाह मे भी तेलुगु कवि ने अपने कवित्व का त्याग नही किया।

हिन्दी की तरह इन काव्यो मे आध्यात्मिक सकेत या परतत्व की प्रतिच्छाया बिल्कुल नही। तेलुगु कवि अन्त तक कवि ही रहे। एक शब्द मे कहना हो तो तेलुगु कवि पुराण-काव्यो मे निसर्ग कवि हैं और प्रबन्ध काव्यो मे कवि से बढ कर कवि हैं। हिन्दी कवि जीवन मे कवि हैं। वे भक्ति मे तन्मय हैं, युद्ध मे उग्र हैं, नीति मे भारतीय हैं, रीति मे विजातीय हैं, जीवन मे फिर महात्मा हैं। वे कवि होते हुए भी सत हैं। इन दोनो साहित्यो की विलक्षणता इन दोनो प्रबध-काव्यो की विशेपताओ के रूप मे हमे देखने को मिलती हैं।

परिचय

श्री विनायककृष्ण गोकाक : कन्नड भाषा के कवि तथा अग्रगण्य आलोचक, अंग्रेजी भाषा और साहित्य के मर्मज्ञ, इस समय हैदराबाद नगर में ब्रिटिश कौंसिल द्वारा सचालित अंग्रेजी प्रतिष्ठान के सचालक ।

श्री गगाशरण सिन्हा : बिहार के यशस्वी जन-सेवी, राज्य-सभा के सदस्य, अखिल भारतीय हिन्दी-सस्था सघ के अध्यक्ष ।

डाक्टर विश्वनाथप्रसाद भाषा विज्ञान के मान्य विद्वान्, केन्द्रीय शिक्षा मत्रालय के हिन्दी निदेशालय के निदेशक, पहले आगरा विश्वविद्यालय की हिन्दी विद्यापीठ के सचालक और पटना विश्वविद्यालय मे हिन्दी विभाग के अध्यक्ष ।

श्री बेजवाड गोपाल रेड्डी · तेलुगु और बगाली साहित्य के ममज्ञ, रवीन्द्रनाथ ठाकुर की अनेक कृतियों के तेलुगु अनुवादक, केन्द्रीय शासन के भूतपूर्व सूचना मत्री, आन्ध्र के भूतपूर्व मुख्य मत्री, आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी के अध्यक्ष ।

श्री बालकृष्णराव केन्द्रीय शासन के भूतपूर्व सचिव, हिन्दी के कवि और आलोचक, 'माध्यम' मासिक के सम्पादक, हिन्दुस्तानी अकेडेमी उत्तर प्रदेश के अध्यक्ष ।

श्री पी वी नरसिंहराव आन्ध्र प्रदेश के विधि मत्री, तेलुगु हिन्दी, मराठी और उर्दू साहित्य के ज्ञाता, विचारक, लेखक ।

श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त आन्ध्र प्रदेश शासन के योजना विभाग के विशेष सचिव, आन्ध्र प्रदश के प्रमुख हिन्दी-सेवी ।

डाक्टर रामनिरजन पाण्डेय उस्मानिया विश्वविद्यालय मे हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष, हिन्दी मे रामभक्ति साहित्य के विशेषज्ञ ।

श्री मोटूरि सत्यनारायण दक्षिण भारत के प्रमुख हिन्दी-सेवी, राज्य-सभा के सदस्य, तेलुगु भाषा समिति के उल्लेखनीय कार्यकर्ता ।

श्री देवुलपल्ली रामानुजराव आलोचक तथा पत्रकार । आन्ध्र सारस्वत परिषद के प्रतिष्ठाताओं मे से एक, आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी के मत्री । आ प्र हिन्दी लेखक सम्मेलन के आयोजक ।

डाक्टर बी. रामराजू : तेलुगु लोक-साहित्य के मर्मज्ञ, उस्मानिया विश्वविद्यालय मे तेलुगु विभाग के रीडर, आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी के सहायक मत्री, आ प्र हिन्दी लेखक सम्मेलन की तीसरी बैठक के सयोजक।

डाक्टर श्रीराम शर्मा हिन्दी के लेखक, उस्मानिया विश्वविद्यालय मे हिन्दी के प्राध्यापक, आ प्र हिन्दी लेखक सम्मेलन की दूसरी और पाँचवी बैठक के सयोजक।

• निबन्ध लेखक

श्री अयाचित हनुमत् शास्त्री एम् ए (हिन्दी और तेलुगु), साहित्यरत्न, मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ मे हिन्दी के प्राध्यापक, प्रकाशित रचनाएँ—तेलुगु और उसका साहित्य, हिन्दी साहित्यमु प्रथम खड आदि।

प्रकाशनीय—तेलुगु और हिन्दी का तुलनात्मक अध्ययन, तेलुगु भाषा और साहित्य पर फारसी, हिन्दी और अरबी का प्रभाव।

श्री वारणासि राममूर्ति 'रेणु' एम् ए, हिन्दी कोविद, आकाशवाणी के हैदराबाद केन्द्र मे हिन्दी प्रोड्यूसर। प्रकाशित पुस्तकें—आन्ध्र के कबीर-वेमना, एक कविता सग्रह, पोतना की तेलुगु भागवत के कुछ अशो का काव्यानुवाद।

श्री के राज शेषगिरि राव एम् ए (हिन्दी तथा सस्कृत), आन्ध्र लोयला कालेज विजयवाडा मे हिन्दी विभाग के अध्यक्ष। प्रकाशित पुस्तक आन्ध्र की लोक कथाएँ। प्रकाशनीय आन्ध्र के लोक-गीत (आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच् डी उपाधि के लिए प्रस्तुत प्रबन्ध)।

डाक्टर सी नारायणमूर्ति एम् ए पी एच् डी, ए एम् जैन कालेज मद्रास मे हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रकाशित पुस्तकें समझौता, महानाश की ओर और सत्यमेव जयते (नाटक) सती ऊर्मिला और मानस लहरी (काव्य)। प्रकाशनीय—तेलुगु तथा हिन्दी के मध्यकालीन रामायण-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन। मौलिक और तेलुगु से अनुवादित कविताओ का सग्रह।

श्री ए रमेश चौधरी हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार तथा कहानी-लेखक, तीस से अधिक पुस्तकें प्रकाशित, पत्रकार, विचारक।

श्री दुर्गानन्द साहित्य रत्न बी ए, हिन्दी-अध्यापक—रामचन्द्र विद्यालय, कोत्तागुडम, तेलुगु के प्रसिद्ध कवि जाषुवा के 'फिरदौसी' नामक काव्य का कवितानुवाद (१९५४ ई), तेलुगु म लिखित मौलिक काव्य, अतर्ज्वाला (१९५७ ई), मजूलिका (१९५८), जूना प्रणय गाथा (१९६२),

सूरदास के सौ पदों का तेलुगु में नाग्यानुवाद। 'आन्ध्रभूमि' नाम धारावाहिक रूप से एक उपन्यास छपा, समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं अनेक लेख।

श्री ए. सी. कामाक्षी राव, एम. ए. मद्रास के क्रिश्चियन क हिन्दी विभाग के अध्यक्ष, प्रकाशित पुस्तकें—तेलुगु की रंग रामाय हिन्दी अनुवाद, श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखित 'बाणभट्ट की आत्मकथ तेलुगु अनुवाद हिन्दी-तेलुगु शब्दकोश, तेलुगु-हिन्दी शब्दकोश, हिन्दी व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन।

श्री आलूरि बैरागी तेलुगु तथा हिन्दी के कवि, विचारक। प्र पुस्तकें, हिन्दी में—बदली की रात (कविता), तेलुगु में—चीकटि (कविता), दिव्य भवनमु (कहानियाँ)।

श्रीमती हेमलता आजनेयुलु एम्. ए., लेखिका, पत्रकार, अनुवादि पत्र पत्रिकाओं में अनेक लेख तथा कविताएँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

डाक्टर बी. भीमसेन जोस्यलु एम्. ए. (हिन्दी-तेलुगु), पी-एच् साहित्यरत्न, उस्मानिया विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के प्राध्याप प्रकाशित पुस्तकें—तिरुपति-वेंकट कवुलु, काटूरि पिंगलि कवुलु, निखरे ही अनुवादित और मौलिक अनेक लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके। प्रकाशनीय—श्री मादेल्लु पुरुषोत्तम कवि के नाटक (उस्मानिया विश्वविद्या की पी एच् डी उपाधि के लिए स्वीकृत प्रबन्ध)।

श्री बालशौरि रेड्डी साहित्यरत्न, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार स मद्रास के प्रकाशन-विभाग म सहायक, तेलुगु हिन्दी के अनुवादक, उपन्यासकार

श्री जी. सुन्दर रेड्डी बी. ए. साहित्यरत्न, आन्ध्र विश्वविद्याल वाल्टेयर में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष। प्रकाशित पुस्तकें—साहित्य और समाज मेरे विचार, हिन्दी और तेलुगु एक तुलनात्मक अध्ययन।

श्री एम्. वी. वी आर शर्मा एम्. ए. विद्वान गवर्नमेण्ट आर्ट्स कालेज खम्मम में हिन्दी प्राध्यापक। प्रकाशित पुस्तकें—सुमति शती और कुमार शती। प्रकाशनीय—गुरजाड अप्पाराव के नाटक 'कन्याशुल्कम' का हिन्दी अनुवाद।

श्री वेमूरि राधाकृष्ण मूर्ति दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की आन्ध्र शाखा के हिन्दी अध्यापक, हिन्दी-सेवी, कवि, प्रकाशित हिन्दी में तेलुगु के आधुनिक कवियों की जीवनी। •

प्रधाकर